भूमिका

श्री दीनानाथ 'शरण' अधीत आलोचक एवं सहृदय साहित्यकार हैं। छायावाद पर उनकी इस दूसरी पुस्तक को आपके समक्ष प्रस्तुत करने का अवसर पाकर मुझे परम प्रसन्नता हो रही है। 'हिन्दी काव्य में छायावाद' शीर्षक छायावाद संबंधी उनकी पहली ही पुस्तक ने अल्पकाल में ही काफी प्रसिद्धि और लोकप्रियता प्राप्त कर ली है एवं उसके लेखक को हिन्दी के वर्तमान आलोचकों के बीच अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी प्रमाणित किया है। श्री 'शरण' की 'छायावाद : विश्लेषण और मूल्यांकन' शीर्षक इस नयी पुस्तक के प्रकाशन से, छायावाद-विषयक आलोचना के क्षेत्र में, निश्चय, एक नया मील-स्तम्भ स्थापित हुआ है।

छायावाद हिन्दी कविता का गौरवमय अध्याय है और उस पर लिखा भी काफी गया है। फिर भी वैज्ञानिक ढंग से उस पर लिखी गई आलोचनात्मक पुस्तकें प्रायः नहीं हैं, यह एक तथ्य है। इसका मूल रहस्य यही है कि छायावाद एक 'हौवा' के समान आया और उसको लेकर विरोध व समर्थन में व्यर्थ सिर्फ हंगामा मचाया जाता रहा। छायावाद का पक्ष-विपक्ष लेकर लिखने वाले व्यक्तियों की छायावाद-विषयक आलोचनाओं में, इस कारण, अनेक असंगतियाँ व त्रुटियाँ आ गई हैं। पक्ष लेनेवाले आलोचक एक ओर, और विरोधी लेखक दूसरी ओर। किन्तु सभी के सभी अपने संकीर्ण घेरे में ही उलझ कर रह गए हैं। पक्ष लेनेवाले आलोचकों में सत्यप्रियता, ईमानदारी, निर्भीकता, विवेक, स्थिरता व वैसी तटस्थता नहीं है जो एक वैज्ञानिक समालोचना में अपेक्षित क्या, अनिवार्य है। अन्य उल्लेख्य तथ्य यह है कि पक्ष लेनेवाले आलोचक आलोचक की सी संयत, सशक्त तथा वस्तुनिष्ठ भाषा-शैली पर अधिकार नहीं रखते। शांतिप्रिय द्विवेदी, रामनाथ सुमन, नंद दुलारे वाजपेयी और डा० नगेन्द्र जैसे आलोचक (?) इस श्रेणी में गण्य है। छायावाद के विरोधी लेखकों की रचनाएँ (जिन्हें 'आलोचना' कहना 'आलोचना' की मानहानि है) और भी असंस्कृत, छिछली व गंदी हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी, ज्वालाराम 'विलक्षण', पद्मसिंह शर्मा और श्री (अब डाक्टर) शिवनन्दन प्रसाद[1] के शब्दों में 'इस युग के सबसे महान् आलोचक' (?) रामचन्द्र शुक्ल की भी आलोचनाएँ वैसी ही हैं। उनमें आलोचकोचित सत्यप्रियता, सहृदयता, सरसता, स्थिरता, गुणग्राहकता व सम-दृष्टि का ही बिल्कुल अभाव है और यही कारण है कि छायावाद का निष्पक्ष एवं वैज्ञानिक विश्लेषण और मूल्यांकन वे कर नहीं पाते। फिर विरोध करना ही जब रिवाज हो तो इसका प्रश्न भी कहाँ उठता है।

श्री दीनानाथ 'शरण' को कवि का हृदय तथा आलोचक का मस्तिष्क मिला है। उन्होंने छायावाद काव्य का सहृदय कवि के समान अध्ययन किया है, एवं आलोचक के

---

१. काव्यालोचन के सिद्धान्त पृष्ठ १५

मस्तिष्क से उसका वैज्ञानिक व तटस्थ विवेचन तथा मूल्यांकन किया है। छायावाद के विरोधी व प्रशंसक आलोचकों की उपरिकथित सीमाओं और त्रुटियों से, श्रेय की बात है, श्री 'शरण' सर्वथा मुक्त हैं। निर्भीकता और तटस्थता, फिर भी, सहृदयता और सरसता, स्थिरता एवं सशक्त वस्तुष्ठ अभिव्यक्ति की एकत्र-स्थिति, निश्चय, श्री 'शरण' के आलोचक-रूप में हिन्दी आलोचना की वैसी विलक्षण उपलब्धि है, हिन्दी के बड़े-बड़े आलोचक, जिससे कहना चाहिए, पीछे रह गए हैं। 'छायावाद का समाज शास्त्रीय अध्ययन' शीर्षक एक ही प्रबन्ध 'प्रबंधशतायते'! श्री 'शरण' ने निर्भीकतापूर्वक श्री रामचन्द्र शुक्ल और डा० देवराज आदि लेखकों की उन गलत स्थापनाओं का दृढ़ता के साथ खंडन किया है जिनके कारण छायावाद के संबंध में अनेक असंगतियाँ और भ्रांतियाँ दूर नहीं हो पा रहीं थीं। श्री 'शरण' की छायावाद विषयक मान्यताएँ, निस्सन्देह, इस विषय पर कार्य करने वालों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण एवं स्थायी बनी रहेंगी।

'छायावाद: विश्लेषण और मूल्यांकन' शीर्षक प्रस्तुत पुस्तक में छायावाद काव्य पर विविध पहलुओं से विचार किया गया है। सर्वत्र; आलोचक श्री 'शरण' की सूक्ष्म व वैज्ञानिक दृष्टि तथा निर्भीक एवं तटस्थ अभिव्यक्ति की झाँकी मिलती है। 'छायावाद और प्रयोगवाद' 'अभिजात मनोवृत्ति का काव्य छायावाद' तथा 'छायावाद का समाजशास्त्रीय अध्ययन'—जैसे कई निबंध तो बिल्कुल नये व लेखक की अपनी मौलिक सूझ के परिणाम हैं। इसके साथ-ही-साथ छायावाद के चार प्रमुख कवियों का पर्यालोचन कर, यह पुस्तक सर्वगुण सम्पन्न बना दी गई है; निस्संदेह, ऐसा कहा जा सकता है। छायावाद पर, जैसा कि मैंने बताया, अच्छी पुस्तकें प्रकाशित नहीं हैं। श्री दीनानाथ 'शरण' की पुस्तकें इस अभाव की पूर्ति के क्षेत्र में, निश्चय, महत्वपूर्ण योग दे रही हैं। इसी विषय पर उनकी एक पुस्तक 'हिन्दी काव्य में छायावाद' आगरे से प्रकाशित हुई है। प्रस्तुत पुस्तक 'छायावाद विश्लेषण और मूल्यांकन' शरण जी की उसी पहली पुस्तक का प्रतीक्षित पूरक है। छायावाद संबंधी समस्त उपलब्ध सामग्री का उपयोग करते हुए आदरणीय आलोचक ने छायावाद पर बड़ा ही स्पष्ट प्रकाश डाला है। मेरा दृढ़ विश्वास है, हिन्दी संसार इसके प्रकाशन का पर्याप्त सम्मान करेगा।

मैं दीनानाथ 'शरण' से रामचन्द्र शुक्ल से भी बढ़कर महाप्रज्ञ आलोचक की प्रत्याशा रखता हूँ।

दीपावली,
१०-११-५८

नरेन्द्र वर्मा

मेरी मुख्य स्थापनाएं

(१) छायावाद—काव्य का विपुल वैभव किसी एक छोटी-सी परिभाषा में आवद्ध नहीं हो सकता। छायावाद, वास्तव में, विविध प्रवृत्तियों से समन्वित व सम्पन्न एक विशिष्ट काव्य-धारा का नाम है।

(२) छायावाद का प्रारंभ श्री जयशंकर 'प्रसाद' जी की 'इन्दु' में प्रकाशित कविताओं से हुआ। उन्होंने ही इस नई धारा की कविता का प्रवर्तन किया था।

(३) छायावाद हिंदी कविता की चरम उपलब्धि है। हिंदी कविता जितनी भी ऊँचाई को पा सकती है, छायावाद में उसने उसे पा लिया है अवश्य।

(४) छायावाद की प्रेरक शक्तियाँ तद्युगीन विविध परिस्थितियाँ ही थीं, और वह हिंदी काव्य-धारा का स्वाभाविक विकास है। वह न तो बंगला की देन है और न अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की नक्ल।

(५) रहस्यवाद और छायावाद एक ही वस्तु नहीं, दोनों में पर्याप्त अन्तर है।

(६) छायावाद-काव्य जन-जीवन के प्रति पलायनवादी नहीं है। समाज का पक्ष भी उसमें स्पष्टता के स्वर में मुखर हुआ है।

(७) छायावाद काव्य मुख्यतः अभिजात-मनोवृत्ति का काव्य है।

(८) छायावाद के 'बृहत् चतुष्टय' के रूप में 'प्रसाद', 'पंत', 'निराला' और महादेवीवर्मा ही उल्लेख्य हैं।

(९) छायावादी कवियों की वेदना में, उनकी पीड़ा में कुछ ऐसी तीव्रता, कुछ ऐसी प्रभविष्णुता है कि उसे झूठी कहना कदापि उचित न होगा।

(१०) छायावाद ने रीतिकालीन कवियों की तरह नारी की केवल शारीरिक सुन्दरता पर ही दृष्टि नहीं डाली है; उसके हृदय की पवित्रता की भी चाह प्रकट की है। नारी को माँ, बहन, सहचरी, देश-सेविका आदि व्यापक रूपों में उसने देखा है। नारी के प्रति इतनी उदार, व्यापक एवं उदात्त दृष्टि हिंदी कविता में पहली-पहली बार छायावाद में ही हम पाते हैं।

(११) छायावाद में प्रेम का अत्यन्त संयमित सूक्ष्म एवं शिष्ट चित्रण हुआ है। छायावादी कविताओं में कहीं आध्यात्मिकता है ही नहीं, ऐसा मैं नहीं कहता; लेकिन बात अधिकतर यह हुई है कि 'लौकिक प्रेम' का ही इतना उदात्त चित्रण किया गया है कि उसमें रहस्यवाद अथवा आध्यात्म का भ्रम होने लगता है। वास्तविकता यही है कि छायावाद में प्रेम का आदर्शीकरण हुआ है।

(१२) छायावाद ने मुक्तक गीत और गीति-प्रबन्ध दोनों को अपने रचना-विधान के रूप में अपनाया। हिंदी कविता को यह भी छायावाद की बहुत बड़ी देन है।

(१३) छायावाद मरा नहीं है; प्रयोगवाद के रूप में उसका ही विकास हुआ है, और अनेक कवियों की कविताओं में आज भी वह जिन्दा है।

दीनानाथ 'शरण' एम० ए० (हिन्दी)
(पटना विश्वविद्यालय)

उपहार

पटना-कालेज हिंदी-ऑनर्स
के उन मधुमय दिनों में
सहपाठी संगी और सुहृद

सरलपन ही जिनका मन था
प्रेम ही जिनका बन्धन था
उदारता ही जिनका स्वभाव था
सहृदयता ही जिनकी विशेषता थी

जिन्होंने मेरे साहित्यिक जीवन को
प्रथमतः प्रेरणा दी
सम्मान्य
श्री महावीर प्रसाद कमलिया
के
कर-कमलों में सप्रेम

दरियापुर गोला
पटना-४
१६-११-५८

दीनानाथ 'शरण'

अपनी ओर से

छायावाद-सम्बन्धी अपनी प्रथम पुस्तक के प्रकाशन के उपरांत मैंने यह अनुभव किया कि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण पहलू भी शेष रह गए हैं जिन पर स्वतंत्र रूप से विस्तारपूर्वक विवेचन किया जाना चाहिये। प्रस्तुत पुस्तक उसी उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में नवीन प्रयास है। छायावाद-काव्य के विश्लेषण और मूल्यांकन में मैं सदैव सावधान रहा हूँ और हमेशा मैंने यह चेष्टा की है कि एक व्यापक पट भूमि पर रख कर ही निष्पक्ष और तटस्थ भाव से छायावाद-काव्य की समीक्षा और परीक्षा की जाये। इस प्रसंग में कुछ बड़े बुजुर्गों की भी मान्यताओं का जोरदार खंडन करने की विवशता का मुझे अनुभव करना पड़ा है और इस अपराध (?) के लिये उनसे क्षमाप्रार्थित हूँ, ऐसा मैं नहीं कहना चाहता। आलोचक यदि आलोचक है और आलोचक बना रहना चाहता है तो सबसे पहले उसे अनासक्त, ईमानदार और निर्भीक होना पड़ेगा। शायद, मैं गलत नहीं हूँ।

प्रस्तुत समीक्षा-ग्रंथ के लिखने में जिन लेखकों और विद्वानों की रचनाओं से मैंने सहायता ली है उनकी सूची अन्यत्र दी हुई है। जहाँ कहीं मैंने किसी की सामग्री ली है उनकी सूची अन्यत्र दी हुई है। जहाँ कहीं मैंने किसी की सामग्री ली है, पाद-टिप्पणी में भी उल्लेख कर दिया है। जिनकी रचनाओं से किसी भी रूप में मुझे सहायता मिली है, उनके प्रति, उचित आदर के साथ, मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। आचार्य श्री नलिन विलोचन शर्मा, के प्रति आभार प्रकट करना, यदि धृष्टता न हो तो, मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने सदैव मेरे अध्ययन का पथ-निर्देश किया है और मेरा उत्साह वर्द्धन कर मुझे दृढ़-संकल्प बनाये रखा है। पुस्तक की भूमिका लिखना स्वीकार कर आदरणीय श्री नरेन्द्र बख्शी जी ने इसे जो महत्त्व और मुझे जो मान दिया है तदर्थ मैं हृदय से उनका अनुगृहीत हूँ! श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' को तो धन्यवाद की अपेक्षा नहीं; वे मेरे अभिन्न सखा ही हैं।

पुस्तक लिखते समय बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्-पुस्तकालय के श्री परमानंद पाण्डेय और पटना कालेज-पुस्तकालय के श्री नागेश्वर सिंह जी से जो सुविधाएँ मिलीं—उन्हें भी मैं भुलाना नहीं चाहता। प्रिय मित्र श्री रामपरीखा सिंह, श्री सुखदेव प्रसाद, श्री मुहम्मद इसरायल और विद्यानंद जी भी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं जिनका सहयोग मुझे सदैव प्राप्त रहा है। इसके अलावा मैं उन सभी व्यक्तियों का आभारी हूँ जिनसे मेरे साहित्यकार को प्रेरणाएँ मिलती रही हैं। श्री अखौरी ब्रजनन्दन प्रसाद ने मेरे निर्देशानुसार 'छायावाद और रहस्यवाद' 'छायावाद की अभिव्यंजना-प्रणाली', 'छायावाद और अंग्रेजी कविता का रोमांटिक पुनर्जागरण' तथा 'छायावादी परंपरा के कतिपय आधुनिक कवि'—शीर्षक सिर्फ ये चार निबंध लिखे हैं और उनकी मूल्यवान सहायता का मैं कृतज्ञ हूँ। अंततः, किंतु विशेषतः, प्रिय श्री रामेश्वर तिवारी जी, अध्यक्ष, नवयुग-ग्रंथागार, लखनऊ, भी—जिन्होंने बड़ी लगन से इस पुस्तक का प्रकाशन किया है—मेरे धन्यवाद के अधिकारी हैं।

लेखक

उपहार

पटना-कालेज हिंदी-ऑनर्स
के उन मधुमय दिनों में
सहपाठी संगी और सुहृद

सरलपन ही जिनका मन था
प्रेम ही जिनका वन्धन था
उदारता ही जिनका स्वभाव था
सहृदयता ही जिनकी विशेषता थी

जिन्होंने मेरे साहित्यिक जीवन को
प्रथमतः प्रेरणा दी
सम्मान्य
श्री महावीर प्रसाद कमलिया
के
कर-कमलों में सप्रेम

दरियापुर गोला
पटना-४
१६-११-४८

दीनानाथ 'शरण'

विषय-सूची

छायावाद : एक आलोचनात्मक परिचय

हिन्दी काव्य की विविध प्रवृत्तियों में से छायावाद को, देश और काल की दृष्टि से, परिनिष्ठित साहित्य के धरातल पर जो व्यापक लोकप्रियता और विशेष प्रशस्ति प्राप्त हो सकी है, वह उसकी अंतर्निहित शक्ति एवं महत्ता का आप प्रमाण है। मनोरंजन और प्रभावान्विति, छायाकाव्य की इस शक्ति के व्यावहारिक रूप हैं, और लोकमंगल-विधान इसकी महत्ता का प्रतीक।[1] अनेक वर्षों की अनवरत साधना से अनेक काव्यों और अनेक कृतियों के जिस छायावाद का उत्कर्ष हुआ है, उसने न केवल लोकरंजन और रसास्वादन का द्वार सहृदयजनों के लिए खोल दिया है, वरन् लोकमंगल की साधना के पुनीत आदर्शों की प्रतिष्ठा भी व्यक्ति और समूह की चेतना के अन्दर की है। संभव है, किसी विशेष छाया-कृति को देखकर सुधी समीक्षक, छाया काव्य के लोकरंजन और लोकमंगल में से किसी एक तत्व को दूसरे से अधिक महत्त्वपूर्ण अथवा व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी मानना चाहें; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि छायावाद की परम्परा पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के उपरान्त वे पायेंगे कि इन दोनों तत्वों के परस्पर संतुलन में ही छायावाद का वास्तविक उत्कर्ष निहित है। छायावाद पर विभिन्न दृष्टियों से विचार करने के पूर्व क्या यह अच्छा न होगा कि सर्वप्रथम हम यह जान लें कि वास्तव में 'छायावाद' है क्या ?

'छायावाद' शब्द हिन्दी में काफी प्रसिद्ध है और काफी उलझा हुआ भी। छायावाद को लेकर हिन्दी के आलोचकों के बीच काफी वाद-विवाद रहा और वर्षों के व्यर्थ के कोलाहल के बाद भी आज सर्वसम्मत उसकी कोई परिभाषा बन नहीं पाई है। परिभाषा की संकीर्ण परिधि के अन्दर छायावाद का गौरव बँध भी नहीं सकता। फिर भी विषय की सम्यक् व्याख्या करने और उसे समझाने की जगह उसे दुरूह और रहस्यमय बनाने में कैसी बुद्धिमानी है, छायावाद-सम्बन्धी प्रायः सभी पूर्व-युगीन आलोचनाओं पर यह प्रश्न किया जा सकता है। कहानी, आप शायद जानते ही होंगे; हाथी और सात अंधों वाली; जब हाथी कैसा होता है उन सात अंधों ने बताया—प्रायः वे सभी गलत थे और प्रायः वे सभी ठीक भी। छायावाद के प्रारम्भिक आलोचकों के साथ भी कुछ वैसी ही बात नहीं हुई क्या ? वे सभी ठीक हैं, पर वे सभी-के सभी गलत भी। मेरी सम्मति है कि यदि सहानुभूतिपूर्वक एवं उदार दृष्टि से गंभीरता के साथ विचार किया जाये तभी छायावाद के प्रति समुचित न्याय हो सकेगा। छायावाद, वास्तव में क्या है, यह बताने के पूर्व; मैं यह चाहूँगा कि अपने पाठकों को छायावाद के सम्बन्ध में अपने पहले के विद्वान् आलोचकों के विचारों से भी परिचित करा दूँ। नीचे उनके विचार उद्धृत किये जा रहे हैं। यहाँ एक बात ध्यातव्य है कि उन आलोचकों का पौर्वापर्य क्रम मात्र सुविधानुसार हुआ है; वह, मेरी

---

1. हिन्दी काव्य में छायावाद, पृष्ठ १,—दीनानाथ 'शरण'

दृष्टि में उन आलोचकों की परस्पर किसी प्रकार की श्रेष्ठता अथवा उच्चता का द्योतक कदापि नहीं।

(१) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल :

"छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। रहस्यवाद के अंतर्गत रचनायें पहुँचे हुए पुराने संतों या साधकों की उस वाणी के अनुकरण पर होती हैं जो तुरीयावस्था या समाधि दशा में नाना रूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देती हुई मानी जाती थी। इस रूपात्मक आभास को योरप में 'छाया' (Phantasmata) कहते थे। इसी से बंगाल में ब्रह्मसमाज के बीच उक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे वे 'छायावाद' कहलाने लगे। धीरे-धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहाँ के साहित्य के क्षेत्र में आया और फिर रवीन्द्र बाबू की धूम मचने पर हिन्दी के साहित्य-क्षेत्र में भी प्रकट हुआ।"

"छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है। सन् १८९५ में फ्रांस में रहस्यवादी कवियों का एक दल खड़ा हुआ जो प्रतीकवादी (Symbolists) कहलाया। वे सभी अपनी रचनाओं में प्रस्तुत के स्थान पर अधिकतर अप्रस्तुत प्रतीकों को लेकर चलते थे। इसी से उनकी शैली की ओर लक्ष्य करके 'प्रतीकवाद' शब्द का प्रयोग होने लगा। आध्यात्मिक या ईश्वर-प्रेम-सम्बन्धी कविताओं के अतिरिक्त और सब प्रकार की कविताओं के लिए भी प्रतीक शैली की ओर वहाँ प्रवृत्ति रही। हिन्दी में 'छायावाद' शब्द का जो व्यापक अर्थ रहस्यवादी रचनाओं के अतिरिक्त और प्रकार की रचनाओं के सम्बन्ध में भी ग्रहण हुआ वह इसी प्रतीक शैली के अर्थ में। छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ, प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।"[1]

(२) पं० नन्ददुलारे वाजपेयी :

"छायावाद को हम शुक्लजी के अनुसार केवल अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली नहीं मान सकेंगे। इसमें एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्गम है और स्वतंत्र दर्शन की नियोजना भी। पूर्ववर्ती काव्य से इसका स्पष्टतः पृथक् अस्तित्व और गहराई है।"[2] वाजपेयी जी का और कहना है कि छायावाद "मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान" है। फिर वे कहते हैं—"आज हम जिसको छायावाद की कविता कहते हैं वह कोई नया एक वस्तु है? ऐसा तो नहीं है।

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६६८—६—रामचन्द्र शुक्ल

२—जयशंकर प्रसाद, पृ० ४८—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी

थोडी सी भावुकता, साकेतिकता, रहस्य, दुरूहता, कोमलकांत पदावली, प्रकृति प्रेम, उच्छृंखलता—अनेक वस्तुएँ सम्मिलित है ।"

(३) डॉ० नगेन्द्र :

'निष्कर्ष यह है कि छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है'—जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण का आधेय नव-जीवन के स्वप्नो और कुण्ठाओ के सम्मिश्रण से बना है प्रवृत्ति अतर्मुखी तथा वायवी है और अभिव्यक्ति हुई है प्राय प्रकृति के प्रतीको द्वारा । विचार पद्धति उसकी तत्वत सर्वात्मवाद मानी जा सकती है ।"[1]

"महादेवी के काव्य मे हमे छायावाद का शुद्ध, अमिश्रित रूप मिलता है। छायावाद की अतर्मुखी अनुभूति, अशरीरी प्रेम जो बाह्य तृप्ति न पाकर अमासल सौंदर्य की सृष्टि करता है, मानव और प्रकृति के चेतन सस्पर्श, रहस्य चिंतन, तितली के पर और फूलो की पखुरियों से चुराई हुई कला और इन सबके ऊपर स्वप्न-सा पूरा हुआ एक वायवी वातावरण वह है महादेवी जी की कविता।"[2]

तो इस प्रकार डॉ० नगेन्द्र के अनुसार अतर्मुखी प्रवृत्ति, अशरीरी प्रेम एव उसकी अतृप्ति, अमासल सौन्दर्य, मानव एव प्रकृति का चेतन सस्पर्श, रहस्य चितन, तितली के पख और फूलो की पखुरियो से चुराई कला और उन सबके ऊपर स्वप्न-सा पूरा हुआ एक वायवी वातावरण—यही छायावाद है। अब, देखिये श्री शातिप्रिय द्विवेदी का विचार ।

(४) श्री शातिप्रिय द्विवेदी :

"छायावाद केवल एक काव्यकला नही है । जहाँ तक साहित्यिक टेक्नीक से उसका सम्बन्ध है वहाँ तक वह कला है और जहाँ दार्शनिक अनुभूतियो से उसका सम्बन्ध है वहाँ वह एक प्राण है, एक सत्य है । अतएव छायावाद, काव्य की केवल एक अभिव्यक्ति ही नही, बल्कि इसके ऊपर एक श्रेष्ठ अभिव्यक्त भी है । 'छाया' शब्द यदि उसकी कला के स्वरूप (अभिव्यक्ति) को सूचित करता है तो 'वाद' उसके अत प्रकाश (अभिव्यक्त) को ।"[3]

(५) डॉ० रामकुमार वर्मा :

ये छायावाद और रहस्यवाद मे अतर नही मानते। दोना एक ही चीज है । इसीलिए ये सेंट अगस्टाइन और जलालुद्दीन रूमी को भी छायावादी मानते हैं । आत्मा व परमात्मा का गुप्त वाग्विलास रहस्यवाद है और यही छायावाद । स्वय डॉ० वर्मा के शब्दा मे 'छायावाद वास्तव मे हृदय की एक अनुभूति है । वह भौतिक ससार के क्रोड म प्रवेश कर अनन्त

१—आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ—पृष्ठ १५, डॉ० नगेन्द्र
२—विचार और अनुभूति—पृष्ठ १३०,—डॉ० नगेन्द्र
३—सचारिणी, पृष्ठ २२१-२२२,—शातप्रिय द्विवेदी

जीवन के तत्त्व ग्रहण करता है और उसे हमारे वास्तविक जीवन में जोड़कर हृदय में जीवन के प्रति एक गहरी संवेदना और आशावाद प्रदान करता है। कवि को ज्ञात होता है कि संसार में परिव्याप्त एक महान और दैवी सत्ता का प्रतिबिंब जीवन के प्रत्येक अङ्ग पर पड़ रहा है और उसी की छाया में जीवन का पोषण हो रहा है। एक अनिर्वचनीय सत्ता कण-कण में समाई हुई है। फूलों में उसी की हँसी, लहरों में उसका बाहु बंधन, तारों में उसका संकेत, भ्रमरों में उसका गुंजार और सुख में उसकी सौम्य हँसी छिपी हुई है। इस संसार मे उस दैवी सत्ता का दिग्दर्शन कराने के कारण ही इस प्रकार की कविता को छायावाद की संज्ञा दी गई।"[1]

(६) डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी :

आचार्य द्विवेदी ने अधिकतर हिन्दी साहित्य के प्राचीन युग को ही अपना विवेच्य बनाया है। आधुनिक काव्य पर कुछ भी कहने से वे भरसक बचते हैं। छायावाद पर उनकी आलोचना इतनी स्पष्ट और इतनी विशद है भी नहीं कि उस पर अधिक कुछ विचार किया जाय। अपनी 'हिन्दी साहित्य' पुस्तक मे द्विवेदी जी छाया-काव्य को 'विषय-प्रधान' कहते हैं जिसे दूसरे आलोचकों के शब्दों में ठीक ही 'अंतर्मुखी' अथवा 'स्वानुभूति-निरूपक' (Subjective) काव्य कहा जा सकता है। निष्कर्षत: छायावाद को केवल अंतर्मुखी प्रवृत्ति और लाक्षणिकता की ओर संकेत कर द्विवेदी जी मौन हैं।

(७) श्री रामकृष्ण शुक्ल :

"छायावाद प्रकृति में मानव-जीवन का प्रतिबिंब देखता है; रहस्यवाद समस्त सृष्टि में ईश्वर का। ईश्वर अव्यक्त है और मनुष्य व्यक्त है। इसलिए छाया मनुष्य की, व्यक्त की ही देखी जा सकती है, अव्यक्त की नहीं। अव्यक्त रहस्य ही रहता है।"[2]

(८) श्री गंगाप्रसाद पांडेय :

"छायावाद शब्द से ही उसकी छायात्मकता स्पष्ट है। विश्व की किसी वस्तु में एक अज्ञात सप्राण छाया की वे झांकी पाना अथवा उसका आरोप करना ही छायावाद है।"[3]

(९) प्रो० शिवनन्दन प्रसाद, एम० ए०, साहित्यरत्न :

इनकी दृष्टि में छायावाद और रहस्यवाद वस्तुत: दो विभिन्न प्रवृत्तियाँ हैं। स्वयं उन्हीं के शब्दों में "छायावाद में आत्मा और आत्मा का संबंध रहता है, अर्थात् ससीम और ससीम का सम्बन्ध रहता है, रहस्यवाद में आत्मा और परमात्मा का अर्थात् ससीम और

1—विचार-दर्शन, पृष्ठ ७२—डॉ० रामकुमार वर्मा
2—हिन्दी साहित्य का इतिहास—श्री रामकृष्ण शुक्ल
3—छायावाद और रहस्यवाद—श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय

असीम का। छायावाद में अव्यक्त या परोक्ष सत्ता के प्रति जिज्ञासा होती है। रहस्यवाद में अव्यक्त या परोक्ष सत्ता के प्रति प्रेम होता है। छायावाद में प्रकृति के ससीम रूपों में असीम की छाया देखकर कवि आश्चर्य पुलकित रह जाता है। लेकिन रहस्यवाद में ससीम द्वारा प्रतिबिंबित होनेवाले इस असीम के प्रति कवि आकुल प्रणय-भावना की व्यंजना करता है। ससीम आत्मा और असीम (निर्गुण-निराकार) परमात्मा के बीच प्रणय संबंध की स्थापना ही रहस्यवाद है। यह प्रेम माधुर्य भाव-भरे अथवा पति-पत्नी-संबंध से होता है। छायावाद में यह प्रेम नहीं होता है, उसमें केवल कौतूहल या जिज्ञासा की भावना वर्तमान रहती है।" [१]

ऐसा प्रतीत होता है कि छायावाद को ये कोई एक वस्तु नहीं मानकर, कई विशेषताओं से संयुक्त विशिष्ट काव्य-प्रवृत्ति के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार "छायावाद एक प्रकार से स्वच्छन्दतावाद का अभिनव उत्थान कहा जा सकता है जिसमें कलावाद, पलायनवाद, प्रतीकवाद, अभिव्यंजनावाद, हालावाद आदि का किंचित पुट है।" [२]

(१०) डॉ० केसरीनारायण शुक्ल :

इनका विचार है कि छायावाद और कुछ नहीं है, वह द्विवेदी-युग की प्रतिक्रिया मात्र है। जिस काव्य में यह प्रतिक्रिया भाव, भाषा, शैली सभी क्षेत्रों में दिखाई पड़ी वही नवीन काव्य छायावाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उन्हीं की पंक्तियों में—" द्विवेदी-युग के अंत में काव्य में जो नई प्रवृत्तियाँ प्रस्फुटित हुईं उनको 'छायावाद' का नाम मिला। कुछ लोगों ने इस काव्य को रहस्यवाद की संज्ञा भी दी। इस छायावादी (या रहस्यवादी) कविता का आरंभ द्विवेदी-युग के विरुद्ध प्रतिक्रिया रूप में हुआ था।" [३]

(११) डॉ० देवराज :

"छायावाद क्या है, इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि वह (१) गीतिकाव्य है, (२) प्रकृति काव्य है, और (३) प्रेम-काव्य अथवा रहस्यवादी काव्य है! छायावाद के ये वर्णन मिथ्या न होंगे, पर वे एकांत सत्य भी नहीं। शैली, कीट्स और टेनीसन का काव्य गीतिकाव्य है, पर उसे छायावाद नहीं कहा जा सकता; वर्ड्सवर्थ का काव्य प्रकृति-काव्य है, पर वह भी छायावाद नहीं, और कबीर, जायसी तथा रवीन्द्र रहस्यवादी हो सकते हैं, पर वे छायावादी नहीं हैं। वस्तुतः छायावाद साधारण गीतिकाव्य, प्रेम-काव्य या रहस्यवादी काव्य नहीं है, न्यूनाधिक यह सब होते हुए भी उसकी कुछ अपनी विशेषतायें हैं जो उसे एक निराली स्थिति दे देती हैं। ये विशेषतायें हमारी समझ में तीन हैं, अर्थात्

१—कवि सुमित्रानंदन पंत और उनका प्रतिनिधि काव्य, पृष्ठ ३०, प्रो० शिवनंदन प्रसाद

२—वही, पृष्ठ ५

३—आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत—पृष्ठ १६८, डॉ० केसरी ना० शुक्ल

—(१) धूमिलता या अस्पष्टता (२) बारीकी या गुम्फन की सूक्ष्मता, और (३) काल्पनिकता और कल्पना—वैभव।" [१]

(१२) डॉ० सुधीन्द्र :

ये छायावाद को प्रेम, प्रकृति, सर्व चेतनवाद, निगूढ़ वेदना, विस्मय भावना, सूक्ष्म तत्त्व बोध, नवीन अभिव्यंजना प्रणाली आदि कई विशेषताओं से संयुक्त एक विशिष्ट काव्य-प्रवृत्ति मानते हैं। उनका विचार है कि "छायावाद में वस्तुतः मानसिक भावात्मक प्रतीकवाद का विधान होता है। उसमें हृदय की नाना भावनाओं और अनुभूतियों को प्रकृति के अथवा दृश्य-जगत के दूसरे प्रतीकों द्वारा व्यंजित किया जाता है। तब कवि की अंतर्वासना का बहिर्गत प्रतीक-प्रतिबिंब हो जाता है। उसमे कवि की आशा-निराशा व्यथा-वेदना, प्रेम-प्रणय की संश्लिष्ट भावनाओं की छाया डोलती रहती है।" [२] आगे वे लिखते हैं, "अब कविता में 'छायावाद' और 'रहस्यवाद' भिन्न हो गये हैं। वस्तुतः इन दोनों मे अंतर केवल 'दर्शन' (चिंतन) के क्षेत्र में है। यह स्मरणीय है कि 'छायावाद' और 'रहस्यवाद' केवल काव्य-शैली ही नहीं हैं—वे वस्तुतः विशेष काव्य-दृष्टियां (Poetic-outlook) हैं। ये दृष्टियां वस्तुतः भाव लोक पर अवलम्बित हैं। 'छायावाद' के रूप में कवि की दृष्टि 'स्व' के आत्म-तत्त्व पर, सृष्टि (प्रकृति) की सम्पूर्ण भूमिका में, पड़ती है। और 'रहस्यवाद' में कवि की दृष्टि 'स्व' के आत्मतत्त्व पर स्रष्टा (पुरुष) की भूमिका में, पड़ती है। पहले में वह समस्त सृष्टि (प्रकृति) को अपनी सत्ता से एकीभूत—एक प्राण-तत्त्व से स्पंदित देखता है और दूसरे में वह अपनी सत्ता को, परोक्ष सत्ता का तद्रूप, तदाकार और प्रतिरूप देखता है। ......'छायावाद' में प्रकृति के जड़ में चेतनत्व की प्रतीति ही आवश्यक है, ईश्वर की प्रतीति नहीं, परन्तु 'रहस्यवाद में 'प्रकृति' में विश्व और मानव में परोक्ष तत्त्व की प्रतीति अनिवार्य है।" [३]

(१३) डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय :

इनका विचार है कि प्रथम महायुद्ध से द्वितीय महायुद्ध तक की कविता की मुख्य प्रवृत्ति है - छायावाद। छायावाद मे व्यक्तिवाद, गीतितत्त्व, लयात्मकता, मानसिकता और अंग्रेजी के प्रभावादि का मिश्रण है। काव्य की वह विशिष्ट प्रवृत्ति जिसमे व्यक्तिवादी भावनायें प्रकट की जातीं हैं—जिसमें विषय नहीं, स्वयं कवि और उसका राग-विराग प्रधान होता है, जिसमें प्रकृति चेतन सत्ता के रूप देखी जाती है, कवि प्रकृति पर अपनी भावनाओं का आरोपण करता है। अभिव्यंजना में लाक्षणिकता, वक्रता, संगीतात्मकता आदि विशेषतायें होती हैं—वही छायावाद है। [४]

१—छायावाद का पतन, पृष्ठ ११, डॉ० देवराज
२—हिन्दी कविता में युगान्तर, पृष्ठ ३७३ — डॉ० सुधीन्द्र
३—वही, पृष्ठ ३२६
४—पठिए—हिन्दी साहित्य का इतिहास (संक्षिप्त संस्करण) —डॉ० वार्ष्णेय

(१४) डा० विनयमोहन शर्मा, एम० ए० :

"यदि गभीरता से विचार किया जाये तो छायावाद कोई 'वाद' नही बन सकता। उसके पीछे कोई दार्शनिक या परपराजन्य भूमि नही दिखाई देती। उसे हम काव्य की एक शैली कह सकते हैं।" और आगे वे कहते हैं—"छायावाद की रचनाओ मे भावो की नवीनता की अपेक्षा, भावों को व्यक्त करने की कला मे नवीनता अवश्य थी। और कवि की दृष्टि भी बाह्य जगत से हटकर अपने 'भीतर ही रमने लगी—और अन्तर्वृत्ति निरूपक सारी रचनायें छायावादी शैली की कृतियाँ कहला सकती हैं।"

(१५) श्री विश्वम्भर 'मानव' :

"प्रकृति मे चेतना के आरोप को छायावाद कहते हैं। यह आरोप आलकारिक रूप मे न हो, वास्तविक ढग का हो। कहने का तात्पर्य यह कि प्रकृति मे चेतना की अनुभूति की प्रतीति पाठक को वर्णन से ही होने लगे। मनुष्य को इस बात मे कुछ आनन्द आता है कि वह यह देखे कि जैसे सुख-दुख का अनुभव वह करता है, उसी प्रकार और सभी करें। दूसरे शब्दो मे प्रकृति मे मानवी भावो का आरोप छायावाद है।"[१] श्री विश्वम्भर 'मानव' ने आगे फिर बतलाया है, "प्रकृति मे चेतना की अनुभूति और प्रकृति मे तत्त्वो का पारस्परिक भाव सबध छायावाद कहलाता है। प्रकृति से ऊँचे उठकर आत्मा परमात्मा का पारस्परिक प्रणय-व्यापार रहस्यवाद की कोटि मे आता है। अर्थात् छायावाद प्रकृति के क्षेत्र की वस्तु है। रहस्यवाद अध्यात्म के क्षेत्र की।"[२]

(१६) श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी :

"आज दिन 'छायावाद' के नाम से जो कुछ हिन्दी मे प्रसिद्ध है उसे केवल अभिव्यजना-चमत्कार ही समझना चाहिए।"

(१७) 'सुमन' और 'मल्लिक' :

"छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों मे होता है। एक तो उस रहस्यमय अर्थ मे जहाँ कवि अपनी अनेक चित्रमयी भाषा मे उस अज्ञात प्रियतम के प्रति अपने प्रेम का व्यक्त करता है और अनेक रूपको द्वारा अपने प्रियतम का चित्र खीचता है। छायावाद का दूसरा अर्थ है प्रस्तुत मे अप्रस्तुत का कथन। इस अर्थ मे कवि प्रकृति को सजीव मानकर उसकी प्रत्येक वर्ण्य-वस्तु मे चेतनाजन्य क्रियाएँ देखता है।"[३]

(१८) प्रो० 'क्षेम', एम० ए० :

"इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि आतरिक सौदर्य या स्वानुभूति को ही प्रस्थान-बिन्दु

१—सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ ६१ — श्री विश्वम्भर 'मानव'

२—वही, पृष्ठ १०६

३—साहित्य-विवेचन; पृष्ठ ११४; सुमन . मल्लिक

मानकर लिखी गई आत्मनिष्ठ कविता छायावाद कही जानी चाहिए।......छायावाद की विशेषता स्वानुभूतिमूलक अंतः सौंदर्य की अभिव्यंजना है जिसके लिए लक्षणा, व्यंजना, प्रतीक और उपचार-वक्रता नियोजित हुए हैं।......'वस्तु' वर्णन की आत्मनिष्ठता या 'वस्तु' के स्थान पर कवि के अंतर में वस्तु द्वारा समुत्थित अनुभूति के चित्रण की प्रमुखता ही 'छायावाद' की प्रधान विशेषता है।...... छायावादी कवियों ने 'वस्तु' से अधिक 'वस्तु' द्वारा जगाई गई आंतरिक अनुभूतियों को ही प्राथमिकता दी है। सभी कवियों ने स्वानुभूति या वस्तु की आंतरिकता के प्रकाशन पर बल दिया है। 'छायावाद' के प्रारम्भ-कर्त्ता 'प्रसाद' और प्रसाद-काव्य के मर्मी श्री केशवप्रसाद मिश्र ने भी इसी तत्त्व पर जो दिया है, फिर इसी को छायावादी काव्य की मूल विशेषता, आत्मा, क्यों न स्वीकार किया जाये?"[1]

आइये, अब छायावाद के सुप्रसिद्ध एवं महान कलाकारों के भी छायावाद सम्बन्धी विचार देखें—

(१९) श्री जयशङ्कर 'प्रसाद' :

"कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के वाह्य-वर्णन से भिन्न, जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी में उसे 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया गया। रीतिकालीन प्रचलित परम्परा से जिसमें बाह्य वर्णन की प्रधानता थी — इस ढंग की कविताओं में भिन्न प्रकार के भावों की नये ढंग से अभिव्यक्ति हुई। ये नवीन भाव आंतरिक स्पर्श से पुलकित थे।"[2]

(२०) सुश्री महादेवी वर्मा, एम० ए० :

इनका विचार है कि छायावाद इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध मनुष्य की सारी कोमल और सूक्ष्म भावनाओं का विद्रोह है। छायावाद एक विशिष्ट सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति है जिसने अपनी सहज-स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिए नूतन अभिव्यंजना-प्रणाली का कोमलतम कलेवर अपनाया। "सृष्टि के वाह्याकार पर इतना लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव-अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था, और आज भी मुझे उपयुक्त ही लगता है।" छायावाद पर महादेवी जी के और विचार हैं—

"छायावाद तत्वतः प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीथ है।" "इस युग की (छायावाद की) प्रायः सब प्रतिनिधि रचनाओं में किसी न किसी अंश तक प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य में व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी रहता है और प्रकृति के व्यष्टिगत सौंदर्य पर चेतनता का आरोप भी।"[3] .... "यह युग पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित और बंगाल की नवीन काव्यधारा से परिचित तो था ही, साथ ही उसके सामने रहस्यवाद की भारतीय

१—छायावाद की काव्य-साधना; पृष्ठ १२२; प्रो० 'क्षेम'

२—काव्यकला तथा अन्य निबन्ध; पृष्ठ ८६; 'प्रसाद'

३—आधुनिक कवि – १ (अपने दृष्टिकोण से); महादेवी वर्मा

परम्परा भी रही।"[1] "छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध मे प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप मे चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख मे प्रकृति उदास और सुख मे पुलकित जान पडती थी।"[2]

(२१) श्री सुमित्रानन्दन 'पन्त' :

"द्विवेदी युग की तुलना मे छायावाद इसलिए आधुनिक था कि उसके सौंदर्य बोध और कल्पना मे पाश्चात्य साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड गया था और उसका भाव-शरीर द्विवेदी युग के काव्य की परम्परागत सामाजिकता से पृथक हो गया था। किन्तु वह नये युग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नही कर सका था। उसमे व्यावसायिक क्रान्ति और विकासवाद के बाद का भावना वैभव तो था, पर महायुद्ध के बाद की 'अन्न-वस्त्र' की धारणा (वास्तविकता) नही आई थी। उसके 'हासअश्रु आशाऽकांक्षा' 'खाद्यमधु पानी' नही बने थे। इसलिए एक ओर वह निगूढ, रहस्यात्मक, भावप्रधान, और वैयक्तिक हो गया, दूसरी ओर केवल टेकनिक और आवरण मात्र रह गया। दूसरे शब्दो मे नवीन सामाजिक जीवन की वास्तविकता को ग्रहण कर सकने के पहले, हिन्दी कविता, छायावाद के रूप मे ह्रास युग के वैयक्तिक अनुभवो, ऊर्ध्वमुखी विकास की प्रवृत्तियो, ऐहिक जीवन की आकाक्षाओ-सम्बन्धी स्वप्नो, निराशाओ और सवेदनाओ को अभिव्यक्त करने लगी, और व्यक्तिगत जीवन सघर्ष की कठिनाइयो से क्षुब्ध होकर, पलायनवाद के रूप मे, प्राकृतिक दर्शन के सिद्धान्तों के आधार पर, भीतर-बाहर मे, सुख दुःख मे, आशा-निराशा और सयोग-वियोग के द्वन्द्वो मे सामञ्जस्य स्थापित करने लगी।"[3]

ऊपर के उदाहरणो से यह स्पष्ट पता चलता है कि छायावाद हिन्दी के आलोचको के बीच बहुत दिनो तक काफी मतभेद का विषय रहा। छायावाद के सम्बन्ध मे हिन्दी के विचारको के विचार प्रायः एक से नही हैं। किसी ने छायावाद का अर्थ 'अस्पष्टता' से लिया, किसी ने 'आत्मा मे परमात्मा की छाया' और किसी ने 'प्रकृति मे आत्मा की छाया।' छायावाद रहस्यवाद नहीं है जैसा कि शुक्ल जी और डॉ० रामकुमार वर्मा मानते हैं।[4] और छायावाद न तो केवल अभिव्यजना की शैली विशेष है अथवा मात्र अभिव्यजना-चमत्कार, ही, जैसा कि शुक्लजी, प्रो० विनयमोहन शर्मा और श्री सद्गुरुशरण अवस्थी का मत है।[5] छायावाद मे अभिव्यजना की विशेष शैली है, रहस्य-भावना भी, अतर्मुखी प्रवृत्ति, आत्मनिष्ठता और पलायनवाद है, द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध विद्रोह भी। छायावाद प्रकृति मे मानव भावो का प्रतिबिंब देखता है, और साथ ही विश्व की किसी वस्तु मे

१—आधुनिक कवि—१ (अपने दृष्टिकोण से) : महादेवी वर्मा
२—य मा : महादेवी वर्मा
३—आधुनिक कवि—२ (पर्यालोचन) : सुमित्रानन्दन पंत; पृष्ठ १७—१८
४—प्रस्तुत पुस्तक का 'छायावाद और रहस्यवाद' निबंध पढ़िए
५—देखिए—हिन्दी काव्य में छायावाद—दीनानाथ 'शरण'; पृष्ठ ७३ ७४

अज्ञात सप्राण छाया की झांकी भी। न्यूनाधिक ये सब कुछ होते हुए वह (छायावाद) हिन्दी कविता की ऐसी विशिष्ट काव्य प्रवृत्ति है जिसमे द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया-भावना है, नूतन अभिव्यंजना की विशेष शैली भी; जिसमे रहस्य भावना, प्रकृति मे चेतन का आरोप, नवीन जीवन दर्शन, अतर्मुखी प्रवृत्ति, आत्मनिष्ठा, अशरीरी प्रेम, सूक्ष्म सौन्दर्य, निगूढ़ वेदना आदि अनेक विशेषतायें सुमधुर रूप में सपृक्त हैं। उन विशेषताओं की संतुलित-समन्वित काव्य धारा ही छायावाद है। ऊपर की किन्ही एक-दो विशेषताओं को लेकर उन्हे ही छायावाद कहने की गलती नही की जा सकती। तो विभिन्न आलोचकों के छायावाद-विषयक विचारों का विरोध और खण्डन कर, न तो मैं अपने निबंध का व्यर्थ का विस्तार देना चाहता हूँ और न छायावाद को उलझाना ही। मेरी स्थापना यही है कि छायावाद-द्विवेदी युगीन जड़-जर्जर इतिवृत्तात्मक कविता के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप उद्भूत वह विशिष्ट काव्य-प्रवृत्ति है जिसमें निम्नलिखित विशेषतायें है—(१) अतर्मुखी प्रवृत्ति अथवा आत्मनिष्ठता, 'वस्तु' नही, 'वस्तु' द्वारा पड़ी प्रतिक्रिया की प्रमुखता, (२) प्रकृति मे चेतन का आरोप, (३) अशरीरी प्रेम, (४) सूक्ष्म सौन्दर्य, (५) सर्ववादात्मक दृष्टिकोण, (६) प्रकृति की सौन्दर्य राशि मे किसी अज्ञात परोक्ष चेतन सत्ता का आभास, (७) विस्मय-भावना, (८) नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण, (९) अभिव्यंजना की नवीन विशेष पद्धति—लाक्षणिकता, कल्पना का आतिशय्य, भाषा में अत्यंत कोमलता और माधुर्य, नवीन छंद, नवीन प्रतीक-योजना, व्याकरण के जड़ नियमों का उल्लंघन, नूतन अलंकार, तथा नवीन एवं मौलिक उपमान, इत्यादि। तात्पर्य यह कि उपर्युक्त इन सभी विशेषताओं से समन्वित काव्य प्रवृत्ति ही छायावाद है। ऊपर की विशेषताओं में किसी एक विशेषता-विशेष के शीशे से छायावाद को देखना कदापि उचित नहीं होगा।

ऊपर लिखी अपनी उन्ही सारी विशेषताओं के कारण ही छायावाद उच्चकोटि का काव्य मान्य हो सका। ऐसा लगता है कि छायावाद के रूप मे हिन्दी कविता ने अपनी उन्नति की उच्चावस्था को उपलब्ध कर लिया। भाव, विषय, छन्द, शैली—सभी दृष्टियों से हिन्दी कविता इससे आगे जा ही नही सकती थी। काव्य एवं कला की जितनी भी ऊँचाई संभव है, छायावाद ने उसे निश्चय पाया है। वस्तुतः वह हिन्दी कविता का स्वर्ण-युग है, ऐसा मुझे कहने मे सकोच नहीं है। श्री रामरतन भटनागर के अनुसार, ठीक ही, "यह निश्चय है कि छायावादी काव्य के समान इतना वैभिन्नय, इतनी उदात्त भावना, इतनी श्रेष्ठ मूर्तिमत्ता न किसी प्रांतीय कवि की रचना मे मिलेगी, न सामूहिक रूप से किसी प्रांतीय भाषा मे। हिंदी काव्य की भाषा-शैली और काव्योपमता मे जितना इन दस-पन्द्रह वर्षों ने जोड़ा, उतना कदाचित् किसी अन्य काव्य-युग ने दो सौ-तीन सौ वर्षों मे भी न जोड़ा होगा।"[१] और वास्तव मे—"छायावाद काव्य का आधुनिक काव्य-साहित्य में बड़ा महत्व है। इस काव्य द्वारा हम प्राचीन काव्य की वृन्दावन-गलियों से एकदम बाहर आ सके हैं। इसी काव्य के द्वारा हमने पश्चिम और अपने बाहर के विश्व से अपना संबंध

१—हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—डॉ० रामरतन भटनागर; पृष्ठ २२१

जोडा है। इससे भी महत्त्व की बात यह है कि इसी काव्य ने हमारे कलात्मक आंदोलनों का श्री गणेश किया है।"[1] निष्कर्षतः छायावाद नव्य मूल्यांकन की अपेक्षा रखता है और नवीन ढंग से उसकी अनुसन्धानात्मक आलोचना की जानी चाहिए। प्रसन्नता की बात है, हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक प्रो० शिवनन्दन प्रसाद ने इस क्षेत्र मे प्रशंसनीय कार्य किया है जिसका छायावाद विषयक आलोचना साहित्य मे स्थायी महत्त्व है। फिर भी, अभी बहुत कुछ कार्य शेष है, ऐसा तो कहा ही जा सकता है।

१—हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—डॉ० रामरतन भटनागर पृ० ३२०

छायावाद : मूल प्रेरणायें और प्रमुख प्रवृत्तियाँ

हिन्दी कविता मे छायावाद का उद्‌भव क्यों हुआ ? छायावाद की प्रेरक-शक्तियाँ क्या थीं ? छायावाद को किससे प्रेरणा मिली ? आइये, इन प्रश्नों पर हम सविस्तार विवेचन करें। इस सम्बन्ध मे आचार्य शुक्ल का मत है कि छायावाद का जन्म स्वाभाविक रूप से नही हुआ। छायावाद का उद्‌भव अंग्रेजी और बंगला की प्रेरणाओं से हुआ है। स्वयं शुक्लजी के शब्दों में "पुराने ईसाई संतो के छायाभास (Phantasmata) तथा यूरोपीय काव्यक्षेत्र मे प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (Symbolism) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बँगला में ऐसी कविताएँ 'छायावाद' कही जाने लगी थी। यह 'वाद' क्या प्रकट हुआ, एक बने-बनाये रास्ते का दरवाजा-सा खुल पड़ा और हिन्दी के कुछ नए कवि एक बारगी उस ओर झुक पड़े। यह अपना क्रमश: बनाया हुआ रास्ता नहीं था। इसका दूसरे साहित्य क्षेत्र में प्रकट होना, कई कवियों का इस पर एक साथ चल पड़ना और कुछ दिनों तक इसके भीतर अँग्रेजी और बँगला को पदावली का जगह-जगह ज्यों का-त्यों अनुवाद रखा जाना, ये बातें मार्ग की स्वतन्त्र उद्‌भावना नहीं सूचित करतीं।"[1] दूसरी ओर उनका कथन यह भी है कि "द्वितीय उत्थान में काव्य की नूतन परम्परा का अनेक विषय-स्पर्शी प्रसार अवश्य हुआ, पर द्विवेदी जी के प्रभाव से एक ओर उसमें भाषा की सफाई, दूसरी ओर उसका स्वरूप गद्यवत् रूखा, इतिवृत्तात्मक और अधिकतर बाह्यार्थ निरूपक हो गया। अत: इस तृतीय उत्थान में जो परिवर्तन हुआ और पीछे 'छायावाद' कहलाया वह इसी द्वितीय उत्थान की कविता के विरुद्ध कहा जा सकता है।"[3] छायावाद की एक प्रमुख नेत्री कवयित्री महादेवी वर्मा का भी यही विचार है कि छायावाद का उद्‌भव द्विवेदी-युग के विरुद्ध प्रतिक्रिया के ही कारण हुआ। "रीतिकालीन रुढिवाद से थके हुए कवियों ने जब सामयिक परिस्थितियों से प्रेरित होकर तथा बोलचाल की भाषा में अभि-व्यक्ति की स्वाभाविकता और प्रचार की सुविधा समझ कर, व्रजभाषा का अधिकार खड़ी बोली को सौंप दिया तब साधारणत: लोग निराश ही हुए। भाषा लचीलेपन से मुक्त थी,

---

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ६२१—रामचन्द्र शुक्ल

२—वही, पृष्ठ ६४७

जन-माधुर्य के अभ्यस्त कानों को ध्वनि में कर्कशता जान पड़ती थी और उक्तियों में चमत्कार न मिलता था। इसके साथ-साथ रीतिकाल की प्रतिक्रिया भी कुछ कम वेगवती न थी। अतः उस युग की कविता की इतिवृत्तात्मकता इतनी स्पष्ट हो चली कि मनुष्य की सारी कोमल और सूक्ष्म भावनायें विद्रोह कर उठीं।"[1] डॉ० सुधीन्द्र की भी उक्ति है "द्विवेदी-युग की स्थूलता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के कारण ही छायावाद का उद्भव हुआ। द्विवेदी युग में चींटी से लेकर हाथी-पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य एवं विन्दु, समुद्र, आकाश, पृथ्वी, पर्वत आदि विविध वस्तुओं पर वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक कवितायें लिखी जा चुकी थीं। 'पर' पक्ष को सम्यक् रूप से आलोचित-पर्यालोचित कर चुकने के अनन्तर कवि-वृत्ति को उससे सहज विकर्षण होने लगा। 'स्व' पक्ष अर्थात् आत्म-जगत् (अन्तर्जगत्) की पुकार इतनी उत्कट हो उठी कि कवि को उधर भी झांकना पड़ा।"[2] डॉ० केसरीनारायण शुक्ल भी उपर्युक्त विचार से सहमत हैं। उनका कथन है कि "इस छायावादी (या रहस्यवादी) कविता का आरम्भ द्विवेदी-युग के विरुद्ध प्रतिक्रिया रूप में हुआ था। छायावाद की यह प्रतिक्रिया भाषा, भाव, शैली सभी में दिखाई पड़ी।"[3] प्रो० केसरी-कुमार 'छायावाद की प्रेरक शक्ति द्विवेदी-काल की शुष्कता के प्रति रसिकता की प्रतिक्रिया' कहते हुए भी छायावाद की मूल प्रेरणा तो लौकिक प्रेम को मानते है। "छायावाद का जन्म लौकिक प्रेम से हुआ है। हम रामनरेश त्रिपाठी के प्रेम-काव्यों की चर्चा करते हैं, जिनमें कुछ लोग न जाने कैसे छायावाद का आदि सूत्र देख लेते हैं। हम तो छायावाद के सम्मानित प्रजापतियों की बात कहते है जिनमे अनेक ऐसे थे जिनके जीवन का प्रेम-चक्र काव्य में मूल स्वर बनकर उतर आया है। लौकिक प्रेम, छायावाद के आदि प्रजापति जयशंकर 'प्रसाद' की कविता की सबसे प्रमुख विशेषता है।"[4] दूसरी ओर प्रो० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का मत है कि छायावाद की मूल प्रेरणा अंग्रेजी का रोमांटिक काव्य है। "छायावादी काव्य को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम योरप के रोमांटिक काव्य आंदोलन को हृदयङ्गम कर लें क्योंकि प्रेरणा के सूत्र सर्वप्रथम वहीं से मिले।"[5]

इस तरह स्पष्ट है कि छायावाद के उद्भव के संबंध में विद्वज्जन एकमत नहीं। कुछ लोग कहते है कि छायावाद की प्रेरक शक्ति द्विवेदी-युग के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी; कुछ लोगों का विचार है कि छायावाद की मूल प्रेरणा अंग्रेजी की रोमांटिक कविता है। दूसरी तरफ आलोचकों के अन्य वर्ग का मत है कि छायावाद बंगला के प्रभाव-स्वरूप उद्भूत हुआ। एक दल के लोगों का यह भी कहना है कि छायावाद की मूल प्रेरणा वैदिक काल

१—आधुनिक कवि—१ महादेवी वर्मा—पृष्ठ १५

२—हिन्दी कविता में युगांतर—डॉ० सुधीन्द्र, पृष्ठ २५६

३—आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृष्ठ १६८—डॉ० केसरीनारायण शुक्ल

४—छायावाद और प्रगतिवाद—पृष्ठ २६-२८-सं० देवेन्द्रनाथ शर्मा

५—हिन्दी साहित्य के प्रमुख 'वाद' और उनके प्रवर्तक-पृष्ठ ६-विश्वंभरनाथ उपाध्याय

से चली आती हुई अनुभूति से मिली। तो अब हम यह देखेंगे कि छायावाद की मूल प्रेरणा वास्तव में क्या है? छायावाद को वास्तव में किससे प्रेरणा मिली? क्या छायावाद की मूल प्रेरणा अंग्रेजी की रोमांटिक कविता है? अथवा द्विवेदी युग के विरुद्ध प्रतिक्रिया? अथवा बँगला और रवीन्द्र का काव्य? अथवा प्राचीन भारतीय साहित्य? आगे की पंक्तियों में इसी प्रश्न पर विचार किया जाएगा।

आचार्य शुक्ल के कथनों में स्वतः अन्तर्विरोध है कि 'छायावाद अपना क्रमशः बनाया हुआ रास्ता नहीं था', यह पाश्चात्य और बँगला की कविताओं की प्रेरणा से उद्भूत हुआ। दूसरी ओर स्वयं शुक्ल जी कहते हैं कि छायावाद को द्विवेदी-युग के विरुद्ध कहा जा सकता है। बात बड़ी विचित्र पहेली सी है कि एक ओर तो छायावाद को वे द्विवेदी युग के विरुद्ध प्रतिक्रिया मानते हैं और इस तरह स्पष्ट यह होता है छायावाद हिन्दी कविता का स्वाभाविक विकास था; किन्तु फिर अपनी ही बात को वे काटते हुए कहते हैं कि छायावाद को पाश्चात्य छायाभास (Phantasmata) और बँगला से मूल प्रेरणा मिली एवं यह अपना क्रमशः बनाया हुआ रास्ता नहीं था। छायावाद के उद्भव के वास्तविक कारणों को नहीं समझकर, यहीं पर आचार्य शुक्ल ने बहुत बड़ी भूल की है। मेरी स्थापना यही है कि आचार्य शुक्ल बहुत अंशों में छायावाद की मूल प्रेरणाओं को नहीं ग्रहण कर सके। अतएव उनके ये भ्रामक, अशुद्ध और मनगढ़त कथन स्वभावतः यदि उनकी ज्ञान-गरिमा और पांडित्य पर प्रश्न-चिह्न बन जाते हैं तो इसमें आश्चर्य नहीं, ऐसा मुझे कहना चाहिए। किन्तु संभव है, आचार्य शुक्ल 'द्विवेदी-युग के विरुद्ध' छायावाद को 'प्रतिक्रिया' मानते हुए भी; 'पाश्चात्य छायाभास (Phantasmata) और बँगला से ही छायावाद को मूल प्रेरणा मिली' ऐसा इसलिए कहते हैं कि उनका उद्देश्य छायावाद काव्य को लांछित करना था। इतने सहृदय समालोचक होते हुए भी आचार्य शुक्ल जाने क्यों छायावाद से नाराज़ थे! उस समय स्वदेशी आंदोलन की धूम थी, विदेशी वस्तुओं की होली जलाई जा रही थी। विदेशी वस्तुओं के प्रति जनता के हृदय में घृणा का भाव भर गया था। आचार्य शुक्ल ने छायावाद को लांछित करने के लिए ही उसे विदेशी चीज़ साबित करना बहुत अच्छा समझा। इसी कारण उन्होंने बतलाया कि हिन्दी का छायावाद बंगला और रवीन्द्र की नकल है और पाश्चात्य ईसाई संतों के छायाभास (Phantasmata) तथा यूरोपीय काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (Symbolism) ही उसकी मूल प्रेरणा है। किन्तु जैसा कि मैं कह चुका हूँ, आचार्य शुक्ल का मत बिलकुल भ्रामक और गलत है, ऐसा मानने में मुझे कुछ भी संकोच नहीं। छायावाद की मूल प्रेरणा, निश्चय ही पाश्चात्य ईसाई संतों के छायाभास (Phantasmata) तथा यूरोपीय काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित प्रतीकवाद (Symbolism) एवं बँगला और रवीन्द्र की कविताएँ नहीं स्वीकार की जा सकती। इस प्रकार उन आलोचकों से मेरा स्पष्टतः मतभेद है जिन्होंने यह कहा है कि छायावाद की मूल प्रेरणाएँ पाश्चात्य

रोमांटिक-काव्य और बँगला एवं रवीन्द्र की कविताओं से मिली है। यह मैं मानता हूँ कि छायावाद पर अँग्रेजी रोमांटिक काव्य, बँगला तथा रवीन्द्र की कविताओं का प्रभाव अवश्य पड़ा, किन्तु प्रभाव और प्रेरणा एक ही बात तो नहीं है! छायावाद काव्य पर अँग्रेजी रोमांटिक काव्य, बँगला तथा रवीन्द्र की कविताओं का मात्र प्रभाव है, किन्तु वे छायावाद की मूल प्रेरणाएँ तो निश्चय नहीं है। इतने व्यंग्य उपहास, इतनी कटु और विरोधी आलोचनाओं के बावजूद, जो काव्य प्रवृत्ति (छायावाद) जी सकी वह निश्चय ही, अंग्रेजी और बँगला की मात्र अनुकरण नहीं कही जा सकती। छायावाद की प्रेरणाओं में कुछ ऐसी अंतर्निहित शक्ति अवश्य थी कि जिससे वह हिन्दी का अक्षय शृंगार बन सका।

वास्तव में छायावाद की मूल प्रेरणाओं के रूप में बतायी गयी उपर्युक्त सारी बातें, एकांगी, अपूर्ण और अपर्याप्त हैं। विद्वान् आलोचक प्रो० शिवनन्दन प्रसाद जी के मत से मैं बिल्कुल सहमत हूँ कि "वस्तुतः छायावाद के जन्म का इतिहास समझने के लिए हमें तत्कालीन परिस्थितियों को समझना होगा। कोई भी प्रबल साहित्यिक प्रवृत्ति मात्र अँग्रेजी या बँगला प्रभाव से उद्भूत नहीं हो सकती और न किसी विदेशी प्रवृत्ति की नकल में ही किसी भाषा में कोई नवीन प्रवृत्ति पनप सकती है। विगत युग की साहित्यिक प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के रूप में ही कोई प्रवृत्ति खड़ी नहीं रह सकती, जब तक उसकी जड़ें तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की गहराई में न प्रविष्ट हों। छायावाद ईसाई संतों या रवीन्द्र की कविताओं या अँग्रेजी के रोमांटिक कवियों की नकल नहीं। वह मात्र द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक शैली की प्रतिक्रिया भी नहीं। वह देश की तद्युगीन सामाजिक जीवन और उसकी परिस्थितियों की युग की काव्य चेतना पर प्रतिक्रिया है।"[1] तो मेरी स्थापना यही है कि छायावाद की मूल प्रेरणायें तद्युगीन परिस्थितियों से मिलीं। किन्तु साथ ही विद्वान् आलोचक के इस विचार कि 'छायावाद देश की तद्युगीन मात्र सामाजिक जीवन और उसकी परिस्थितियों की उपज है' अथवा 'छायावाद के जन्म और विकास को इसी प्रकार तत्कालीन समाजिक जीवन की पीठिका में देखा जाय'[2] से मैं पूर्णतः अपने को सहमत नहीं पा रहा हूँ। मेरी निजी धारणा है कि छायावाद की मूल प्रेरणायें तद्युगीन मात्र सामाजिक जीवन और उसकी परिस्थितियाँ नहीं थी। मेरी निजी मान्यता यह है कि तद्युगीन सामाजिक जीवन के अतिरिक्त छायावाद को मूल प्रेरणायें तद्युगीन साहित्यिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से भी मिलीं। हाँ पीछे चलकर छायावाद ने भारतीय साहित्य, पाश्चात्य साहित्य तथा बँगला और रवीन्द्र की कविताओं से भी प्रभाव ग्रहण कर प्रेरणायें प्राप्त कीं। आइये इन सब पर अब हम विस्तार से विचार करें।

१—कवि सुमित्रानन्दन पंत और उनका प्रतिनिधि काव्य—पृष्ठ २६ · प्रो० शिवनन्दन प्रसाद।

२—वही, पृष्ठ २९।

पहले राजनैतिक परिस्थितियों पर ही विचार किया जाए। भारतेन्दु के समय में ही विदेशी शासन के विरुद्ध स्वतंत्रता की भावनायें भारतीयों के हृदय में जगने लगी थी। बीसवीं शती में समता स्वतंत्रता की भावनायें और भी फैलीं। द्विवेदी-युग में देश-प्रेम, स्वतंत्रता और देशोद्धार के विचार पर्याप्त रूप में तरंगित हुए। किन्तु दूसरी ओर शक्तिशाली अँग्रेजी साम्राज्य के बन्धनों को तोड़ने में कवि समर्थ नहीं थे। उनकी लेखनी तक बँधी थी, उन्हें अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने की भी स्वतंत्रता नहीं थी। फलतः कवियों की प्रवृत्ति अंतर्मुखी हो गई। अंग्रेजी शासन के बन्धनों के कारण जग-जीवन की बातें तो खुलकर वे कह नहीं सकते थे, अतएव अपने जीवन की निजी बातें ही, वे काव्य में व्यक्त करने लगे। छायावाद की आत्मनिष्ठता का यही कारण है, इसीलिए आरंभ में छायावादी कविताओं में समाज-पक्ष मौन है, इसीलिए तब छायावाद में केवल प्रकृति, प्रेम, नारी एवं वैयक्तिक भावनाओं का प्राचुर्य है। और उपर्युक्त राजनैतिक परिस्थिति के कारण ही कवियों की स्वतंत्रता की भूख जो तद्युगीन वास्तविक जीवन में तृप्ति नहीं पा सकी, काव्य के क्षेत्र में प्रतिक्रिया के रूप में फूट पड़ी।

इन्हीं राजनैतिक परिस्थितियों से छायावाद को प्रेरणायें मिलीं, इसे डा० नगेन्द्र ने यों प्रकट किया है कि "पिछले महासमर के उपरांत यूरोप के जीवन में एक निस्सार खोखलापन आ गया था – जीवन के प्रति विश्वास ही नष्ट हो गया था। परन्तु भारत में आर्थिक पराभव के होते हुए भी जीवन में एक स्पन्दन था। भारत की उद्‌बुद्ध चेतना युद्ध के बाद अनेक आशायें लगाये बैठी थी। उसमें स्वप्नों की चंचलता थी। वास्तव में भारत की आत्म-चेतना का यह किशोर-काल था जब अनेक इच्छा अभिलाषाएँ उड़ने के लिए पंख फड़फड़ा रही थीं। भविष्य की रूपरेखा नहीं बन पाई थी, परन्तु उसके प्रति मन में इच्छा जग गई थी। पश्चिम के स्वच्छन्द विचारों के सम्पर्क से राजनीतिक और सामाजिक बन्धनों के प्रति असंतोष की भावना मधुर उभार के साथ उठ रही थी, भले ही उनको तोड़ने का निश्चित विधान अभी मन में नहीं आ रहा था। राजनीति में ब्रिटिश साम्राज्य की अचल सत्ता और समाज में सुधारवाद की दृढ़ नैतिकता असंतोष और विद्रोह की इन भावनाओं को बहुर्मुखी अभिव्यक्ति का अवसर नहीं देती थी। *निदान वे अंतर्मुखी होकर धीरे धीरे अवचेतन में जाकर बैठ रही थी और वहाँ से शक्ति पूर्ति के लिए छाया-चित्रों की सृष्टि कर रही थीं।*'' ...नवीन चेतना से उद्दीप्त कवि के स्वप्न अपनी अभिव्यक्ति के लिए चंचल हो रहे थे, परन्तु वास्तविक जीवन में उसके लिए संभावना नहीं थी। अतएव स्वभावतः उसकी वृत्ति निकट यथार्थ स्थूल से विमुख होकर सुदूर रहस्यमय, और सूक्ष्म के प्रति आकृष्ट हो रही थी।" [1]

साहित्यिक अथवा काव्यात्मक परिस्थिति यह थी कि इस समय द्विवेदी युग में

१—आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ ८-१० । डा० नगेन्द्र

विविध विषयों पर तो काव्य रचा गया किन्तु काव्य गद्यवत् रूखा, इतिवृत्तात्मक और अधिकतर वाह्यार्थनिरूपक था। उस समय काव्य में काव्यत्व का ही अभाव था। कवि का हृदय खुलकर व्यक्त नहीं होता था। भाषा में लालित्य और कोमलता नहीं थी। डा० केसरी-नारायण शुक्ल के शब्दों में 'द्विवेदी-युग की कविता इतनी गहरी न हो सकी कि हृदय को छू लेती। उस समय की कविता अधिकांश में वाह्यार्थनिरूपक है, किन्तु उसमें व्यापकता नहीं है। वह ऊपरी तल पर है। सामाजिक रीति नीति पर भी लिखा गया है। लेकिन उनमें भी सूक्ष्म पर्यवेक्षण नहीं मिलता। कवि ऐसे विषयों की ओर उन्मुख हैं जिनके सामान्य धर्मों पर वह पद्यबद्ध वक्तृता दे सके। झूठी दार्शनिकता का आभास मिलता है और काव्य के बीच बौद्धिकता की प्रधानता है। संश्लिष्ट चित्रण की अपेक्षा विश्लेषण की ओर कवियों की अधिक रुचि है। इसी से कवियों ने 'साहस', 'संतोष' ऐसे सूक्ष्म विषयों को चुना और उनके सामान्य धर्म या उनकी महत्ता पर खूब लिखा। यदि 'प्रथ गुण-गान' और 'कवि या समालोचक' को कविता का विषय बनाया तो अपनी सूझ और बुद्धि-चमत्कार का प्रदर्शन किया। एक प्रकार से कविता ने आलोचना का परिधान ग्रहण कर लिया और काव्य 'पद्यात्मक निबंध' बन गया, जिसमें यथातथ्य कथन का प्राचुर्य रहता था और रसात्मकता की न्यूनता थी। इस प्रकार बौद्धिकता, आलोचनात्मक प्रवृत्ति, विश्लेषण, वाह्यार्थनिरूपण, भावात्मकता और गहरी सवंदेनशीलता का अभाव —द्विवेदी-युग की इन सब प्रवृत्तियों का अतिशय्य—छायावाद के आरंभ और प्रवर्तन का कारण बना।'' [१] तात्पर्य यह कि इस प्रकार द्विवेदी-युग की साहित्यिक परिस्थितियों से भी छायावाद को प्रेरणायें मिलीं। द्विवेदी युग की कविताओं के विषय बहिर्जगत से लिये जाते थे। उनके विषय इतिहास-पुराण से लिए जाते थे। उनकी अभिव्यंजना पद्धति भी पुरानी थी। द्विवेदी-युग के कवि प्राचीन आदर्शों से प्रभावित थे। लोकमंगल उनकी प्रवृत्ति थी। अतएव उनके हृदय की अपनी निजी अनुभूतियों का अभिव्यक्त होने का अवसर नहीं मिलता था। इन सबके विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। इन सबकी अतृप्ति और अभाव ने नूतन काव्य को प्रेरणायें दी। विषय, भाव, अभिव्यक्ति, आदर्श और दृष्टिकोण—सभी में नवीनता, इसी कारण, छायावाद में दिखाई पड़ी। तो यह माना जा सकता है कि तद्‌युगीन साहित्यिक अथवा काव्यात्मक परिस्थितियाँ भी अवश्य ही नवीन (छायावादी) काव्य की मूल प्रेरणायें है।

(अब आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों को हम एक साथ लेते हैं। सामाजिक दृष्टि से उस समय उच्च वर्गीय जमींदारों और पूँजीपतियों की इज्जत थी। अँग्रेजों की बहुत प्रतिष्ठा थी। निम्न मध्य वर्गीय कवियों और साहित्यिकों का समाज में सम्मान नहीं था। आर्थिक दृष्टि से भी ये उतने सम्पन्न नहीं थे। ऐसी परिस्थितियों में जग-जीवन और सामाजिक समस्याओं में उनकी उदासीनता स्वाभाविक थी। यही कारण है कि आरम्भ में छायावादी कविताएँ अंतर्मुखी रहीं, समाज-पक्ष उनमें मौन था। कवियों को जो सम्मान

१—आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृष्ठ १६८-९ ; डा० केसरी ना० शुक्ल

वास्तविक जीवन मे नही मिल सका, उन्होंने कल्पना-जगत में पाने का प्रयास किया। इसी कारण काव्य मे अब सब कुछ को छोड़कर कवि की अपनी अनुभूतियाँ ही बोल उठीं—अपनी वैयक्तिक भावनायें ही प्रधान हो गई। तो छायावाद को इन आर्थिक और सामाजिक जीवन की परिस्थितियों मे भी प्रेरणायें मिलीं, ऐसा मुझे कहना चाहिए। प्रो० शम्भूनाथ सिंह ने लिखा है कि छायावाद को तद्युगीन सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों से प्रेरणाएँ प्राप्त हुई। उस समय की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों ने छायावाद को प्रेरणायें दी।[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह अब स्पष्ट है कि पाश्चात्य छायाभास, अँग्रेजी रोमांटिक कविता अथवा बंगला और रवीन्द्र के काव्य का छायावाद पर चाहे जितना भी प्रभाव पड़ा हो (इस प्रश्न पर विवेचन अलग किया जायगा), किन्तु छायावाद को मूल प्रेरणायें तो निश्चय ही तद्युगीन राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से ही मिली। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने सत्य ही कहा है कि राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि कई कारणों से किसी देश या जाति की मान्यताओं मे परिवर्तन होता रहता है। छायावाद के जन्म के भी मूल कारण वही है। छायावाद देश की तद्युगीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि विषमताओं के कारण ही जन्म ले सका था।[2] तो स्पष्टतः डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के इस भ्रामक, अशुद्ध और अमौलिक (क्योंकि आचार्य शुक्ल ने यह पहले ही कहा था) विचार से मैं कदापि सहमत नहीं कि "छायावादी भाव-धारा की प्रेरणा का मूल स्रोत अँग्रेजी के रोमांटिक कवियों की कविता ही हो सकती है।"[3] हमारे ऊपर के विवेचन से तो यह स्वतः सिद्ध है कि तद्युगीन अपने देश की ही विविध परिस्थितियों से प्रेरणाएँ प्राप्त कर खड़ी होने वाली हिन्दी की यह नवीन काव्य-प्रवृत्ति (छायावाद) हिन्दी का ही अपना स्वाभाविक विकास था।

यहीं पर एक और बात की ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। जैसा कि सुश्री वर्मा ने ठीक ही लिखा है, छायावाद पाश्चात्य-साहित्य से प्रभावित और बंगला की नवीन काव्य-धारा से परिचित तो था ही, उसके सामने भारतीय रहस्यवाद की परम्परा भी रही।[4] प्रसाद जी निर्विवाद रूप से छायावाद के प्रवर्तक हैं। उनकी छायावादी रचनायें मुकुटधर पांडेय और महाकवि (?) श्री मैथिलीशरण गुप्त से निश्चय ही बहुत पहले लिखी गई। 'सरस्वती' में नहीं 'इन्दु' मे उनकी वे रचनायें प्रकाशित हुई थी, यह बात दूसरी है। किन्तु 'इन्दु' की फाइलों को उलटने का कष्ट न करने वाले आलोचक

१—अवन्तिका, काव्यालोचनाङ्क जनवरी १९५४, पृष्ठ २०१-२१०
२—हिन्दी साहित्य का इतिहास (संक्षिप्त संस्करण) पृष्ठ ११६—डॉ॰ वार्ष्णेय
३—अवन्तिका, काव्यालोचनाङ्क (जनवरी १९५४) पृष्ठ २१२
४—आधुनिक कवि—१ (महादेवी वर्मा) पृष्ठ १९

महाशय यदि छायावाद के प्रवर्त्तन का श्रेय श्री मैथिलीशरण गुप्त और श्री मुकुटधर पांडेय को देने की गलती कर बैठें, तो वही गलती मैं भी करूँ, यह कदापि उचित नहीं। बल्कि 'प्रसाद' ही छायावाद के प्रवर्त्तक हैं, ऐसा मुझे कहना चाहिए और इन 'प्रसाद' जी ने प्रेरणाएँ ग्रहण की थी प्राचीन भारतीय आर्य साहित्य से। उन पर शैवों के आनन्दवाद का प्रभाव था और भारतीय संत साहित्य का। रसखान, घनानन्द, पद्माकर की कविताओं को भी वे हृदय से प्यार करते थे।[1] "प्रसाद में आपको कहीं भी विदेशीपता न मिलेगी—न भाषा न अभिव्यंजना में, न भाव में, न रहस्यवाद में, न रहस्य-भावना में। उनके रहस्यवाद या उनकी रहस्यभावना के मूल उद्गम उपनिषद् है।"[2] (तो इस प्रकार यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि छायावाद की मूल प्रेरणाएँ देशी परिस्थितियाँ एवं देशी साहित्य ही हैं।) हम उसे विदेशी अनुकरण कह कर गर्हित नहीं कर सकते। देश की तद्युगीन विविध परिस्थितियों से प्रेरणायें प्राप्त कर छायावाद ने जन्म लिया। हिन्दी कविता की यह (छायावाद) स्वाभाविक अँगड़ाई थी, हिन्दी कविता का यह अपना स्वाभाविक विकास था। हिन्दी के सुपरिचित साहित्यकार श्री रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में ठीक ही "छायावाद तो हमारे संतों की वाणियों द्वारा हिन्दी-भाषा-भाषियों के जीवन में सदियों से, कम-से-कम एक हजार वर्षों से होता रहा है। यह हमारा उधार लिया हुआ धन नहीं है।"[3] मेरी धारणा है कि हिन्दी काव्येतिहास में छायावाद की प्रेरक शक्ति, उसके जन्म और मूल प्रेरणाओं की यही कहानी है।

प्रेरणाओं के पश्चात्, छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों पर अब हम विचार करेंगे। छायावाद की विशेषतायें क्या हैं? छायावाद की क्या-क्या प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं? आइये, हम विचार करें।

(छायावाद की सबसे प्रमुख विशेषता आत्मनिष्ठता है) ऐसा मुझे कहना चाहिए। प्रो० शिवनन्दन प्रसाद जी के ही शब्दों में "छायावाद की कविता में आत्मनिष्ठ भावना का प्राधान्य होता है, (अर्थात् कवि अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना करता है।) सामाजिक जीवन, परिस्थितियों अथवा समस्याओं का चित्रण वह विशेष नहीं करता है। छायावाद के प्रत्येक कवि में आत्मनिष्ठता मिलेगी। कहा जाता है कि यह आत्मनिष्ठता द्विवेदी-युग की अतिशय यथातथ्यवादी एवं इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया रूप में उद्भूत हुई और प्रतिक्रिया के कारण छायावाद में आत्मनिष्ठता की अतिशयता हो गई। कवि चूंकि अपनी ही भावनाओं का अभिव्यंजन करता है, इसीलिए इतिहास और पुराण से कथावृत्त लेकर वह काव्यों की रचना नहीं करता, वरन् अपने वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित विषयों तक ही उसकी पहुँच रहती है।"[4] डॉ० केसरीनारायण शुक्ल का भी यही मतव्य है कि

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास-पृष्ठ ६९०—रामचन्द्र शुक्ल

२—अवंतिका (काव्यलोचनांक)—प्रो० शिवनाथ, पृष्ठ १९६

३—वही, पृष्ठ १८८

४—कवि सुमित्रानंदन पंत और उनका प्रतिनिधि काव्य, पृष्ठ ३१—प्रो० शिवनंदन प्रसाद

आत्मनिष्ठता अथवा अंतर्मुखी प्रवृत्ति ही छायावाद की प्रमुख विशेषता है। स्वयं उन्हीं की पंक्तियों में—"छायावाद की प्रमुख विशेषता उसकी प्रवनित मनोदृष्टि में है। छायावादी कविता में बाह्य वास्तविकता से अपने को अलग करने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। छायावादी कवि बाह्य पदार्थों के वर्णन विश्लेषण में प्रवृत्त न होकर अपनी आंतरिक अनुभूतियों में अधिक संलग्न प्रतीत होते हैं। बाह्यात्मकता से अधिक अंतर्दर्शन की प्रवृत्ति छायावादी कविता की प्रधान विशिष्टता है।"[1] डॉ॰ नगेन्द्र भी उक्त मंतव्य से सहमत है, कि छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति अन्तर्मुखी है। कहा जा चुका है कि छायावाद द्विवेदी-युग के विरुद्ध प्रतिक्रिया था। द्विवेदी युग के कलाकार बाह्य जगत के विषयों पर कवितायें लिखते थे। उनकी प्रवृत्ति बहिर्मुखी थी। वे बाह्यनिष्ठ थे। इसकी प्रतिक्रिया हुई छायावाद की अतिशय आत्मनिष्ठता के रूप में। तो छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों में एक अत्यंत प्रमुख प्रवृत्ति आत्मनिष्ठता निश्चय है। फलतः विद्वान् आलोचक प्रोफेसर श्री शिवनंदन प्रसाद के शब्दों में ठीक ही "इसलिए छायावाद के कवियों की दूसरी विशेषता है उद्दाम वैयक्तिकता का अभिव्यंजन। ...... छायावादी कवि सामाजिक जीवन की इन क्रिया-प्रतिक्रियाओं से उदासीन रहा। व्यक्ति और व्यक्ति के संबंध से जो सामाजिक समस्याएँ या उलझनें पैदा होती हैं उनको सुलझाने का प्रयास छायावाद में हम नहीं पाते हैं। छायावाद का कवि आभ्यंतर का गायक रहा।"[2] डॉ॰ वार्ष्णेय का भी विचार है, कि छायावाद की एक विशेष विशेषता व्यक्तिवादी भावनाओं का अभिव्यंजन है।[3] मेरी निजी धारणा भी है कि छायावाद की एक प्रमुख विशेषता वैयक्तिक भावनाओं की अभिव्यक्ति है। छायावाद का कवि जग-जीवन और इतिहास-पुराण की बाह्य एवं स्थूल वस्तुओं पर कवितायें नहीं लिखता। छायावाद के कवि के लिए तो प्रधान है उसके अपने ही जीवन की निजी भावनायें और उसकी अपनी ही निजी अनुभूतियाँ। यह वैयक्तिकता ही छायावाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। छायावाद में कवि के स्वयं निजी जीवन, उसके अंतस्तल की निजी भावनायें ही प्रधान रूप से अभिव्यक्त हुईं। छायावादियों का ध्यान अपनी ही निजी भावनाओं की अभिव्यक्ति की ओर विशेष रूप से रहा। सीता शकुन्तला के जीवन की जगह कवि की अपनी जिन्दगी की ही घटनायें प्रधान हो उठीं। उन्होंने अपनी निजी भावनाओं और अनुभूतियों को ही महत्ता दी। इस प्रकार छायावाद को यह सबसे बड़ी प्रवृत्ति थी वैयक्तिकता की, वैयक्तिक भावनाओं एवं अनुभूतियों के अभिव्यंजन की। डा॰ केसरीनारायण जी शुक्ल ने इसी बात को यों स्वीकार किया है कि छायावादी कवि "अपने हृदय की आंतरिक अनुभूतियों को ही अधिक यथार्थ और महत्वपूर्ण मानता है। उसके लिए अपनी अनुभूतियाँ और अपनी विधायक कल्पना ही बाह्य पदार्थों से अधिक सत्य है।"[4] इसे ही डा॰

१—आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृष्ठ १७०

२—कवि सुमित्रानंदन पंत और उनका प्रतिनिधि काव्य, पृष्ठ ३१-३२

३—हिन्दी साहित्य का इतिहास (संक्षिप्त संस्करण)—लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पृष्ठ ११९

४—आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृष्ठ १७१

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य' नामक अपनी पुस्तक में विषय की अपेक्षा विषयी का प्रधान होना बताया है और डॉ० नगेन्द्र ने स्पष्ट लिखा है—"छायावाद की कविता का विषय अंतरंग व्यक्तिगत जीवन हुआ : छायावाद का कवि आत्मतल्लीन होकर कविता लिखने लगा। उसका यही व्यक्ति-भाव प्रसाद में आनंदवाद और निराला में अद्वैतवाद के रूप में प्रकट हुआ। पंत में उसने आत्मरति का रूप धारण किया और महादेवी में परोक्ष रति का ...।"[1]

(२) (इसीलिए छायावाद की एक अन्य प्रमुख विशेषता हुई अतिशय अहं भावना।) वैयक्तिकता को प्रधानता देने के कारण प्रायः सभी छायावादी कवियों में अत्यधिक अहं भावना रही। (डॉ० केसरीनारायण जी शुक्ल' के शब्दों में इसे ही यों कहा जा सकता है कि अहंभावना का उदय हुआ और अपनी निजी निराली तथा वैयक्तिक अभिरुचि का प्रदर्शन छायावादी काव्य की प्रमुख विशेषता बन गई)। यद्यपि छायावादी कवि का अनुभव सामान्य जनमत से दूर तथा भिन्न भी था, फिर भी उसे इसके चित्रण में किसी प्रकार का संकोच न होता था क्योंकि उसे उनकी सत्यता में विश्वास था और उसका प्रदर्शन वह अपना अधिकार समझता था। ऐसा होना स्वाभाविक भी था क्योंकि अहंभावना का अर्थ ही है अपने महत्त्व का प्रत्यभिज्ञान तथा उसकी प्रतिष्ठा। इस प्रकार छायावादी कवियों ने अपनी आंतरिक, वैयक्तिक तथा निराली मानसिक प्रक्रिया का वर्णन अपने शब्दों में किया। इन कवियों में पंत सबसे अधिक मुखर थे। उनकी 'पल्लव' की भूमिका इसी तथ्य का संकेत दे रही है। शब्दों के संबंध में जो व्याकरण संबंधी या अन्य स्वच्छन्दतायें उन्होंने ली हैं उनका आधार उनकी अपनी रुचि है और उसे वे कवि का अधिकार समझते है। पंत के सामने प्रभात का चित्र पुल्लिंग में आ नहीं पाता, स्त्री रूप में उसका चित्र अधिक निखरता है। इसीसे उन्होंने प्रभात के संबंध में स्त्रीलिंग का प्रयोग किया। इसी प्रकार यदि उनकी इच्छा या रुचि ने आवश्यक समझा तो उन्होंने 'ण' के स्थान पर 'न' कर दिया। (संक्षेप में छायावादी कवि अपनी ही सीमा में घिरे रहे। उन्होंने अपनी इच्छा और रुचि का अपने अंतः प्रदेश तथा अपने भाव जगत की अपनी वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं का अपने शब्दों और उत्तम पुरुष में वर्णन किया।) 'निराला' जी की 'अनामिका' की निम्नलिखित पंक्तियाँ केवल उन्हीं के भावोद्रेक की प्रक्रिया का संकेत नहीं दे रही हैं, प्रत्युत छायावादी युग के एक विशेष तथ्य का निर्देश भी कर रही हैं।

मैंने 'मैं' शैली अपनाई
देखा दुखी एक निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय में—
मेरे, झट उमड़ वेदना आई...

१—आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ १०

दृष्टिकोण है। यह सर्ववादात्मक दृष्टिकोण भी छायावाद की अत्यन्त प्रमुख प्रवृत्तियों में एक है, ऐसा मुझे कहना चाहिए। छायावाद की इस प्रमुख प्रवृत्ति के उदाहरण में ये पंक्तियाँ आप देख सकते हैं—

कभी उड़ते पत्तों के साथ मुझे मिलते मेरे सुकुमार
बढ़ाकर लहरों से निज हाथ बुलाते फिर मुझको उस पार

—पंत

नैश तम में सघन छाई घटा से, जुगनुओं की पाँति और तड़ित् की मुस्कान से, सर्वत्र, एक ही चेतना तो व्याप्त है—

शून्य नभ पर उमड़ जब दुःख भार-सी
नैश तम से सघन छा जाती घटा
बिखर जाती जुगनुओं की पाँति भी
जब सुनहले आँसुओं के हार सी
तब चमक जो लोचनों को मूँदता
तड़ित् की मुस्कान से वह कौन है ?

—महादेवी

श्रृंगार और प्रेम की प्रधानता भी छाया-काव्य की अन्यतम विशेषता है। 'पंत', 'प्रसाद', 'निराला' और महादेवी वर्मा के अतिरिक्त छायावाद के अन्य कवियों की रचनायें भी इससे ओत-प्रोत हैं। छायावाद वास्तव में प्रधानतः प्रेम-काव्य है, श्रृंगारिक है, बहुत अंशों में सही माना जा सकता है। किन्तु मेरी निजी धारणा है कि छायावाद की इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है प्रेम अथवा श्रृंगार का अत्यन्त संयमित अभिव्यंजन। छायावाद ने प्रेम और श्रृंगार का बड़ा ही शिष्ट, संस्कृत और संयमित चित्रण किया है। जैसे एक उदाहरण पर्याप्त है—

सिहर भरे निज शिथिल मृदुल अंचल को अधरों से पकड़ो
बेला बीत चली है चंचल बाहु-लता से आ जकड़ो !

—प्रसाद

संयोग-श्रृंगार का पन्त का भी यह चित्रण अत्यन्त संयमित, शिष्ट और सुन्दर हुआ है—

आज रहने दो सब गृह काज,
प्राण, रहने दो सब गृह काज !
आज उर के स्तर स्तर में प्राण,
सजग सौ-सौ स्मृतियाँ सुकुमार !
दृगों में मधुर स्वप्न संसार,
मर्म में मदिर स्पृहा का भार !

छायावाद की अन्यान्य विशेषतायें हैं वेदना एवं विस्मय-भावना। छायावादी कवियों का हृदय कमल-कोमल और अत्यंत संवेदनशील (Sensitive) था। इसके अलावा और परिस्थितियां थीं। इसीलिए छायावाद में वेदना का आधिक्य हम पाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इस पर स्वतंत्र निबंध ही अन्यत्र दिया गया है।

छायावादी कविताओं में विस्मय का स्वर भी स्पष्ट सुनाई देता है। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की अनेक कविताओं में भी एक प्रकार की विस्मय भावना सर्वत्र अन्य व्याप्त हैं। जैसे कुछ उदाहरण लीजिए—

(१) तुम कनक किरण के अंतराल में लुक छिपकर चलते हो क्यों ?
—प्रसाद

(२) किरण, क्यों तुम बिखरी हो आज, रंगी हो तुम किसके अनुराग ?
— प्रसाद

(३) हँसकर बिजली-सी चमकाकर हमको कौन रुलाता ?
बरस रहे हैं ये दोनों दृग, कैसी अँधियारी में ?
—प्रसाद

(४) अब छुटता नहीं छुड़ाये यह रँग अनोखा कैसा ?
—प्रसाद

(५) कौन-कौन तुम परहित वसना म्लान-मना भू पतिता-सी ?
—पंत

(६) शांत सरोवर का उर, किस इच्छा से लहरा कर, हो उठता चंचल-चंचल ?
—पंत

(७) कहो तुम रूपसि कौन ?
—पंत

ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। तो स्पष्ट ही छायावाद की एक प्रवृत्ति विस्मय-भावना भी है, ऐसा कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध में डॉ० सुधीन्द्र का मत उल्लेखनीय है, "छायावादी कवि की अभिव्यक्तियों में एक विस्मय-भावना मिलती है। यह उसकी चिंतन-वृत्ति का सहज परिणाम है। वह विश्व और प्रकृति, मनुष्य और ईश्वर के रहस्यों के प्रति सप्रश्न हो उठता है। कदाचित् उसका उत्तर देने में वह असमर्थ और असफल है।"[1]

प्रो० शिवनन्दन जी के अनुसार छायावाद की एक प्रवृत्ति पलायन-भावना भी है। स्वयं उन्हीं की पंक्तियों मे—"विषम परिस्थितियों की विभीषिका का सामना करने में असमर्थ होने के कारण कवि अपने थकित मानस को विश्राम देने के लिए कल्पना की दुनिया में पलायन करता है। यह पलायन-प्रवृत्ति भी छायावाद की एक विशेषता है जो परिस्थिति-

१—हिन्दी कविता में युगांतर—पृष्ठ २८९ : डॉ० सुधीन्द्र

जनित है। छायावाद का कवि नियति द्वारा जिस दुनिया में रहने को बाध्य है, उस दुनिया की भीषण वास्तविकताएँ उसे बर्दाश्त नहीं और जिस सुन्दर और मधुर लोक की वह कामना करता है उसे इस धरती पर उतार लाना उसके-वश की बात नहीं तो इसके सिवा चारा ही क्या है कि अपने उस स्वप्न संसार को लेकर वह मग्न रहे, उसी की मधुरिमा में वह खोया रहे, वास्तविकता की यंत्रणा से वह मुक्त रहे। इस पलायनवाद के मूल में जवाबदेही या गैर जिम्मेदारी की भावना नहीं है, बल्कि स्वतन्त्रता और सामंजस्य की ऐसी उत्कट आकांक्षा है जिसके अभाव में कवि वर्तमान की वास्तविकता से समझौता नहीं कर सकता है।"[1]

तो यह रही छायावाद की भावगत प्रवृत्तियों की बात। छायावाद की भावगत प्रमुख विशेषताओं के विवेचन के उपरांत अब उसकी शैलीगत अथवा कलात्मक प्रवृत्तियों की चर्चा भी अनिवार्य ही है। "छायावाद की अभिव्यंजना-प्रणाली" शीर्षक स्वतंत्र निबन्ध में ही छायावाद की शैलीगत प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन अन्यत्र किया जाएगा। किन्तु छायावाद की शैलीगत प्रमुख प्रवृत्तियों का संक्षिप्त परिचय यहाँ भी अपेक्षित है, ऐसा मुझे मानना चाहिए। छायावाद द्विवेदी-युग के विरुद्ध प्रतिक्रिया था, इसलिए शैली के क्षेत्र में भी वह प्रतिक्रिया दिखाई दी। छायावाद की शैलीगत प्रमुख प्रवृत्ति शब्द सौन्दर्य, सरसता, मधुरता, कोमलता एवं संगीतात्मकता की ओर रही। रचना-विधान की दृष्टि से द्विवेदी-युगीन प्रबंधत्व को छोड़ छायावाद ने गीतात्मकता अपनाई। छायावादी काव्य अधिकतर मुक्तकों में रचित हुआ। छन्दों में भी मुक्त छन्द धड़ल्ले से प्रयुक्त हुआ। पहले जहाँ द्विवेदी-युग में शुष्क इतिवृत्तात्मकता और यथातथ्य चित्रांकन होता था अब छायावाद में भावात्मकता और कल्पना की ऊँची उड़ान होने लगी। अत्यधिक कल्पनाशीलता और स्थूल विषयों की अपेक्षा सूक्ष्म आंतरिक भावनाओं को प्रमुखता देने के ही कारण अप्रस्तुत-योजना का भी बाहुल्य हुआ। छायावादी कवियों को प्रस्तुत के लिए अप्रस्तुत का ही कथन करना पड़ता था। फलतः इसी कारण उन्होंने अप्रस्तुत-योजना की खोज में जब अपनी दृष्टि दौड़ाई तो धरती से लेकर आकाश तक उनकी कल्पना गई —

तुम्हारी आँखों का आकाश
सरल आँखों का नीलाकाश
खो गया मेरा खग अनजान
मृगाक्षिणि ! इनमें खग अनजान !

—पंत

छायावाद ने नवीन सूक्ष्म उपमानों की उद्‌भावना की। उसने ध्वन्यार्थव्यंजना, विशेषण-विपर्यय और मानवीकरण जैसे नूतन अलंकारों के भी प्रचुर प्रयोग किए। इनके उदाहरण यहाँ जान-बूझकर विस्तार भय के कारण नहीं दिए जा रहे हैं। छायावाद की शैलीगत

१—कवि सुमित्रानंदन पंत और उनका प्रतिनिधि काव्य; पृष्ठ २२–२३

अन्य विशेषताएँ हैं—प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग, लाक्षणिक वैचित्र्य, चित्र भाषा अथवा मूर्तभाषा, एवं आंतरिक भावों की सहज सच्ची अभिव्यक्ति के लिए व्याकरणगत नियमों का उल्लंघन। छायावाद में यौवन के लिए ऊँषा, प्रफुल्लता के लिए प्रभात, प्रेमी के लिए मधुप, विषाद के के लिए संध्या और मानसिक आकुलता के लिए तूफान इत्यादि प्रतीक काफी व्यवहृत हुए। लाक्षणिक वैचित्र्य की प्रवृत्ति भी काफी रही। चित्र भाषा अथवा मूर्त भाषा का अर्थ है रूप व्यंजक शब्द। पंत जी के अनुसार काव्य के शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों सेव की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें।[१] छायावाद की शैली में चित्र-भाषा की भी यह प्रवृत्ति प्रधान रूप में हम पाते हैं। यहाँ एक नमूना देखिए—

> खींच ऐंचीला भ्रू सुरचाप, शैल की सुधि यों बारम्बार
> हिला हरियाली का सुदुकूल, झुला झरनों का झलमल हार
> जलद पट से दिखला मुखचन्द्र पलक पल पल चपला के मार
> भग्न उर पर भूधर-सा हाय ! सुमुखि, धर देती है साकार !
>
> —पंत

छायावादी कवियों ने अपनी आंतरिक भावनाओं और अनुभूतियों की सहज सच्ची अभिव्यक्ति के लिए व्याकरण के नियमों का भी उल्लंघन करना उचित माना है। ठीक ही, भाषा तो भावों के अभिव्यंजन का मात्र साधन है। वह अपने में साध्य नहीं। साध्य तो भाव ही हैं। अतः साध्य (भाव) की अभिव्यक्ति के लिए साधन (भाषा) में यथोचित परिवर्तन और संशोधन उपयुक्त ही माने जायेंगे। 'मित्र', 'प्रभात, 'प्राण,' 'स्पन्दन' आदि शब्दों का स्त्रीलिंग में प्रयोग इसी दृष्टि से तो हुआ है। संक्षेप में, छायावाद की शैलीगत प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन इसी प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

१—पल्लव (भूमिका) 'पंत'

छायावाद की विषय-सीमा

प्रत्येक युग की कविता का कुछ-न-कुछ विषय होता ही है। विषय के अभाव में कविता हो भी सकती है, मैं ऐसी कल्पना नहीं कर सकता। कविता का आखिर कुछ तो विषय होगा ही। साहित्य में कला ही ऐकांतिक सत्य नहीं है, कला के साथ-साथ भाव का भी स्वतन्त्र स्थान और विशेष महत्त्व है। 'कैसे' के पहले प्रश्न उठता है 'क्या' का ही ? पहले बात आती है तब उसकी अभिव्यक्ति की कला। सुतरां, छायावादी कविताओं की विषय-वस्तु पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। किन्तु विषय की हम जब चर्चा करते हैं तो हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि कविता के विषय, कविता के भेद के अनुकूल बदल भी सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि कविता मुक्तक है तो उसका विषय भी तदनुकूल मुक्तक के योग्य होगा। वहाँ कविता (मुक्तक) का विषय होगा प्रेम, निराशा, उत्कण्ठा, हर्ष, उल्लास अथवा मानव-मन में उठने वाले इसी प्रकार के क्षणिक भाव जो मुक्तक की संक्षिप्तता की दृष्टि से आवश्यक हैं। उसी तरह कविता यदि प्रबन्ध है तो विषय ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक आख्यान हो सकता है।

अब आइये, ऊपर के इस सामान्य विवेचन के आलोक में हम छायावादी कविताओं की विषय-वस्तु पर विचार करें। छायावादी कविताओं के सम्बन्ध में स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि उसकी विषय-वस्तु है क्या ? (प्रकृति, प्रकृति के विविध रमणीय चित्र और प्रकृति की प्रतिक्रियारूप में उद्भूत कवि की निजी अनुभूतियाँ, सौंदर्य, प्रेम, नारी—ये ही हैं छायावाद की विषय-सीमाएँ।) यह हम जानते हैं कि छायावाद द्विवेदी-युगीन शुष्क आदर्शवाद की विरुद्ध प्रतिक्रिया रूप में उत्पन्न हुआ था। यह भी हम मानते हैं कि छायावाद पर अँग्रेजी रोमांटिक पुनर्जागरण-युगीन कवियों (शैली, बायरन, वर्ड्सवर्थ, कीट्स आदि) का प्रभाव है।) तो स्वभावतः छायावादी कविताओं की विषय-वस्तु में भी क्रान्ति आ उपस्थित हुई। (द्विवेदी-युग के कलाकार इतिहास-पुराण से घटनायें लेकर प्रबन्ध काव्यों का सृजन करते थे। छायावाद ने अपनी अभिव्यक्ति प्रमुखतः गीतों में की। अतएव छायावादी कविता के विषय मुक्तक गीतों के अनुकूल मानव-मन के क्षणभंगुर भाव बने। द्विवेदी-युग ने शृंगार को वर्जित-प्रदेश ही मान लिया था। छायावाद में इसकी प्रतिक्रिया हुई। छायावाद ने प्रेम को अपना विषय बनाया।) लेकिन हमने यह चर्चा की है कि (छायावाद का प्रेम-वर्णन अश्लील नहीं है। छायावाद में प्रेम का अत्यन्त संयमित और उदात्त चित्रण हुआ है। द्विवेदी-युग में प्रकृति को सजीव सत्ता रखनेवाली वस्तु नहीं समझी गई थी। इस

युग के कवियों को जब प्रकृति का वर्णन करना होता था तो वे सीधे सीधे यथातथ्य रूप मे उसका वर्णन करते थे। जैसे—

> दिवस का अवसान समीप था
> गगन था कुछ लोहित हो चला
> तरु शिखा पर थी अब राजती
> कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा
>
> —हरिऔध (प्रियप्रवास)

इस स्थूल यथातथ्य चित्रण की भी प्रतिक्रिया हुई छायावाद मे। छायावाद ने भी प्रकृति को अपनी कविताओ का विषय बनाया किन्तु छायावाद की प्रकृति द्विवेदी-युग से सर्वथा नवीन है। इस युग के कवियों ने प्रकृति को सजीव सत्ता रखनेवाली नारी के रूप मे चित्रित किया। इतना ही नही, प्रकृति मे उन्हें परम चेतन परमात्मा की भी छाया दिखाई दी।

नारी के प्रति भी छायावादी कवियो ने नई दृष्टि अपनाई। द्विवेदी युग की नारी मर्यादा सीमा के बन्धनो से घिरी थी। नारी को द्विवेदी युगीन कलाकारो ने अति आदर्श पर आसीन कर दिया था। वह घर के अन्दर आदर्शों मे ही आबद्ध थी। हिन्दी कविता मे पहली पहली बार छायावाद ने नारी को व्यापक दृष्टिकोण से देखा। छायावाद की कविता की विषय नारी रही और नारी वहाँ द्विवेदी युग के परिवेशो से सर्वथा भिन्न है। छायावाद की नारी स्वतन्त्र है, देवी, मा, सहचरी, प्राण है। तो इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी युग की कविता के विषयो मे जो कमी थी, उसकी पूर्ति हुई छायावाद मे। द्विवेदी युग की इसी प्रतिक्रिया के ही कारण, शायद, बहुत दिनो तक छायावादी कविताओ के विषय ये ही प्रकृति, नारी और प्रेम बने रहे। छायावाद की सारी कवितायें ही जैसे प्रकृति, नारी और प्रेम की विषय सीमाओं मे बँध गई। और इस दृष्टि से विद्वान् समालोचक स्वर्गीय श्री रामचन्द्र शुक्ल का ठीक ही कहना था कि छायावाद में 'नाना अर्थ भूमियों पर काव्य का प्रसार रुक सा गया। प्रेम क्षेत्र (कही आध्यात्मिक, कही लौकिक) के भीतर ही कल्पना की चित्र विधायिनी क्रीडा के साथ प्रकाण्ड वेदना, औत्सुक्य, उन्माद आदि की व्यंजना तथा व्रीडा से दौडी हुई प्रिय के कपालो पर की ललाई, हाव भाव, मधुस्राव, तथा अश्रुप्रपात इत्यादि के रंगीले वर्णन करके ही अनेक कवि अब तक पूर्ण तृप्त दिखाई देते हैं। जगत और जीवन के नाना मार्मिक पक्षो की ओर उनकी दृष्टि नही है।'[1] और फिर छायावाद की प्रवृत्ति अधिकतर प्रेम-गीतात्मक होने के कारण हमारा वर्तमान काव्य प्रसगो की अनेक रूपता के साथ नई-नई अर्थ भूमियो पर कुछ दिनो तक बहुत कम चल पाया।'[2] किन्तु जैसा कि हम आगे देखेंगे यह स्थिति सदैव बनी नही रही। छायावादी कविताओ में विषय की अनेक रूपता के भी दर्शन हुए। तो निश्चय ही हम यह नही मान सकेंगे कि छायावादी काव्य मे विषय की एकांगिता सदैव बनी रह गई है।

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६२४, श्री रामचन्द्र शुक्ल
२—हिन्दी साहित्य का इतिहास—श्री रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ६७६

हम यह जानते हैं कि छायावाद हिन्दी कविता में उद्दाम वैयक्तिकता का प्रथम विस्फोट है। छायावादी कवियों ने अपने व्यक्तिगत जीवन, अपनी निजी भावों, अनुभवों और अनुभूतियों को अपने काव्य में अत्यधिक महत्त्व दिया है। द्विवेदी-युग के कवि को अपने हृदय के भावों को वाणी देने की स्वतन्त्रता नहीं थी। उसे तो ऐतिहासिक-पौराणिक पात्रों की बातें कहनी पड़ती थी। अपनी बातों, अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का उसे अवसर ही कहाँ था? द्विवेदी-युग के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई छायावाद में। कवि का अह अपनी अभिव्यक्ति के लिए तड़प उठा। फलतः छायावाद मे कवियों की अपनी निजी अनुभूतियों को आप स्वच्छन्द रूप से मुखरित होते हुए पाते हैं। छायावादी कवि अंतर्मुखी थे, उन्होंने अन्तश्चेतना के अन्तर्गृह मे ही अपनी कविता की कुटिया बनाई। छायावाद मे व्यक्ति की एकांत अनुभूतियों ने ही वाणी पाई। तो यही कारण है कि स्वभावतः व्यक्ति-जीवन के हर्ष-विषाद, प्रेम-पीड़ा, आशा-निराशा, उत्कण्ठा-उन्माद बहुत दिनों तक छायावादी कविताओं के विषय बने रहे। छायावाद के कवियों को समाज की, अपने से बाहर किसी की चिन्ता न थी। समाजपरक कविता के विरुद्ध ही तो छायावाद की व्यक्तिनिष्ठ कविता का उद्भव हुआ था। सुतरां छायावादी काव्यों मे वैयक्तिकता ही उद्दाम रूप में बोल उठी है, समाजपक्ष प्रायः मौन है। तो बहुत दिनों तक छायावादी कविताओं मे मानव-जीवन की व्यापकता, समाज की विविध परिस्थितियों, समस्याओं के दर्शन दुर्लभ रहे। इसीलिए आरम्भिक युग में छायावादी कविताओं मे घटनात्मकता नहीं है, प्रबन्धकाव्य नहीं है। चाँदनी, ऊषा, पल्लव, नीरजा, लहर,—प्रेम, वेदना, उत्कण्ठा, उन्माद—रूप, सौंदर्य, स्मृति आदि ये ही कविताओं के विषय रहे। हर्ष, विषाद, सुख, दुख, स्वप्न, आशा इत्यादि को ही अभिव्यक्ति प्रदान करना कवि का अभीष्ट रहा। राजनीति, धर्म, समाज, आदि की समस्याओं ने छायावादी कविताओ को आन्दोलित नहीं किया। छायावाद प्रेम, प्रकृति और नारी के सुकोमल सौन्दर्य स्वप्नों मे सोता रहा। जीवन की कठोरताओं, समाज, देश, विदेश की घटनाओं—परिस्थितियों से छायावादी कवि बिलकुल उदासीन रहा। तो स्पष्ट है, इस अवस्था में छायावाद की विषय-वस्तु की सीमा अत्यन्त सीमित रही। छायावाद मे जग-जीवन की व्यापकता का अभाव रहा। स्पष्टतः छायावादी कवि व्यक्तिवादी रहे। वे समाज के नहीं, जग-जीवन और व्यापक मानवता के नहीं, व्यक्ति मन के कवि बन बैठे। तो इस स्थिति में कविता के विषय का अत्यन्त अल्प हो जाना स्वाभाविक ही है। जब कवि की दृष्टि अंतर्मुखी हो जाती है तो विषय की अल्पता में आश्चर्य ही क्या है! किन्तु इस अल्पता की पूर्ति तो होनी ही चाहिये अन्यथा कवि फिर लिखेगा कैसे? इस अल्पता की पूर्ति छायावाद मे दो प्रकार से हुई है (१) प्रथम, तो कल्पना द्वारा; और (२) अलंकार-योजना द्वारा। जब कविता मे विषय की कमी हो जाती है तो कवि एक ही विषय को विविध कल्पनाओं द्वारा कहने लगता है। महादेवी के गीतों मे विविध कल्पना-चित्रों का यही रहस्य है। पंत जी की 'अप्सरा' अथवा 'भावी पत्नी के प्रति' शीर्षक कविताओं मे भी वर्ण्य-वस्तु की अल्पता की क्षति-पूर्ति ही कल्पना-चित्रों द्वारा की गई है। विषय की

अल्पता की पूर्ति का दूसरा साधन अलकारो की बहुल योजना भी है। एक ही बात को कवि विभिन्न अलकारो के द्वारा चमत्कार पूर्ण ढग से कई बार नित अभिनव, रूप मे कहता जाता है। जैसे पत जी की 'भावी पत्नी के प्रति' शीर्षक कविता से यह एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा—

> अरुण अधरो की पल्लव प्रात, मोतियो सा हिलता हिम-हास
> इन्द्रधनुषी पट से ढँक गात, बाल विद्युत् का पावस लास
> हृदय मे खिल उठता तत्काल अधखिले अगो का मधुमास
> तुम्हारी छवि का कर अनुमान, प्रिये, प्राणो की प्राण

तो निष्कर्षत: यह मजे मे कहा जा सकता है कि छायावादी कविताओ की विषय-वस्तु प्रकृति और प्रेम की रगीनो मे ही रमणशील रही। और इसी कारण छायावादी कविताओ का विषय विस्तार कम मिला इसमे सन्देह नही। किन्तु जैसा कि मैंने ऊपर कही सकेतित किया यह छायावादी कविताओं का विषय-वस्तु का इतना सकोच 'सदैव' बना नही रहा। प्रसाद, पत और निराला सभी जीवन के विविध मार्मिक पक्षो को भी अपनी कविताओ के विषय बनाने लगे। दीन हीन, पीडित, निर्बल, भिक्षुक, विधवा, समाज, राष्ट्र आदि से लेकर चींटी और पासी के बच्चे तक छायावादी कविताओ के विषय बने। स्त्रियो की आजादी, समता और स्वतन्त्रता पर भी कवितायें लिखी गई बापू, १५ अगस्त और भारत माता पर भी। पुरानी ऐतिहासिक-पौराणिक घटनाएँ भी कविताओ की विषय बनी और नवीन काल्पनिक कहानियाँ भी। तो निश्चय ही समग्र छायावादी कविताओ का विश्लेषण एव मूल्याकन करते समय हम छायावादी कविताओ पर विषय वस्तु की अत्यंत अल्पता अथवा सकुचित-सीमित होने का आक्षेप नही कर सकेंगे। छायावादी कविताओ मे विषय का पर्याप्त विस्तार हम पाते हैं। छायावाद के विरोधी आलोचक स्वय श्री रामचन्द्र शुक्ल ने अतत: स्वीकार किया कि "हर्ष की बात है कि अब कई कवि उस सकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकलकर जगत् और जीवन के और और मार्मिक पक्षो की ओर भी बढते दिखाई दे रहे हैं। × × × स्वर्गीय जयशकर प्रसाद जी अधिकतर तो विरह-वेदना के नाना सजीले शब्द पथ निकालते तथा लौकिक और अलौकिक प्रणय का मधु-गान ही करते रहे, पर इधर 'लहर' मे कुछ ऐतिहासिक वृत्त लेकर छायावाद की शैली का चित्रमयी विस्तृत अर्थ भूमि पर ले जाने का प्रयास भी उन्होने किया और जगत् के वर्तमान दुख द्वेष पूर्ण मानव-जीवन का अनुभव करके इस 'जले जगत के वृन्दावन बन जाने' की आशा भी प्रकट की तथा 'जीवन के प्रभात' को भी जगाया। इसी प्रकार श्री सुमित्रानदन पत ने 'गुजन' मे सौंदर्य चमन से आगे बढकर जीवन के नित्य स्वरूप पर दृष्टि डाली है, सुख दुख दोनो के साथ अपने हृदय का सामंजस्य किया है और 'जीवन की गति मे भी लय का अनुभव किया है। × × × निराला जी की रचना का क्षेत्र तो पहले से ही कुछ विस्तृत रहा। उन्होंने जिस प्रकार 'तुम और मैं' मे उस रहस्यमय 'नाद वेद आकार सार, का गान किया, 'जुही की कली' और 'शेफालिका' मे उन्मद प्रणय-चेष्टाओ के पुष्प-

चित्र खड़े किये, उसी प्रकार 'जागरण' वीणा बजाई, इस जगत के बीच 'विधवा' की विधुर और करुण मूर्ति खड़ी की और इधर आकर 'इलाहाबाद के पथ पर' एक पत्थर तोड़ती दीन स्त्री के माथे पर श्रम-सीकर दिखाये। सारांश यह कि अब शैली के वैलक्षण्य द्वारा प्रतिक्रिया प्रदर्शन का वेग कम हो जाने से अर्थभूमि के रमणीय प्रसार के चिन्ह भी छायावादी कहे जाने वाले कवियों की रचनाओं में दिखाई पड़ रहे हैं।"[1] तो छायावाद में विषय की अत्यंत अल्पता बनी नहीं रह गई है। छायावादी कविताओं मे विषय-वस्तु बिल्कुल संकुचित-सीमित है, स्पष्टतः, ऐसा कभी स्वीकार नहीं किया जा सकता। छायावाद मे व्यक्ति-जीवन के साथ-साथ समाज-पक्ष भी मुखर हो उठा।

१—हिंदी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ६५६—७—रामचन्द्र शुक्ल

रचना-विधान की दृष्टि से 'छायावाद'

रचना विधान की दृष्टि से शास्त्रज्ञों ने कविता के ये भेद किये है—
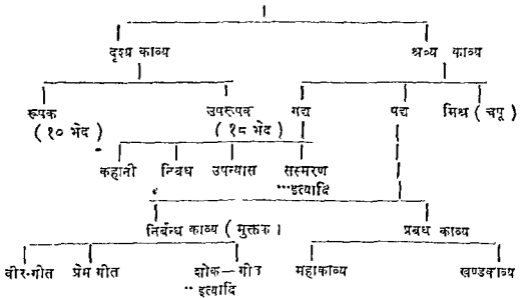
तो स्पष्टतः छायावाद श्रव्य-काव्य के अंतर्गत पद्य है। अब हमें देखना यह है कि इसका रचनाविधान प्रबंध है अथवा निर्बन्ध। यह हम जानते हैं कि छायावाद का उद्भव द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। द्विवेदी-युगीन अधिकांश कवितायें इतिवृत्तात्मक थी। 'संतोष' 'आशा' 'साहस' आदि विषयों पर वे कवि कवितायें लिखते थे और उनमें उपदेशात्मकता रहती थी। वास्तव में कवित्व का उनमें नितांत अभाव था। उन्हें 'पद्यबद्ध निबंध' कहना ज्यादा अच्छा होगा। दूसरी ओर द्विवेदी-युगीन कलाकार इतिहास-पुराण से घटनायें और कहानियाँ लेकर प्रबंध कविताओं का सृजन करते थे। वहाँ भी वर्णनात्मकता का ही प्राधान्य था, भावुकता-कविता के दर्शन दुर्लभ थे। इस प्रकार की बहुत सी रचनाओं से पाठक और नवीन कलाकार ऊब रहे थे। छायावाद के रूप में उसी के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। अब वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक कविताओं की जगह भावात्मक स्वानुभूतिरूपक कविताएँ लिखी जाने लगी। द्विवेदी-युगीन लम्बे-चौड़े 'पद्यबद्ध निबंधों' का स्थान मुक्तक गीतों ने लिया। अब प्रबंधों से ऊबकर छायावाद के कवियों ने मुक्तकों की शरण ली। यही कारण है कि छायावाद का रचना-विधान मुख्यतः गीतात्मक रहा।

छायावाद में कवि का अहं प्रधान हो उठा था। अन्यत्र मैंने कहा है कि द्विवेदी-युग में चूँकि कवि बाह्य-वस्तुओं और घटनाओं के चित्रण में ही व्यस्त रहे, इस कारण उनकी अपनी अनुभूतियाँ, हृदय के अपने भाव उपेक्षित रहे। छायावाद के रूप मे उसकी प्रतिक्रिया हुई ; और कवि ने अपने हृदय-लोक को (अपनी निजी भावनाओं को) कविताओं में प्रमुख स्थान दिया। व्यक्तिगत भावों, अनुभूतियों के अनुकूल अभिव्यक्ति हुई मुक्तक गीतों में।

छायावाद के रचनाविधान में प्रमुखत: गीतात्मकता रही इसका रहस्य यही है।

इसके अतिरिक्त छायावाद पर रवीन्द्र और अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों का प्रभाव था। रवीन्द्र की 'गीतांजलि' का जादू छायावाद के सिर पर चढ़कर बोला। दूसरी ओर कोट्स, बायरन, वर्डस्वर्थ और शेली आदि अंग्रेज कवियों का रचना-विधान भी प्रधानत: गीत ही था। छायावाद के कवियों की कविताओं का रचना-विधान भी इसलिए गीत ही प्रमुख रहा है।

छायावाद के युग मे अब परिस्थितियों ने भी पलटा खाया था। भारतेन्दु-युगीन राज-विलासों के दिन बीत चुके थे। द्विवेदी-काल की शांति का भी अब अंत हो चुका था। महायुद्ध के बाद जीवन संघर्ष अत्यंत तीव्र हो गया। जीने के लिए मनुष्य को काफी परिश्रम करना आवश्यक दीख रहा था। युद्ध के दिनों की भीषणता और वैज्ञानिक-युग के कार्यों की व्यस्तता के कारण बड़े-बड़े प्रबंधों को पढ़ने की फुर्सत किसे थी ? स्वभावत: कवितायें छोटी होने लगी। कवियों ने अपनी अभिव्यंजना के हेतु गीतात्मक रचना-विधान को स्वीकार किया। छायावाद का रचना-विधान इस कारण भी गीतात्मक रहा है। छायावाद के इस प्रवाह ने द्विवेदी-युग के कलाकारों को भी प्रभावित किया। श्री मैथिली-शरण गुप्त, द्विवेदी-युग की सबसे बड़ी देन, भी 'साकेत', 'यशोधरा' आदि प्रबंध-काव्यों के प्रणयन मे छायावादी गीतात्मकता से अछूते नहीं रह सके। छायावाद के प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा आदि कवियों का रचना-विधान तो प्रमुखत: गीत रहा ही। रचना विधान की दृष्टि से मुक्तक गीतों का, इतनी बहुलता से, यह अपनाया जाना, निश्चय ही, छायावाद की अपनी महान मौलिकता है। छायावाद के विश्लेषण और मूल्यांकन के सिलसिले मे छायावाद की यह बहुत बड़ी विशेषता भुलाई नहीं जा सकती। पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा आदि छायावाद कवियों ने विविध विषयों पर बड़े ही सुन्दर गीतों की रचना की है। छायावाद का युग प्रधानतः मुक्तक गीतों का ही युग है। छायावाद की ही प्रमुख नेत्री कवयित्री सुश्री वर्मा के शब्दों में "हिन्दी काव्य का वर्तमान (छायावाद) युग गीत प्रधान ही कहा जाएगा। हमारा व्यस्त और व्यक्ति प्रधान जीवन हमें काव्य के किसी और अंग की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नहीं देना चाहता।"[1] विद्वान् आलोचक श्री शांतिप्रिय द्विवेदी का भी मत है कि "सच तो यह है कि अब के छायावाद ने अपनी एक विशेष प्रगति गीतों की ओर कर ली है। इसका कारण

१. यामा—महादेवी वर्मा

यह है कि या तो यह कविता का युग नही है, या यदि युग कविता को प्यार कर सकता है तो गीतो मे, जहाँ वह कर्म-श्रात विहग की तरह किसी डाल पर कुछ क्षण चहक ले।" [१] इसीलिए छायावाद की कविता का रचनाविधान प्रधानतया गीतात्मक है । द्विवेदी-युग की समाप्ति के साथ-साथ आख्यानात्मक प्रबध काव्यो का भी अत हो जाता है । वैसी इतिवृत्तात्मक एव वर्णनात्मक कविताओ की शुष्कता से छायावाद बहुत कुछ अछूता है। छायावाद-युग म गीतिकाव्य का स्रोत बहता रहा । श्री शातिप्रिय द्विवेदी के शब्दो मे "मध्य युग मे गीति-काव्य का जो स्रोत सामाजिक परिस्थितिवश अवरुद्ध हो गया था, आधुनिक युग मे वह नवीन चेतना द्वारा पुनर्भूत हुआ। भक्ति ने पहले भगवान् को गीताजलि दी थी, अब प्रेम ने मनुष्य का भी भावाजलि दी। गीतो की परिधि विस्तीर्ण हो गई। द्विवेदी-युग म गीतिकाव्य जो स्रोत प्रच्छन्न था, वह छायावाद-युग मे विशेष रूप से प्रत्यक्ष हुआ।" [२] 'नवीन' ने भी गीतो की रचना की। उदयशकर भट्ट, रामशंकर शुक्ल 'हृदय', नरेन्द्र शर्मा, आरसीप्रसाद सिंह, शिवमगल सिंह सुमन, भगवतीचरण वर्मा आदि ने भी अपनी कविताओ का रचनाविधान गीत ही चुना। आधुनिक छायावादी काव्य धारा के आज के सुरेन्द्र वर्मा, अखौरा व्रजनन्दन प्रसाद, गिरिधर गोपाल, इन्दिरा नूपुर, श्यामनंदन प्रसाद 'किशोर' जैसे तरुण-कवियो की कविताओ मे भी रचना-विधान प्रधानतया गीत ही है।

तो आइये, छायावादी कविताओ के प्रमुख रचना-विधान गीत पर अब हम विचार करें। गीत प्रबध-कविता के विपरीत मुक्तक रचना है। कहने का अभिप्राय यह कि गीतो मे शृखला बद्धता आवश्यक नही। गीतो मे प्रबध काव्यो की भाँति पृष्ठभूमि, वस्तु-वर्णन, और चरित्र-चित्रण नही होते। यहाँ कलाकार का अभीष्ट मात्र भावाभिव्यजन ही होता है। इसीलिए एक गीत दूसरे से बिलकुल स्वतत्र हो सकता है। इसे मुक्तक की संज्ञा दी जाती है। किन्तु ऐसी भी रचना हो सकती है जो गीतो मे हो किन्तु उसमे परस्पर एक सूक्ष्म क्रमबद्धता एव घटना-शृखला भी रहे। ऐसी रचना को गीति-प्रबध कहते हैं। छायावाद के रचना-विधान पर जब हम विचार करते है तो दोनो बातें हमारे सामने आती ह। छायावाद ने मुक्तक गीत और गीति प्रबध दोनो को अपने रचना-विधान रूप मे अपनाया। हिन्दी कविता को यह भी छायावाद की एक बहुत बडी देन है। छायावाद के विरोधी आलोचको ने भी इसे स्वीकार करने की विवशता का अनुभव किया है। उदाहरण के लिए प्रोफेसर नवलकिशोर गौड़ के ही शब्दो मे "स्वरूप-विधान की दृष्टि से इस गीतिकाव्य प्रधान युग (छायावाद) ने दो ऐसी वस्तुयें दी हैं, जो आधुनिक हिन्दी काव्य साहित्य के लिए सर्वथा अभिनदनीय हैं—और वे हैं, गीति-प्रबंध और मुक्तवृत्त-प्रबध। ये दोनों हिन्दी काव्य साहित्य मे सर्वथा नूतन प्रयोग हैं। गीति-प्रबध के क्षेत्र मे छायावादी चिन्ताधारा से अनु-

१. संचारिणी—श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृष्ठ २२३

२. वही; पृष्ठ २३३

प्राणित और उसकी भावभूमि पर उपस्थित की गई 'कामायनी' सर्वश्रेष्ठ रचना है। स्वरूप विधान के इस नये रूप में कुछ इतना अधिक आकर्षण है कि छायावाद की भाव-भूमि पर चिरत्र सतर्कता के साथ पाँव रखनेवाले मैथिलीशरण गुप्त भी 'साकेत' और 'यशोधरा' की रचना में इस स्वरूप को अपनाने का लोभ संवरण नहीं कर सके हैं।"[1]

छायावाद के गीतों मे विविधता है और विशेषता भी। प्रकृति, नारी और प्रेम ही आरंभ मे छायावाद के प्रिय विषय रहे, इसलिए स्वभावत: छायावाद मे प्रकृति, नारी और प्रेम के गीतों की बहुलता रही। प्रकृति के अनेक रूपो के चित्रण छायावादी गीतो मे हम पाते हैं। प्रेम की विविध दशाओं का वर्णन-चित्रांकन भी छायावादी गीतों की प्रधानता रही। छायावाद के गीतों मे नारी, उसके रूप-सौन्दर्य का वर्णन, उसकी विविध भावनाओं का अभिव्यंजन आदि भी काफी प्रमुख रहा। इसके अतिरिक्त जीवन के अनेक मार्मिक पक्षों की ओर भी छायावाद का गीत-प्रवाह प्रवाहित हुआ। समाज के चित्र भी गीतो मे वाणी पाने लगे। विधवा, भिक्षुक, पासो के बच्चो तक के गीत लिखे गये। उत्साह और प्रेरणा देनेवाले जीवन गीतो की भी रचना हुई। 'बढ़ो अभय विश्वास चरणधर' और 'पैरों के नीचे जलधर हों' जैसे प्रयाण-गीत भी प्रकट हुए। यों शृंगार रस के गीतों की प्रचुरता रही, लेकिन वीर, करुण, शांत आदि रसों के गीतो का भी बिल्कुल अभाव नहीं हुआ है। छायावादी गीतो को मुख्यत: इन श्रेणियो मे हम बाँट सकते हैं—(१) प्रकृति-संबंधी गीत, (२) प्रेम-संबंधी गीत, (३) नारी-सम्बन्धी गीत, (४) उत्साह और प्रेरणा के गीत (५) भिक्षुक, विधवा आदि दीन-दलित वर्गों के प्रति लिखे गये प्रगतिवादी गीत (६) अज्ञात चेतन सत्ता के प्रति प्रणय-निवेदन के रूप में प्रणीत आध्यात्मिक गीत (७) जग-जीवन के अनुभवों पर लिखे गये दार्शनिक गीत (८) इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक-काल्पनिक कहानियों की सूक्ष्म भाव-धारा पर आधारित स्वच्छन्द गीत, इत्यादि। इन छायावादी गीतों की भाषा के सम्बन्ध में कुछ निवेदन कर देना यहाँ अप्रासंगिक न होगा। इन छाया-वादी गीतोकी भाषा भावानुगामिनी है। गीतों की भावानुकूल भाषा में संगीतात्मकता, लय, प्रवाह, माधुर्य, और लालित्य के भी दर्शन होते हैं। अभिव्यंजना-प्रणाली में कवियों ने लक्षणा शक्ति से बहुत काम लिया है। अलंकारों के क्षेत्र मे नए-नए सूक्ष्म उपमान ढूँढे गए हैं। अँग्रेजी के अनेक अलंकारों को भी अपनाया गया है। छन्द की दृष्टि से मुक्त छन्द इस युग के गीतों में बहुत बड़ी विशेषता रही। छायावादी गीतों के आकर्षण का सबसे प्रमुख कारण उसकी नितांत-नूतन यही अभिव्यंजना प्रणाली है; ऐसा माना जा सकता है। छायावादी गीतों में भावना की सच्चाई, शिष्टता, स्वाभाविकता और भावों की उदात्तता भी अनुपम है। गीत-कविता की सारी की सारी विशेषतायें प्राय: सभी छायावादी गीतों में विद्यमान हैं। भावों की एकतानता, भावना की तीव्रता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता, सरलता, एवं सरसता आदि गीत-कविता के सभी तत्त्व प्राय: सभी छायावाद गीतों में मिलते हैं।

---

१ साहित्यिक निबंधावली—पृष्ठ १२५ सं० प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा, डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी,

'आज रहने दो सब गृह काज', 'तुम कनक किरन के अंतराल में लुक छिपकर चलते हो क्यों' चुभते ही तेरा अरुण बान', 'तुम्हारी आँखों का आकाश', 'कोमल कुसुमों की मधुर रात', तुम दु:ख बन इस पथ से आना' इत्यादि अनेक सुन्दर गीतों के उपहार छायावाद ने हिन्दी कविता-कुमारी को दिए।

किन्तु छायावादी कविताओं का रचना विधान एकमात्र गीत ही नहीं रहा। छायावाद ने रचना विधान रूप में प्रबंध काव्य का भी अपनाया। छायावाद का रचना विधान प्रबंधकाव्य बहुत पहले से ही रहा था। 'प्रसाद' जी की 'प्रेम पथिक' और 'पंत' जी की 'ग्रंथि' शीर्षक रचनाएँ हमारे उपर्युक्त विचार को प्रमाणित करती है। प्रसाद' जी का 'प्रेम पथिक' और कामायनी,' 'पंत' जी का' उच्छ्वास' और 'ग्रन्थि', रामकुमार वर्मा के 'निशीथ' और निराला' का 'तुलसीदास' छायावाद के अमर प्रबंधकाव्य है। 'कामायनी केवल छायावाद की ही अमर कृति नहीं, अपितु समस्त हिन्दी कविता के श्रेष्ठतम प्रबंधकाव्यों में अन्यतम है। इन पुस्तकों के अलावा 'रूपराशि', 'नूरजहाँ' आदि छायावाद के अन्य प्रबंध काव्य भी अब हमारे सामने हैं।

संक्षिप्त छायावाद के रचना विधान के सम्बन्ध में ये ही बातें सामान्य रूप से कही जा सकती हैं। छायावादी कविता धारा का भावी विकास, प्रबंधकाव्य और गीत से किधर बढ़कर अब कौन-सा अन्य रचना विधान अपनायेगा, यह कुछ नहीं कहा जा सकता।

छायावाद की अभिव्यंजना-प्रणाली

कला में अभिव्यंजना की महत्ता निर्विवाद है। भावनाओं या आवेग और विचारों की आँधी प्रत्येक मनुष्य के हृदय-मस्तिष्क को आन्दोलित करती रहती हैं; किन्तु जब तक उनकी अभिव्यंजना नहीं होती, उनका कोई अस्तित्व नहीं हो पाता है। अभिव्यंजना से मेरा,अर्थ दैनिक-जीवन के कार्य-व्यापारों में प्रयुक्त साधारण, खड़ी और चलती अभिव्यंजना-प्रणाली से नहीं है। कला की अभिव्यंजना एक विशेष कोटि की होती है। कला, जैसा कि विभिन्न आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का कथन है, एक प्रकार की मनःकल्पना है जिसके क्षेत्र में वास्तविक जीवन के परित्यक्त आनन्द स्रोतों को उपलब्धि करने में मनुष्य सक्षम हो पाता है। कठोर वास्तविकता की नाना प्रकार की माँगें हैं जिनके पूर्त्यर्थ उसे बहुत सी आनन्ददायिनी विधाओं को त्यागना पड़ता है। कला के मनः काल्पनिक क्षेत्र में मनुष्य वास्तविक जीवन के व्यक्त आनन्दों का, जिसकी प्राप्ति की लालसा उसके मन में बराबर बनी रहती है, उपभोग करने की चेष्टा करता है जिसके प्रयास में उसे सफलता भी मिलती है। उन्हीं आह्लादकारी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करने की प्रचेष्टा में मनुष्य कला के क्षेत्र में विहार करने लगता है।

जैसा कि टालसटाय ने कहा है, कला प्रेषणीकरण (communication) है। अपने हृदय में उठनेवाली नाना प्रकार की अनुभूतियों एवं विचारोर्मियों को दूसरे तक प्रेषित कर सकने की क्षमता ही कलाकार की कसौटी है। यदि एक कलाकार स्वानुभूतियों एवं स्वसंवेदनाओं को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है कि वे ही अनुभूतियाँ एवं संवेदनाएँ पाठक हृदय को भी परिचालित कर दें तो यही उसकी सफलता की चरम चोटी है। उदाहरण के लिए हम रामायण को ले सकते हैं। तुलसीदास के हृदय में उदात्त कल्पना थी, उनके हृदय की अनुभूतियाँ एवं संवेदनाएँ, भावनाएँ एवं विचार-धाराएँ बहुत ही उच्च कोटि की थीं। रामायण में उनकी महत्ता सर्वमान्य है। किन्तु जिस सुललित, प्रवाहपूर्ण एवं काव्यात्मक सरस भाषा में तुलसीदास के हृदय की अभिव्यक्ति हुई है—उसका भी महत्त्व कम नहीं है। किन्तु यहीं पर अँग्रेजों के प्रसिद्ध कवि पोप की रचनाओं की याद भी आती है। प्रसिद्ध अंग्रेज आलोचक मैथ्यू ऑर्नल्ड ने इनकी रचनाओं की आलोचना करते हुए लिखा है कि पोप की रचनाओं की विषय-सीमा अत्यन्त ही सीमित है—समाज एवं व्यक्तियों की कुरीतियों एवं दोषपूर्ण कार्य व्यापारों के उद्घाटन एवं चित्रण में ही उसने अपनी सारी शक्ति का उपयोग किया है। किन्तु मैथ्यू ऑर्नल्ड की स्थापना है कि उच्च कोटि का काव्य सदैव ही गंभीर, दार्शनिक एवं मनुष्य-

जीवन की मौलिक चिरन्तन समस्याओ की अभिव्यक्ति से संयुक्त होता है। उसका कथन था कि उदात्त विषय का कमनीय भाषा 'Lofty theme in a lofty language) मे प्रकटीकरण ही श्रेष्ठ काव्य की प्रथम पहचान है। इस विचार विन्दु मे, ऑर्नल्ड की दृष्टि मे, पोप की रचनाएँ श्रेष्ठ काव्य की कोटि मे परिगणनीय नही हो पाती। किन्तु आधुनिक गण्य-मान्य आलोचको ने विषय की उदात्तता को श्रेष्ठ काव्य का लक्षण मानते हुए भी यह स्वीकार किया है कि किसी नगण्य अथवा महत्त्वहीन वस्तु का चित्रण भी काव्य मे हो सकता है और वह प्रथम कोटि की कविता बन सकती है। इन आलोचको के अनुसार मैथ्यू ऑर्नल्ड की सबसे बडी गलती यह थी कि उसने सभी कवियो को एक ही तराजू पर तौलने की प्रचेष्टा की थी, जैसा कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक पडित रामचन्द्र शुक्ल ने भी की है। विभिन्न कोटि के कवियो के लिए विभिन्न तुलाओ का प्रयोग वांछनीय है। इसके अलावा उदात्त विषय भी भद्दी अभिव्यजना की छाया से कलुषित बन जाता है और महत्त्वहीन विषय भी कमनीय अभिव्यजना के परिधान मे सहज ही रमणीय एव आकर्षक बनकर श्रेष्ठ काव्य की सृष्टि करता है। इस प्रकार काव्य मे अभिव्यजना कितनी महत्त्व की वस्तु है, इस पर किसी प्रकार का मतभेद नही।

श्री रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद को कोरी अभिव्यजना का चमत्कार सिद्ध करने की चेष्टा की है। किन्तु मेरी स्थापना यह है कि छायावाद की विषय परिधि का सीमित नही कहा जा सकता। छायावाद मे अभिव्यजना-चमत्कार का चमक दृष्टव्य तो अवश्य है, किन्तु विषय की सूक्ष्मता भी कम आकर्षक नही। द्विवेदी युग की वस्तुनिष्ठ एव बाह्यस्वरूप-सम्बन्धित कविता को प्रतिक्रिया छायावाद मे हुई। वस्तु-क्षेत्र की इस परिवर्तनकारी प्रक्रिया का प्रभाव तद्युगीन अभिव्यजना प्रणाली पर आत्माज्य रूप से प्रतिफलित हुआ तथा इस पक्ष मे भी अनेकानेक नूतन प्रवृत्तियो की उद्भावना हुई जिनकी सक्षिप्त चर्चा मेरा यहाँ अभीष्ट होगा। इसी क्रम मे यत्र-तत्र अग्रेजी-साहित्य के रोमांटिक पुनर्जागरण काल की कविताओ की काव्य-भाषा से भी तौलनिक अध्ययन प्रस्तुत करना वांछनीय होगा, क्योकि, बहुत से आलोचको का आरोप है कि छायावादियो ने रोमान्टिक कवियो का, इस क्षेत्र मे भी, अत्यधिक अनुकरण ही किया है।

छायावादी कवियो की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति का पूर्ण विकास विषय क्षेत्र मे नही हो सका। काव्य के पक्ष द्वय मे से एक को अपनी आन्तरिक अनुभूतियो एव सवेदनाओ की व्यजना मे असमर्थ जानकर इन कवियो ने इसके दूसरे पक्ष, शैली पक्ष, के सहारे उन्हें पूर्ण प्रकाशन देने की परिचेष्टा की। काव्य-गत रूढियो, शैलीगत परम्पराओ के प्रति छाया-युगीन कवियो मे, अग्रेजी के रोमान्टिक कवियो की भाँति ही, अन्धानुकरण करने की भावना नही थी। वे एक अपना मार्ग बनाना चाहते थे। वे ऐसी काव्य शैली का निर्माण करने को इच्छुक थे जिसके माध्यम से उनकी आन्तरिक सूक्ष्म अनुभूतियों की प्रेषणीयता संभव हो सके। इसी मन्तव्य से परिचालित होकर इन लोगों ने एक ऐसी काव्य-

शैली का प्रारम्भ किया जिसमें कोमलता थी, संगीत-लय-ताल की प्रधानता थी, सूक्ष्मता, साम्य योजना, नूतन प्रतीकों के प्रयोग, लाक्षणिकता आदि का प्राधान्य था। डा० केसरी-नारायण शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि "छायावाद के प्रवर्तन का एक कारण काव्य-भाषा में भी मिल सकता है। द्विवेदी युग में खड़ी बोली काव्य-भाषा के पद पर आसीन हुई, किन्तु न तो उसमें ब्रजभाषा का लोच था, न अभिव्यंजन शक्ति और न संगीतात्मकता अपितु कुछ कर्कशता थी। यह भी कहा जाता है कि महावीरप्रसाद द्विवेदी गद्य और पद्य की भाषा में समानता रखना चाहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि काव्य की भाषा गद्यवत् तथा नीरस हो गई क्योंकि बहुत से कवियों पर द्विवेदी युग का प्रभाव था। इस प्रकार द्विवेदी-युग की भाषा के प्रति भी असंतोष हुआ। पाठक भाषा में संगीतात्मकता और नाद-सौन्दर्य चाहते थे। पाठकों की रुचि पहचाननेवाले कवि भी 'कोमल कान्त' पदावली के लिए लालायित हुए और साधना और आराधना में तत्पर हुए। छायावादी कविता में संगीतात्मकता यथेष्ट मात्रा में थी।"[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि छायायुग के कवियों ने द्विवेदी-युग की काव्य भाषा की कर्कशता एवं रूक्षता के विरुद्ध विद्रोह किया। अंग्रेजी के रोमान्टिक कवियों ने भी अपने पूर्ववर्त्ती युग के कवियों द्वारा व्यवहृत प्राणहीन भाषा के विरुद्ध आन्दोलन का प्रारम्भ किया था। इतनी दूर तक दोनों युग की साहित्यिक प्रतिक्रियाएँ समान हैं किन्तु किस प्रकार की काव्य-भाषा का प्रयोग होना चाहिए जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न के उत्तर में दोनों युग के कवियों के बीच का मतैक्य-राहित्य स्पष्ट हो जाता है। छायावादियों ने काव्य-भाषा को लाक्षणिक बनाने की चेष्टा की; उनकी यह कोशिश बराबर बनी रही कि शब्दों की आन्तरशक्ति का समुचित उपयोग हो। वाह्यस्तर पर पर्यायवाची दीखनेवाले शब्दों के बीच ध्वन्यात्मक विभिन्नता के फलस्वरूप समाहित निभिन्न अर्थों की भिक्षा कवियों को दृष्टिगत हुई, जैसा कि 'पल्लव' की भूमिका के अध्ययन से सहज ही स्पष्ट है। फलस्वरूप काव्य की भाषा की सांकेतिक व्यंजना में तो पर्याप्त विकास दृष्टिगत हुआ, किन्तु वह साधारण जनता की बुद्धि परिधि से बाहर की ही वस्तु रही। और यदि 'प्रसाद' जी को छायावाद का प्रवर्तक कवि मान लिया जाए और काव्य भाषा सम्बन्धी उनके दृष्टिकोण पर विचार किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि छायावादी कवि बोलचाल की प्राकृतिक भाषा को काव्य की भाषा बनाना चाहते भी नहीं थे। जनता में उनकी कविताओं का अत्यधिक प्रचार हो—ऐसी लालसा उनकी नहीं थी, यह नहीं कहा जा सकता। किन्तु इस मन्तव्य के पूर्त्यर्थ वे कविता की भाषा को आम-बोलचाल की भाषा बनाना नहीं चाहते थे। दूसरी ओर यदि अंग्रेजी के रोमान्टिक पुनर्जागरण-कालीन कवियों पर विचार किया जाए तो काव्य-भाषा के सम्बन्ध में उनकी सर्वथा प्रतिकूल धारणा थी। उनकी तो स्थापना थी कि बोलचाल की आम प्राकृतिक भाषा ही काव्य के नैसर्गिक सौन्दर्य की रक्षा कर सकती है। यह बात वर्डस्वर्थ के Preface to

---

१—आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत;—डॉ० केसरीनारायण शुक्ल, पृष्ठ १६६

lyrical Ballads से स्पष्ट हो जाती है। श्री टेन ने समुचित ही कहा है, "They proposed to adapt to poetry the ordinary language of conversation, much as is spoken in the middle and lower classes and to replace shidied phrases and a lofty vocabulary by natural tones and plebein words." [१] अतः अंग्रेजी के रोमान्टिक पुनर्जागरण युगीन कवियों तथा छाया युग के कवियों की काव्य भाषा सम्बन्धी स्थापनाओं की मूलगत विभिन्नता स्पष्ट है। रोमान्टिक कवियों ने बोलचाल की आम प्राकृतिक भाषा को ही अंगीकार करने की उद्घोषणा की, छायावादी कवियों ने बोलचाल की आम भाषा का त्याग कर एक नूतन काव्य शैली का निर्माण किया जो साधारण जनता की भाषा नहीं थी। किन्तु प्रश्न उठता है—यह भिन्नता क्यों ? कार्य तो प्रत्यक्ष रूप से घटित है, लेकिन कारणों की खोज भी अनिवार्य है।

सर्वप्रथम मैं अंग्रेजी रोमान्टिक कवियों के सम्बन्ध में कहना चाहूँगा। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों की काव्य भाषा तथा अभिव्यंजना शैली के विरुद्ध विद्रोहात्मक स्वर उठाया था। ऑगस्टन युग के प्रतिनिधि कवि एलेक्जेन्डर पोप की काव्य भाषा को ही उदाहरणार्थ हम देखें। कवि-जीवन के प्रारम्भिक काल में ही पोप के किसी अभिन्न सहयोगी ने उसे भाषा की शुद्धता पर जोर देने की सलाह दी थी, जिसका गहरा प्रभाव उसके मस्तिक पर पड़ा था। फलस्वरूप भाषा की शुद्धि के लिए ही पोप सदैव कटिबद्ध रहता था और उसकी यह तत्परता छंद के क्षेत्र में तो उचित सीमा का भी परिलंघन कर गई। हिरोइक कॉप्लेट की छोटी परिधि में भी नवीन संकुचन का प्रादुर्भाव हुआ। फलतः छंद योजना के इन कठोर बंधनों से आवृत्त होकर पोप की काव्य-भाषा बहुत दूर तक जीवन की शक्ति को खो चुकी थी। इसका एक दूसरा कारण भी था जिसकी ओर संकेत करना भी अत्यावश्यक है। पोप की यह मान्यता थी कि कविता में उन्हीं आम विषयों की चर्चा हो जिनके सम्बंध में लोग सदैव सोचा करते हैं। काव्य की उत्कृष्टता अभिव्यंजना शैली की उत्कृष्टता का ही दूसरा नाम है। पोप ने अपने "Essay on criticism" में स्वयं ही लिखा है, "What often was thought, but never so well expressed." और इसी उत्कृष्ट अभिव्यंजना पर पोप की निष्ठा थी और उसने अपने काव्य में अंग्रेजी के शायद अधिकांश सुन्दर शब्दों, फ्रेजों और इडियमों का प्रयोग किया है। इसमें यदि एक ओर उसकी काव्य-भाषा की बाह्य सुन्दरता में अभिवृद्धि हुई है तो दूसरी ओर उसकी आन्तरिक शक्ति का हनन भी हुआ है। पोप की काव्य-भाषा से बनावटीपन की बू आती है; अंग्रेजी की नैसर्गिक पवित्र [illegible] आन्तरिक शक्ति का परिदर्शन वहाँ नहीं हो पाता। पोप अपने युग का [illegible] कवि था और उस युग के समस्त कवियों में इसी की काव्य-भाषा के अनुकरण [illegible]

१. H. A. Taine : History of English Literature, [illegible]

दृष्टिगत होती है। इसी बनावटी भाषा की प्रतिक्रिया हुई थी रोमान्टिक कवियों की काव्य भाषा मे। इसी कारण इसमें अँग्रेजी की नैसर्गिक सुन्दरता की रक्षा करने की परिचेष्टा तो हुई; लेकिन मेरा ऐसा कहना कदाचित् सभी विद्वानों को मान्य होगा, वह जनता की आम भाषा नहीं रह पायी। कोलरिज, वर्डस्वर्थ आदि की काव्य-भाषा मे सक्षम है; परन्तु रोबर्ट सदे की शैली के सम्बन्ध मे ऐसी बात नहीं कही जा सकती। शेली, कीट्स आदि की भाषा मे कुछ अस्पष्टताएँ भी है, जिन्हें हम काव्य-दोष नहीं मान सकते सूक्ष्मतम भावनाओं के प्रकाशन के लिए वे वांछनीय हैं, अपरिमार्जनीय है।[1]

छायावादी कवियों ने द्विवेदी-युग की रुक्ष एवं कर्कश भाषा के विरुद्ध स्वर उठाया था। समस्त बंधनो को तोड़ कर उनकी उद्दाम कवि-प्रतिभा भरे भादो की उफनाई हुई नदी की भाँति समस्त कूल किनारों को ध्वस्त करती हुई प्रवाहित हुई थी। परिणामतः द्विवेदी-युगीन समस्त काव्य-शास्त्रीय बंधन और कहीं कहीं व्याकरण-सम्मत भाषा के उचित उल्लघन भी दृष्टिगत होते है। छायावादी कवियों ने, हमारी समझ से, द्विवेदी युगीन भाषा शैली की कर्कशता एवं रुक्षता के विरुद्ध या शास्त्रीय बंधनों के विरुद्ध ही केवल विद्रोहात्मक प्रवृत्ति का परिचय नहीं दिया था, मेरी दृष्टि से 'हरिऔध' की संस्कृत-निष्ठ बनावटी एवं प्राण-हीन काव्य भाषा के प्रतिकूल भी उनका विरोध हुआ था। गुप्त जी की ही भाषा में बनावटीपन कम नहीं। 'यशोधरा' की "मीड़-मसक है कसक हमारी और गमक है हूक" जैसी अन्यान्य पंक्तियों से शब्दों को सजा कर अनुप्रास की छटा दिखाने के लिये किया गया मानसिक जिमनास्टिक शोभनीय नहीं। इससे भाषा की आन्तरिक शक्ति का हनन ही होता है, परिवर्द्धन नहीं। छायायुग के कवियों ने भाषा संबंधी इस प्रवृत्ति के खिलाफ भी आवाज उठायी थी। इसी कारण उनकी काव्य-भाषा में मुझे हिन्दी की आन्तरिक कोमलता एवं सौष्ठव का दर्शन मिलता है। बहुत से ऐसे आलोचक हैं, जिनमें डॉ० देवराज अग्रगणनीय है, जिनका आरोप है कि छायायुग की ही काव्य शैली बनावटी है। किन्तु उनके इस मत की समीक्षा करने पर इसका खोखलापन सहज ही बोध-गम्य प्रतीत होता है। छायायुग के कवि हृदय की अनुभूतियों, संवेदनाओं एवं भावनाओं को अभीप्सित अभिव्यक्ति देने मे सक्षम हुए थे। कुछ ऐसी सूक्ष्म संवेदनाएं भी है जिनको स्पष्टरूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता यदि उन्हे पर्याप्त साम्य योजनाओं द्वारा अथवा प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जाए। इसी कारण हम छायावाद मे हिन्दी के अलंकारों को छोड़कर कतिपय अन्य अलंकारों का भी प्रयोग पाते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि छायावादी कवि अनावश्यक अनुचित शब्दों को सजा कर भाषा को बनावटी सुन्दरता प्रदान करने की चेष्टा मे थे। आवश्यकतानुसार शब्द-योजना और सुन्दर-कोमल शब्द योजना के सहारे काव्य-भाषा को संगीतात्मक बनाने के प्रयास में छायायुगीन कवियों को अपूर्व सफलता मिली है। ऐसी मेरी स्पष्ट मान्यता है। इसके उपरान्त छायायुग के कवि सौन्दर्य प्राण सौन्दर्योपासक

---

1. Seven Types of Ambiguities: Empson.

कवि थे। स्वभावत: अपने काव्य के अन्तरंग के सौन्दर्य के साथ साथ उसकी बहिरंग सुन्दरता की ओर भी उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। इसी कारण उन लोगों ने अनेकानेक अलंकरणों के सहारे काव्य भाषा को सुन्दर, सगीतात्मक एवं समर्थ बनाने की चेष्टा की। स्पष्ट है, इनसे उनकी काव्य-भाषा साधारण जनता की बोल-चाल की भाषा नहीं बन सकी। किन्तु क्या यह एक भाषा-दोष है? इस प्रश्न का, मेरी दृष्टि में, नकारात्मक उत्तर ही सत्य के अधिक समीप है। यदि अंग्रेजी के रोमान्टिक पुनर्जागरणकालीन कवियों ने अपनी उद्घोषणा के पश्चात् भी काव्य-भाषा को लोक भाषा के समीप लाने में सफलता नहीं प्राप्त की तो यदि छायायुगीन कवि ऐसा नहीं कर सके तो इसमें उनका क्या दोष? वास्तव में काव्य की भाषा लोक-भाषा से पृथक् ही रहकर सुन्दर एवं समर्थ बन सकती है। लेकिन ऐसी धारणा कि लोक-भाषा से अलग रह कर वह निश्चय रूप से बनावटी बन जाएगी, भ्रामक है।

छायावाद की काव्य-भाषा के संबंध में विचार करते समय सर्वप्रथम उसकी चित्रात्मकता की ओर ध्यान आकृष्ट होता है। छायावाद के विरोधी आलोचक श्री नवलकिशोर गौड ने भी स्वीकार किया है कि "भाषा की दृष्टि से छायावादी कवि अलंकार युग को पार कर, 'एक ऐसे युग में प्रवेश करता है जहाँ अभिव्यंजना की एक ऐसी नवीन पद्धति का वह निर्माण करता है, जिसे हम चित्रभाषा-पद्धति कह सकते हैं। ये चित्र नितान्त कतिपय तो होते हैं, किन्तु साथ ही, वे संवेद्य भी होते हैं। प्रचलित अलंकारों से ये चित्र इस अर्थ में भिन्न होते हैं कि उनमें परिज्ञात वस्तुओं के साम्य या वैषम्य के आधार पर भावाभिव्यक्ति की जाती है, किन्तु चित्र-भाषा अत्यन्त अनय सादृश्य या साधर्म्य के आधार पर भी आन्तरिक प्रभाव साम्य को लेकर, अप्रस्तुत एवं अपरिज्ञात वस्तुओं को भी प्रस्तुत कर देती है। ऐसे अप्रस्तुत उपादान अधिकांशत: प्रतीकों के रूप में आया करते हैं। छायावाद का काव्य भाषा में प्रतीकों का ऐसा प्रचुर प्रयोग हुआ है कि उसे हम 'प्रतीक' प्रधान-भाषा (Language of Symbols) कह सकते हैं। प्रतीक प्रधान भाषा की शब्द-योजना स्वभावत: अर्थ विस्तार और नवीन भाव-चित्रों से समन्वित होती है। छायावादी शब्द-योजना के अर्थ विस्तार और भाव-चित्रों की विविधता के मूल कारणों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट दीख पड़ता है कि जब नवीन प्रेरणा से उद्दीप्त काव्य-प्रतिभा बाह्य उपाधि से हट कर अन्तर्जगत् की अभिव्यक्ति की ओर अग्रसर हुई, तो परम्परागत खड़ी बोली काव्य-भाषा की शब्द योजना उसे नितान्त जड़ और कुंठित-सी जान पड़ी। इसीलिए उसने अपनी सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति के लिए तो नवीन शब्द-योजना प्रस्तुत की ही, परम्परागत शब्दावली के बाह्य समानार्थक शब्दों को भी नवीन भाव-चित्रों से समन्वित कर दिया। फलस्वरूप उसे 'हिलोर' में उठान, 'लहर' में सलिल के वक्षस्थल का कोमल कम्पन, 'तरंग' में लहरों के समूह का एक दूसरे को धकेलने, उठकर गिरने, 'बढ़ो बढ़ो, कहने का संकेत, 'वीचि' में जैसे किरणों में चमकती हुवा के पालने में होले-होले झूलती हुई हँसमुख लहरियों का आभास और 'ऊर्मि' में मधुर मुखरित हिलोरों की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी।" "इस प्रकार शब्दों शब्दों की वृत्तियों और शक्तियों

की सीमाओं को विस्तृत करके छायावादी शब्द शिल्पियों ने भिन्न-भिन्न भावाभिव्यक्ति के उपयुक्त जो शब्दावली तैयार की, निस्सदेह हिन्दी साहित्य के गौरव की वस्तु है।" [1]

ऊपर के उद्धारण मे विद्वान आलोचक ने बहुत संक्षेप में ही छायावादी काव्य-भाषा की बहुत सी प्रमुख विशेषताओं की ओर संकेत किया है। चित्रात्मकता इसकी सर्वप्रमुख विशेषता है। इसी क्रम में, छायावादी कवि, मानवीकरण अलंकार का भी प्रयोग करता है। मानवीकरण अलंकार के उदाहरण हमें प्राचीन भारतीय काव्य-ग्रंथों में उपलब्ध तो अवश्य होते हैं; किन्तु काव्य शास्त्रियों ने इसे एक विशिष्ट अलंकार की पृथक् सत्ता तब नहीं प्रदान की थी। छायावादी कवियों पर पाश्चात्य प्रभाव, कुछ पर सीधे और कुछ पर बंगला से छनकर, पड़ा था। अँग्रेजी के इस मानवीकरण अलंकार (Impersonification) का प्रयोग आरंभ से ही होता आया है। एक स्थल पर शेक्सपियर ने कवि कर्म की व्याख्या प्रस्तुत की है, जिसके विश्लेषण से यह स्पष्ट पता लगता है कि अमूर्त्त भावों को वायवीय शून्यों को एक सफल कवि मानवीकरण अलंकार की मदद से ग्राह्य रूप में प्रस्तुत करता है। शेक्सपियर की पंक्तियाँ हैं:—

"The poets eye in a fine frenzy rolling
Doth glance from heaven to earth, from earth to heaven,
And as imagination bodies forth
The forms of things unknown, the poet's pen
Turns them to shapes and gives to airy nothing
A local habitation and a name."

कवि-कर्म-संबंधी इस धारणा का प्रभाव अंग्रेजी के प्रायः सभी सफल कवियों पर पड़ा है और स्वभावतः उनसे प्रभावित, चाहे स्पष्ट रूप में हो अथवा किसी अन्य प्रेरणा-स्रोत के द्वारा, कवियों की रचनाओं में इसका बाहुल्य देखने को मिलता है। पन्त के कोमल गीतों में इस अलंकार का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। निम्नलिखित उदाहरणों मे यह स्पष्ट हो जाएगा कि छायावाद के बृहत् चतुष्टय की रचनाओं में इस अलंकार का खुलकर प्रयोग हुआ है।

शान्त, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल !
अपलक अनन्त, नीरव भूतल !!
सैकत-शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रान्त, क्लान्त निश्चल !
तापस बाला गंगा निर्मल शशि-मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुन्तल !

१. छायावाद की शब्द-परीक्षा: प्रो० नवलकिशोर गौड़; देखिए साहित्यिक 'निबंधावली', पृष्ठ १२२,

गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुन्दर,
चञ्चल अञ्चल-सा नीलाम्बर !
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी है वर्त्तुल, मृदुल लहर

(पंत)

× × ×

विजन-वन-वल्लरी पर
सोई थी सुहाग भरी
स्नेह - स्वप्न - मग्न
अमल-कोमल तनु-तरुणी
जूही की कली,
दृग बन्द किए
शिथिल पत्राक में,
वासन्ती निशा थी।

(निराला)

प्रसाद की 'लहर', 'झरना', 'आँसू' आदि रचनाओं में, महादेवी के "धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ बसन्त रजनी', 'चुभते ही तेरे अरुणबाण', 'रूपसि, तेरा घन केश-पाश' आदि गीतों में मानवीकरण अलंकार के सुन्दर प्रयोग प्राप्य हैं।

छायावादी कवियों ने नाद व्यंजना का भी पर्याप्त उपयोग किया है। शब्दों की ध्वनि से ही मन्तव्य विषय का रूप-रंग खड़ा कर देना ही नाद-व्यंजना की विशेषता होती है। निराला की अधिकांश कविताओं में इस गुण का परिदर्शन होता है। 'बादल-राग' की निम्नलिखित पंक्तियों में :—

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर
राग अमर अम्बर में भर निज रोर !
अरे वर्ष के हर्ष,
बरस तू, बरस-बरस रस-धार
पार ले चल तू मुझको बहा
दिखा मुझको भी निज गर्जन भैरव संसार !

शब्दों की ध्वनि से ही बादलों की गड़गड़ाहट, बीच-बीच में विद्युत् का कौंधना, जल-बूंदों की अमन्द अविरल टपटपाहट, हवा की सनसनाहट आदि के चित्र स्पष्ट हो उठते हैं। निराला एक सावधान कलाकार (conscious artist) तथा शब्द-शिल्पी हैं। अतएव भाषा के इस चमत्कार का बहुत सुन्दर प्रयोग उनकी कविताओं में हुआ है। प्रसाद, पंत, महादेवी आदि की कविताओं में भी इसके उदाहरण परिलक्षित होते हैं।

मौलिक नवीन उपमानों की खोज एवं उनके अत्यधिक प्रयोग भी छायावादी अभिव्यंजना-शैली की एक प्रमुख विशेषता है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् आलोचक प्रो० शिवनन्दन प्रसाद ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि "छायावादियों के उपमान काव्य-समयों अर्थात् काव्य-परम्पराओं पर आधारित नहीं। वे मौलिक कल्पनात्मक उद्भावना के परिणाम हैं। कवि आँखों के लिए खंजन, मधुकर, मीन, मृग आदि का ही उपमान के रूप में नहीं लाता, वह आकाश का उपभोग भी आँखों के उपमान के रूप में करता है। आँखों की निगूढ़ गहराई आकाश की गहराई में तुलनीय है, नीलिमा तो है ही। इसके अतिरिक्त प्राचीन कवि स्थूल स्थूल उपमेय के लिए स्थूल उपमान का योजना करते थे। लेकिन छायावाद के कवि अमूर्त उपमानों का स्वच्छन्द प्रयोग करते है।"[1] उदाहरणार्थ निम्नलिखित उद्धरणों को सम्मुख रक्खा जा सकता है :—

> तरुवर की छायानुवाद सी, उपमा सी, भावुकता-सी;
> अविदित भावाकुल भाषा सी, कटी-छँटी नव कविता सी !

अथवा :—

> चिर अतीत की विस्मृत स्मृति-सी नीरवता की सी झंकार,
> आँख-मिचौनी सी असीम की, निर्जनता-की-सी उद्‌गार।"

छायावादियों की अभिव्यंजना में विशेषण-विपर्यय नामक अँग्रेजी अलंकार का प्रयोग भी यत्र-तत्र दीखता है। अँग्रेजी के कवियों में यह 'विशेषण-विपर्यय' (Transferred-epithet) मिल्टन की कविताओं में बहुत अधिक मिलता है। रोमान्टिक पुनर्जागरण-कालीन कवियों में कीट्स ने अपनी प्रसिद्ध असमाप्त काव्य-रचना 'हाइपेरियन' (Hyperion) में मिल्टन के अनुकरण करने की प्रचेष्टा की है और इसी क्रम में उसने विशेषण-विपर्यय का अत्यधिक प्रयोग भी किया है। हिन्दी के छायावादी कवियों में भी भाषा के इस अलंकार-विधान को प्रयुक्त करने की मनोवृत्ति भी जागृति हुई और पन्त तथा निराला की कविताओं में इसके उदाहरण विपुल राशि में प्राप्त होते है। यहाँ 'निराला' की एक पंक्ति उद्धरणीय है —"चल चरणों का व्याकुल पनघट, कहाँ आज वह वृन्दा धाम ?" यहा ब्रजबालिकाओं की व्याकुलता के स्थान पर व्याकुल पनघट का प्रयोग हुआ है जिसे हम विशेषण विपर्यय का उदाहरण मान सकते है।

छायावादी कवियों ने भाषा की लक्षणा शक्ति का ही अधिक प्रयोग किया है। हृदय की सूक्ष्म भावनाओं की सांकेतिक अभिव्यक्ति के निमित्त भाषा की इसी शक्ति का प्रयोग आवश्यक भी है। जहाँ पदार्थों के बाह्यरूप एवं आकार का वर्णन होता है वहाँ प्रायः भाषा की अभिधा शक्ति का ही प्राधान्य होता है। किन्तु जैसा कि छायावाद के समर्थ

१. कवि सुमित्रानन्दन पन्त और उनका प्रतिनिधि काव्य; प्रो० शिवनन्दन प्रसाद, पृष्ठ ३४—५

प्रवर्त्तक कवि प्रसाद ने लिखा है, "आभ्यांतर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा बाह्य स्थूल आकार में भी कुछ विचित्रता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म आभ्यान्तर भावों के व्यवहार मे प्रचलित पद-योजना असफल रही। उनके लिए नवीन शैली, नया वाक्य-विन्यास आवश्यक था।"[1] निराला ने भी वीणावादिनी की वंदना करते हुए "नवगति, नव लय, ताल-छंद नव" की प्राप्ति की ही याचना की है। छायावादियों ने जिस नूतन अभिव्यंजना-शैली को जन्म दिया उसकी समर्थता भी निर्विवाद है। यह अभिव्यंजना-प्रणाली उनकी प्रवृत्ति के अनुकूल ही थी, जिसे हम प्रो० क्षेम के शब्दों मे इस प्रकार कह सकते हैं," सच्ची बात तो यह है कि जीवन की आन्तरिकता और अनुभूतियों की गूढ़ मार्मिकता को उसके अभिराम अवगुण्ठन मे ही झलकाने की प्रवृत्ति समस्त छायावादी कवियों की सामान्य विशेषता है।"[2] स्पष्ट है, ऐसी प्रवृत्ति के पूर्त्यर्थ भाषा की लाक्षणिक शक्ति का प्रयोग अत्याज्य रूप से वांछनीय है। भाषा की इस शक्ति का प्रयोग समस्त छायावादी कवियों में परिलक्षित है। यहाँ विशिष्ट उद्धरणों के द्वारा इस धारणा का स्पष्टीकरण संभाव्य नहीं, क्योंकि छायावादी कविताओं में यह गुण छाया-काया की भाँति समन्वित है।

छायावादी कवियों की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति बंधनों से आवृत्त होकर प्रवाहित होने वाली नहीं थी। छंदों की संकुचित सीमा के भीतर अपने को रखने में उन्हें घुटन महसूस हुआ; इस प्रकार वे अपने हृदयोद्गारों को पूर्ण रूप से व्यक्त करने में अपने को असमर्थ पाने लगे। नतीजा यह हुआ कि इन लोगों ने परम्परागत छन्दों को भी बहिष्कृत करने की बात सोची। यदि पन्त ने 'खुल गए छन्द के बँध, प्रास के रजत-पाश" कह कर अपनी इस आकांक्षा का प्रदर्शन किया तो निराला ने तो यह स्पष्ट ही लिखा :—

'आज नहीं है मुझे और कुछ चाह
अर्धविकच इस हृदय-कमल मे आ तू
प्रिये, छोड़कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह।'

वास्तव में 'छन्दों की छोटी राह' को तोड़ कर निराला जी ने जिन कविताओं की रचना की वे हिन्दी की गौरवपूर्ण निधियाँ बन गई हैं। 'जूही की कली' 'बादल-राग' 'राम की शक्ति-पूजा' आदि कविताएँ हिन्दी-काव्य को उन्नत करने वाली रचनाएँ है। इस क्षेत्र में प्रसाद जी ने भी 'निराला' का साथ दिया है और उनकी ऐसी कविताएँ 'लहर' में संगृहीत हैं। पन्त ने तालवृत का प्रयोग कर अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया। कहने का तात्पर्य यही है कि छन्दों के क्षेत्र मे भी छायावादी कवियों ने हिन्दी को अभूतपूर्व देन दी।

छायावादी कवियों के काव्य को प्रधानतः गीति-काव्य ही कहा जा सकता है। किन्तु छायावादी गीत भक्तिकालीन-गीतों से इस अर्थ में पृथक् हैं। जहाँ भक्तिकालीन

---

१ — यथार्थवाद और छायावाद : श्री जयशंकर प्रसाद,
२—छायावाद की काव्य-साधना : प्रो० 'क्षेम' पृष्ठ ३'८.

गीतों में भक्तिभाव का ही प्राधान्य था वहाँ छायावादी गीतों मे हृदय को उद्वेलित करने वाली समस्त भावनाओं एवं विचार-स्फुरणों की अभिव्यंजना है। इस दृष्टि से छायावादी गीतों का परिवेश अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है।

अन्ततः एक बात और कुछ छायावादी कवियों ने बहुत सी उक्तियों को अँग्रेजी से अविकल अपहृत कर लिया है। प्रो० क्षेम ने लिखा है, "अँगरजी के कितने ही मुहावरे पद, उक्तियाँ और अभिव्यक्तियाँ अविकल रूप से अनूदित कर दी गई हैं—स्वर्ण-विहान, स्वर्ण युग, जीवन या नवीन अध्याय प्रारम्भ होना, जीवन के कंचन पृष्ठ पलटना, रजत रुन, स्वप्निल मुस्कान, स्वर्ण वेश, जीवन-प्रभात, जीवन-सन्ध्या, मेरे प्यार, आ सौंदर्य, प्रकाश डालना, जीवन मे चौदह वसंत देखना आदि इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं। इसी प्रकार 'पीड़ा रूपी आग' न कह कर 'पीड़ा की आग' कहने का 'व्यस्त-रूपक' शैली भी अँग्रेजी से ही प्रेरित है।"[1]

छायावादी अभिव्यंजना-शैली पर प्रो० नवल किशोर गौड़ ने अतिशय बौद्धिकता का आरोप किया है। यदि किसी भाषा में अतिशय बौद्धिकता का प्रभाव होता है तो वह निश्चय रूप से बनावटी बन जाती है। केशव की भाषा के साथ यही बात है, अँग्रेजी के पोप, ड्राइडेन आदि की काव्य शैली के विषय में यही बात चरितार्थ होती है। किन्तु जैसा कि प्रारम्भ मे ही सकेतित है, छायावादी काव्य मे बनावटीपन नहीं। इसी आधार पर स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि गौड़ जी का आरोप भ्रामक है। अस्पष्टता के आरोप का उत्तर निबंध के प्रारम्भ में ही दे दिया गया है।

छायावादी कवियों की रचनाओं का हिन्दी काव्येतिहास मे अपना महत्त्व है। युग-युग से आती हुई रूढ़ियों एवं परम्पराओं को ध्वस्त कर अपनी राह निर्मित करने वाले कवियों की प्रतिभा पर सदेह करना पागलपन है। भाव तथा भाषा के क्षेत्रों ने इन कवियों ने हिन्दी को अमूल्य देन दी। विलायती चश्मे लगा कर हम इस काव्य का उचित मूल्यांकन नहीं कर सकते। हो सकता है, इन कवियों ने अँग्रेजी से कुछ उक्तियों को अनुवादित कर लिया किन्तु भाषा की व्यंजना-शक्ति के परिवर्द्धन के निमित्त यह श्रेयस्कर कार्य ही है।

१—प्रो० 'क्षेम' : छायावाद की काव्य-साधना, पृष्ठ ३२३

छायावादी कविता में वेदना और प्रेम-साधना

(१) इस करुणा कलित हृदय में अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में वेदना असीम गरजती !
—प्रसाद

(२) यह पीड़ा का साम्राज्य रहेगा निश्चल-सा !
—महादेवी वर्मा

(३) वेदना ! कैसा करुण उद्गार है
वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह
तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में
तारकों में, व्योम में है वेदना !
वेदना ही के सुरीले हाथ से
है बना यह विश्व उसका परम पद
वेदना ही का मनोहर रूप है
वेदना ही का स्वतंत्र विनोद है !
—पंत

(४) दुख ही जीवन की कथा रही क्या कहूँ आज जो नहीं कही
—निराला

.... [इत्यादि ....

तो स्पष्टत: छायावादी कवियों में वेदना की तीव्रता आप पाते है। पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी—सभी की रचनाओं में व्यथा का एक सम्मोहन, पीड़ा के प्रति प्रेम और आकर्षण प्रतीत होता है। यहाँ पर ठीक हो, यह कहा जा सकता है कि एक अतृप्त अवसाद का वातावरण समस्त छायावादी कविताओं में अन्तर्व्याप्त है। पंत जी ने तो सामान्य रूप में कविता का जन्म ही वेदना से, पीड़ा से, आह से माना है—

वियोगी होगा पहिला कवि आह से उपजा होगा गान
उमड़कर आँखों से चुपचाप वही होगी कविता अनजान !

फिर भी, छायावादी कविता की प्रेरक शक्ति वेदना चाहे नहीं रही हो, किन्तु वेदना का अतिरेक उसमे है अवश्य। निराला की 'सरोज-स्मृति' आदि अनेक कवितायें महादेवी के गीत, प्रसाद का 'आँसू' और पंत जी की 'ग्रंथि' उपर्युक्त सत्य के प्रमाण हैं। जीवन के प्रति एक वेदनापूर्ण दृष्टि, एक अवसाद भरी नज़र इन सभी कवियों में प्रतीत होती है। यह बात दूसरी है कि पीड़ा का कारण कहीं लौकिक है, कहीं आध्यात्मिक भी।

अब प्रश्न है कि छायावादी कविताओं में आखिर वेदना का आतिशय्य क्यों है ? कुछ लोगों ने वेदना का अतिरेक देखकर छायावादी कवियों पर यह आक्षेप करने का कष्ट किया है कि उनकी वेदना झूठी है। उनमे वेदना केवल कला-विलास है, वहाँ अनुभूति की सच्चाई नहीं है अनुभूति की सच्चाई (Sincerity के अभाव मे कविता चाहे और जो भी हो किन्तु वह मार्मिक और प्रभावोत्पादक नहीं हो सकेगी। लेकिन छायावादी कविताओ के साथ क्या उपर्युक्त विचार चरितार्थ है ? हम पाते है कि छायावादी कविताओं मे वेदना का अतिरेक कला विलास नही है। छायावादी कवियों की वेदना मे, उनकी पीड़ा मे कुछ ऐसी तीव्रता, कुछ ऐसी प्रभाविष्णुता है कि उसे झूठी कहना कदापि उचित नही होगा। कुछ उदाहरण देखे जाने योग्य हैं। इन पंक्तियों मे वेदना की मार्मिकता इतनी है कि अनुभूति की सच्चाई का अभाव हम कदापि नही मान सकेंगे—

मेरी आहों मे जागो, सुस्मित मे सोने वाले।
अधरो से हँसते-हँसते, आंखो से रोने वाले॥

—प्रसाद

× × ×

उस सोने के सपने को, देखे कितने युग बीते
आँखो के कोष हुए हैं, मोती बरसाकर रीते
अपने इस सूनेपन की, मैं हूँ रानी मतवाली
प्राणों का दीप जलाकर करती रहती दीवाली !

—महादेवी

इसी प्रकार अनेक पंक्तियाँ और भी दी जा सकती है। क्या उद्धृत पद्यावतरणों मे वेदना की अनुभूति झूठी मान लेना असंगत न होगा ? मेरा तो विचार है कि प्रायः प्रत्येक युग मे लोग दूसरों की वेदना को झूठी ही समझते आए हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही पीड़ा को सच्ची समझता है—यह मानव-मन की स्वाभाविक दुर्बलता है; वह दूसरों की वेदना मे Affectation आडम्बर, मिथ्यापन देखता है। इसीलिए विरहिणी मीरा कह उठी थी—

घायल की गति घायल जाने, कि जिन पीर लगाई होइ ?

और सूरदास ने भी लिखा था —

जाहि लगै सोई पै जानै प्रेम बाण अनियारो।

—यह अनुभूति देश और काल के बन्धनों के परे है। यह शाश्वत सत्य है। अंग्रेज-कवि Drubson की भी उक्ति है:--

Love! in what a prison is thy dart
Dripped when it makes a bleeding heart
None know but they who feel the smart.

तो ठीक ही, छायावादी कवियों की पीड़ानुभूति को जिन लोगों ने कला-विलास कहा है, वे ऊपर-ऊपर जाकर रह गये हैं। लेकिन कविता की आलोचना की सच्चाई के लिए तो उसके रस सागर में निमग्न होना आवश्यक है—

तंत्रीनाद कवित्त रस सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग॥
—बिहारीलाल

महादेवी जी को स्वयं बहुत आश्चर्य हुआ है कि क्यों लोगों ने उनकी वेदना का कला-विलास मात्र समझ लिया है ?—

जाने, क्यों कहता है कोई ?
मैं तम की उलझन मे खोई !!

पंत जी ने मीरा की ही विचार-धारा को अपनाते हुए यह कहा—

कौन जान सका किसी के हृदय को ?
सच नहीं 'होता 'सदा अनुमान है !'
कौन भेद 'सका अगम आकाश' को ?
कौन समझ सका उदधि का गान है !!

—और दूसरा व्यक्ति दूसरे के हृदय की गहराई को नहीं समझ सकता : यही कारण है कि प्रसाद जी ने अपना आत्मपरिचय पूछे जाने पर केवल इतना ही कहा—

सुन कर क्या तुम भला करोगे—मेरी भोली आत्मकथा ?
अभी समय भी नहीं—थकी सोई है मेरी मौन व्यथा !

—सभी छायावाद की अमर विभूतियों का एक ही स्वर है।

तो आइये अब हम उन कारणों का विवेचन करें जिनसे छायावाद की सारी-की सारी कविता वेदना की मादकता से मतवाली हो उठी थी। प्रो० नवलकिशोर गौड़ का मत है कि "युद्धोत्तरकालीन भारतीय जीवन में सर्वतोमुखी चेतना की जो जाग्रति हुई वह समसामयिक परिस्थिति में अपनी स्वीकृति न पाकर बहिर्जगत से तटस्थ एवं अन्तर्जगत् की ओर आकृष्ट होती गई। ऐसी विषम स्थिति मे अन्तर्मुखी कलाकार तीक्ष्ण एकाकीपन से आक्रांत हो उठता है। जीवन की सभी शक्तियों को अपने प्रतिकूल पाकर, उसकी विद्रोह-वृत्ति एकाकीपन के अवसाद से भर उठती है। स्वभावत: वह स्वयं अपने आप से और अपनी सभी अनुभूतियों के न-कुछ-पन की भावना से निरंतर प्रताड़ित होकर वेदनावादी बन जाया करता है।"[1] इसी बात को ज्यादा स्पष्ट ढंग से कुछ आलोचकों ने यों समझाया है कि छायावाद में वेदना के आतिशय्य का कारण तद्युगीन परिस्थिति थी।

१—साहित्यिक निबंधावली—संपादक धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृष्ठ १२६

विद्वान् आलोचक प्रोफेसर शिवनंदन प्रसाद के शब्दो मे छायावाद तद्युगीन साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों की उपज थी। साहित्यिक दृष्टि से छायावाद द्विवेदी-युग की रूक्षता रूढ़ परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह था। दूसरी ओर परिस्थिति यह थी कि अँग्रेजो के सम्पर्क से भारत मे स्वतंत्रता, समता और राष्ट्रीय जागरण के भाव प्रस्फुटित होने लगे थे। स्वतन्त्रता के लिए भारत विकल हो रहा था। किन्तु शक्तिशाली अँग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध लोहा लेना भी कठिन था। इस अंतर्विरोध का स्वाभाविक परिणाम हुआ—मानसिक क्षोभ, कुण्ठा। इसीलिए छायावाद मे पीड़ा, व्यथा या वेदना है। "राजनैतिक दासता के कारण परिस्थिति मे जो अंतर्विरोध वर्तमान था उसे दूर करने मे असमर्थ इन कवियो की भावना नैराश्य-युक्त या करुणायुक्त हो तो आश्चर्य ही क्या ? आजादी के लिए प्राण तड़प रहे थे लेकिन परतन्त्रता से मुक्ति पाने का कोई रास्ता नही दीखता था। कोई ऐसा रास्ता नही दीखता था जिसे पा कवि के प्राण स्वस्थ हो जाते। फलतः तत्कालीन परिस्थिति मे व्याप्त निराशा कवि के प्राणों मे घर कर गई। उसके प्राणों के स्वरों मे युग का करुण हाहाकार सुनाई पड़ने लगा। कभी स्पष्ट और कभी धुंधले रूप मे इस निराशा और करुणा की अभिव्यक्ति प्रायः सभी छायावादी कवियों ने की है।"[1] उनकी दृष्टि में छायावाद की कविताओं में वेदना के आतिशय्य का यही प्रमुख कारण है। डॉ० सुधीन्द्र का भी मत है कि छायावाद मे जो अत्यधिक वेदना मिलती है उस पर प्रभाव है भौतिक परिस्थिति का। स्वयं डॉ० सुधीन्द्र के ही शब्दों में 'राष्ट्रीय भाव भूमिका के कारण भी यह वेदना सहज ही आ गई है। देश पराधीन है, समाज दुखी है, जीवन त्रस्त है, तब कवि के मन मे मुक्त उल्लास नही, एक गूढ़ वेदना ही स्थान पा सकती थी।"[2] डॉ० नगेन्द्र ने भी यही बात कही है—"भारत में आर्थिक पराभव के होते हुए भी जीवन में एक स्पन्दन था। भारत की उद्‌बुद्ध चेतना युद्ध के बाद अनेक आशायें लगाये बैठी थी। उसमें स्वप्नों की चंचलता थी। वास्तव में भारत की आत्मचेतना का यह किशोर काल था जब अनेक इच्छाएँ-अभिलाषाएँ उड़ने के लिए पंख फड़फड़ा रही थी। भविष्य की रूप-रेखा नही बन पाई थी, परन्तु उसके प्रति मन में इच्छा जग गई थी। पश्चिम के स्वच्छन्द विचारों के सम्पर्क से राजनीतिक और सामाजिक बन्धनों के प्रति असंतोष की भावना मधुर उभार के साथ उठ रही थी, भले ही उनको तोड़ने का निश्चित विधान अभी मन मे नही आ रहा था। राजनीति मे ब्रिटिश साम्राज्य की अचल सत्ता और समाज में सुधारवाद की दृढ़ नैतिकता असंतोष और विद्रोह की इन भावनाओं को वहिर्मुखी अभिव्यक्ति का अवसर नही देती थी। निदान वे अंतर्मुखी होकर धीरे-धीरे अवचेतन मे जाकर बैठ रही थीं, और वहाँ से क्षति-पूर्ति के लिए छाया-चित्रों की सृष्टि कर रही थी। आशा के इन स्वप्नों और निराशा के इन छाया-चित्रों की काव्यगत समष्टि ही छायावाद कहलाई।"[3]

१—कवि सुमित्रानंदन पंत और उनका प्रतिनिधि काव्य, पृष्ठ २६, प्रो० शिवनंदन प्रसाद

२—हिन्दी कविता में युगांतर—पृष्ठ ३८४, डॉ० सुधीन्द्र,

३—आधुनिक हि० कविता की प्र० प्रवृत्तियाँ—पृष्ठ १, डॉ० नगेन्द्र

इस प्रकार हिन्दी के विद्वानों को हम आश्चर्यमय रूप से एकमत होते हुए पाते है। किन्तु खेद है, सभी उपर्युक्त आलोचकों ने छायावाद मे वेदना के अतिशय्य के कारण को समझने मे भूल की है। मेरा दुर्भाग्य है कि मैं उनसे अपना मतभेद प्रकट कर रहा हूँ। वास्तव मे छायावाद की कविताओं में वेदना के आतिशय्य का कारण, मेरी समझ मे, छायावादी कवियों का जग-जीवन के प्रति अपना वैयक्तिक दृष्टिकोण है। ऊपर के आलोचकों ने यह चर्चा की है कि तद्युगीन परिस्थितियों के कारण छायावाद में नैराश्य अथवा वेदना है। किन्तु वास्तव में छायावादी कविताओं में जो वेदना है वह वेदना भी मीठी है, मधुर है; उसमें निराशा अथवा हीनता की भावना नहीं है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा —

मेरी लघुता पर आती जिस दिव्य लोक को व्रीड़ा
उसके प्राणों से पूछो क्या पाल सकेंगे पीड़ा ?
....

पंत जी भी विश्व-वेदना से निराश नही है। वे तो कहते है—

तप रे मधुर-मधुर मन !
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल,
जग-जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष उज्ज्वल औ' पावन,
तप रे विधुर-विधुर मन !!

स्पष्टत. छायावाद की वेदना निराशा से, तद्युगीन राजनैतिक अथवा भौतिक परिस्थितियों से प्रेरित नहीं है। यदि निराशाओं के कारण वेदना होती तो फिर कभी छायावाद यह नहीं कह सकता था कि—

वर देते हो तो कर दो ना
चिर आँखमिचौनी यह अपनी !

अथवा—

यह पीड़ा का साम्राज्य रहेगा निश्चल-सा !

अथवा—

वेदना ही के सुरीले हाथ से
है बना यह विश्व ,इसका परमपद
वेदना ही का मनोहर रूप है !

छायावाद में वेदना के अतिशय के तीन प्रमुख कारण हैं। जैसा कि मैं कह आया सबसे बड़ी बात है, छायावादी कवियों का जीवन के प्रति वैयक्तिक दृष्टिकोण। उनका वैयक्तिक दृष्टिकोण यह है कि वेदना में मनुष्य अपने अहं को भूल जाता है। वेदना में मनुष्य दूसरे से स्नेह करने लगता है। सुख तो वह अकेला भोगना चाहता है, किन्तु दुःख वह

सबको बाँटकर। दुःख विश्व एकता की जननी है। दुःख के समय मनुष्य एक दूसरे से मिल-कर रहना चाहता है। इसीलिए न, बिहारी ने कहा था—

> कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
> जगतु तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ॥

सुख में पागल व्यक्ति दूसरों की परवाह नहीं करता। इसीलिए दूसरे भी उससे ईर्ष्या करने लग जाते हैं किन्तु दुःखी व्यक्ति के प्रति दूसरों के हृदय ममता से भर जाते हैं। इसीलिए छायावादी कवियों का जग-जीवन के प्रति अपना वैयक्तिक दृष्टिकोण है वेदना का, दुःख का, पीड़ा का। उनकी अपनी फिलासफी है कि वेदना के माध्यम से वे दूसरों का प्रेम पा सकेंगे, दूसरों को आकृष्ट कर सकेंगे। तो हमने देखा कि उनकी वेदना भौतिक परिस्थितियों के कारण नहीं है किसी आर्थिक अभाव के कारण नहीं है। छायावादी कविताओं में वेदना के अतिशय का यही रहस्य है छायावादी कवियों का अपनी यह फिलासफी—उनका अपना यह जीवन दर्शन कि 'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एकसूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता।"[1] मेरा निवेदन है कि छायावाद में वेदना के अतिशय को इसी पीठिका में देखा जाए। छाया-वादी कवियों ने अपनी निजी अनुभूतियों को, अपने वैयक्तिक जीवन को अत्यधिक महत्त्व दिया था; और यह भी कारण है कि छायावाद में वेदना का इतना अतिशय रहा। पंत की वेदना भी उनके वैयक्तिक जीवन का सहज उद्‌गार है। किशोर कवि का प्रेम स्वप्न जब टूट गया और उसके हृदय में असफल प्रेम की 'ग्रंथि' बँध गई तो कोई आश्चर्य नहीं वह सारी प्रकृति में वेदना देखने लगा, सारी प्रकृति उसे पतझर मालूम पड़ने लगी। 'प्रसाद' जी की अनेक पंक्तियों से भी यह प्रकट होता है कि उनका वैयक्तिक प्रेम भी असफल रहा था। उनके जीवन में कोई आकर चला गया था अवश्य—

> मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया।
> आलिंगन आते-आते मुसक्या कर जो भाग गया?

उसी की स्मृति कवि के शेष जीवन-पथ की पाथेय रही। कवि प्रसाद ने तीन शादियाँ की थीं। तीनों पत्नियाँ कवि की जीवन-संगिनी नहीं बनी रह सकीं। 'आँसू' में असफल लौकिक प्रेम ही अलौकिक स्वरों में बोल उठा है। निराला का व्यक्तिगत जीवन तो सभी प्रकार की पीड़ाओं में आक्रांत रहा। उनके काव्य की वेदना को हम उसी पीठिका में समझ सकते हैं। महादेवी की वेदना सबसे निराली है। भौतिक जीवन में पति का जिसे प्रेम नहीं मिला, उसके गीतों में वही अभाव अभिव्यक्त है। पीड़ा का वरदान उसी प्रिय का ही तो उपहार है—

---

1 देखिए—'यामा' (महादेवी वर्मा) की भूमिका

इन ललचाई पलकों पर पहरा जब था व्रीड़ा का
उस चितवन ने दे डाला साम्राज्य मुझे पीड़ा का !

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि छायावाद में वेदना के आधिक्य का दूसरा कारण छायावादी कवियों का अपना व्यक्तिगत जीवन भी है। रचना पर रचयिता के जीवन-परिवेशों का प्रभाव पड़ता ही है। छायावादी कवियों के जीवन में कदाचित् वेदना अधिक थी। जीवन में यों भी सुख-दुःख में दुःख ही अधिक है। दुःख ही हमारे जीवन का प्रबल तत्त्व है। इसीलिए—

रुधिर के हैं जगती के प्रात, चितानल के ये सायंकाल !
शून्य निःश्वासों के आकाश, आँसुओं के ये सिन्धु विशाल !!
यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरु! अरे जग है जग का कंकाल!!

दुःख ही जीवन में सबसे प्रधान है। इसीलिए महादेवी भी कहती हैं कि "विरह का जलजात जीवन-विरह का जलजात ! वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास; अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात !!" तो जीवन में वेदना की जो इतनी अधिकता है, छायावाद में भी हम पाते हैं। इसीलिए छायावाद में भी वेदना का अतिरेक है।

छायावाद में वेदना के अतिशय का एक अन्य कारण भी है। और वह है, भौतिक दृष्टि से अतिशय सुख-विलास में छायावादी कवियों का जन्म। प्रसाद जी एक काफी धनी और प्रतिष्ठित घराने में उत्पन्न हुए थे। सुख-विलास में जिस कवि का बचपन बीता हो उसका वेदना से प्रेम हो जाना स्वाभाविक ही है। पंत जी का बचपन भी प्यार दुलार के पालने में पला। महादेवी ने तो स्वयं लिखा है कि "संसार साधारणतः अभाव के नाम से जिसे जानता है वह मेरे पास नहीं है, जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत प्यार और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला। उस पर पार्थिव दुख की छाया कभी नहीं पड़ी।"[१] इतने सुख-विलास और दुलार-प्यार की ही प्रतिक्रिया हुई है इन छायावादी कवियों में वेदना के रूप में। एक रस से प्रतिक्रिया स्वाभाविक ही है।

छायावादी कविताओं में वेदना का अतिरेक दार्शनिक चिन्तन के कारण भी है। महादेवी वर्मा अपने दुखवाद का कारण बतलाती हुई स्वयं यह स्वीकार करती हैं कि "बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुखात्मक समझनेवाली फिलॉसफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था। अवश्य ही उस दुखवाद को मेरे हृदय में नया जन्म लेना पड़ा।"[२] तो इस प्रकार छायावाद की वेदना पर भारतीय दर्शन ने भी वेदना की गहरी छाया डाली है।

---

१. यामा (महादेवी वर्मा)—भूमिका

२. वही

तो छायावादी कविताओं मे वेदना के अतिशय्य के ये ही कारण हुए। इसीलिए छायावाद की कविताओं मे विषाद की व्यंजना सर्वत्र व्याप्त है। लेकिन जैसा कि मैंने पहले ही इस बात की ओर आपका ध्यान आकर्षित किया था, छायावाद में वेदना के अतिशय्य का एक कारण छायावादी कवियों के अपने व्यक्तिगत जीवन का असफल प्रेम भी है। सच्चे प्रेम का परिणाम प्रायः पीड़ा ही है। दुनिया मे कसम खाकर कोई भी प्रेमी नही कह सकता, अथवा कोई भी प्रेमिका यह नही कह सकती कि उसे अपने प्रेम का समान प्रतिदान मिला। प्रेमी अपने प्रिय-पात्र पर एकाधिकार चाहता है। कोई भी प्रेमी यह भी नही सह सकता कि उसका प्रिय-पात्र किसी दूसरे का भी प्रिय पात्र बन जाए। किन्तु जीवन के इस अभिदेश मे सच्चे और आदर्श प्रेम की यह कोमल कली कभी खिल नही पाती। असमय म ही उसका अवसान हो जाता है, सुन्दरता चिता की ज्वाला बन जाती है, जिन्दगी ट्रैजेडी हो जाती है। छायावादी कवियो के जीवन की भी वही कहानी है। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी सभी के जीवन का यही कठोर सत्य है। इन संवेदनशील कोमल-हृदय कलाकारो को जीवन मे प्रेम की पीडा ही हाथ लगी। इसीलिए उनका काव्य भी उसी पीड़ा से ओत-प्रोत है। यौवन के तूफानी दिनो मे इन्होने भी प्रेम किया था। और प्रेम ? प्रेम क्या है ? प्रेम एक सुखद पीडा है। यह एक मधुमय वेदना है। Love is a pleasant woe! अंग्रेजी-कवि Danie की पंक्तियों मे—

> Love is a sickness full of woes
> All remedies refusing
> Love is a torment of the mind
> A tempest ever-lasting!!

और प्रेम की यही ever-lasting tempest आप इन छायावादी कवियो की सारी कविताओं मे अन्तर्व्याप्त पाते हैं। उनका प्रेम उनकी रचनाओ मे काफी सच्चाई और मार्मिकता के साथ बोल उठा है। जिससे जीवन मे प्रेम किया था उसके प्रेम की, उसकी स्मृति की सर्वत्र अभिव्यक्ति इन छायावादी कवियों की कविताओ मे विद्यमान है। कवि 'प्रसाद' अपनी उसी प्रेमिका और उसके प्रति अपने प्रेम की बातें कहते है—

> *मादक थी मोहकमयी थी मन बहलाने की क्रीडा*
> अब हृदय हिला देती है वह मधुर प्रेम की पीडा

उसी के प्रेम में यह हालत हुई है—

> अब छुटता नहीं छुड़ाये रंग गया हृदय है ऐसा
> आँसू से धुला निखरता यह रंग अनोखा कैसा!

प्रेम के ही कारण कवि पंत भी कहते हैं—

> हाय मेरा जीवन!
> प्रेम औ' आँसू के कण!!

असफल प्रेम से क्षुब्ध हृदय हाहाकार कर उठता है—

शैवलिनि ! जाओ, मिलो तुम सिंधु से
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन को
चन्द्रिके ! चूमो तरंगों के अधर
उड्डुगणों ! गाओ पवन-वीणा बजा !
पर, हृदय ! सब भाँति तू कंगाल है,
उठ किसी निर्जन विपिन में बैठकर
अश्रुओं की बाढ़ में अपनी बिकी
भग्न-भावी को डुबा दे आँख-सी !

महादेवी वर्मा की कविताओं में भी प्रेम के भाव शतशत गीतों में मुखरित हैं। प्रिय के बिना सब कुछ पतझार-सा प्रतीत होता है—

तेरी सुधि बिन क्षण-क्षण सूना !

लेकिन वह प्रिय तो इस पार जाने क्यों आता ही नहीं ! इसीलिए प्रेमिका को लगता है कि उसकी पीड़ा का कभी अंत नहीं होगा, उसकी विरह-वेदना कभी समाप्त न होगी—

यह पीड़ा का साम्राज्य रहेगा निश्चल-सा !

उसे प्रेमिका पत्र भी भेजे तो कैसे भेजे ?—

दृगजल की सित मसि है अक्षय,
मसि प्याले झरते तारक-द्वय;
पल-पल के उड़ते पृष्ठों पर—
लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती !

रामकुमार वर्मा की कविताओं में भी प्रेम की स्मृति प्राणों में पीड़ा भरती हुई आ बसी है—

दूर बसे हो केवल स्मृति ही आकर यहाँ बसी है
प्राणों के कण-कण में पीड़ा तुमने यहाँ कसी है !

उसी प्रिय की प्रतीक्षा यहाँ भी है—

भूलकर भी तुम न आये !
आँख के आँसू उमड़कर
आँख ही में हैं समाये !
सुरभि से शृंगार कर—
नव वायु प्रिय-पथ में समाई
वन्दना कर पल्लवों ने
नवल वन्दनवार छाये !!

—रामकुमार वर्मा

और कवि सुमित्रानंदन पंत की पंक्तियों में भी यही प्रतीक्षा है—

> है मुकुल मुँदे डालों पर कोकिल नीरव मधुवन में
> कितने प्राणों के गाने ठहरे हैं तुमको मन में !
> तुम आओगी, आशा में अपलक हैं दिशि के उडुगण
> आओगी अभिलाषा से चंचल, चिर नव जीवन-क्षण !

यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि छायावाद में प्रेम लौकिक है अथवा आध्यात्मिक। मेरा अभीष्ट इतना ही है कि छायावादी कविताओं में प्रायः सर्वत्र प्रेम और प्रेम की पीड़ा की व्यंजना हुई है। बहुत दिनों तक तो छायावाद की सारी की सारी कवितायें प्रेम और वेदनावाद की हाला में ही मतवाली बनी रहीं। इसीलिए विद्वान् आलोचक श्री रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन बिल्कुल ठीक ही है कि "छायावाद की प्रवृत्ति अधिकतर प्रेम गीतात्मक होने के कारण हमारा वर्तमान काव्य (छायावाद से मतलब है) प्रसंगों की अनेकरूपता के साथ नई-नई अर्थभूमियों पर कुछ दिनों तक बहुत कम चल पाया।"[१] इन छायावादी कवियों ने प्रेम की विविध अभिव्यक्ति की है। प्रेम की महिमा का भी इन लोगों ने खूब गान किया है और उसके आदर्श की व्याख्या भी प्रस्तुत की है। उदाहरण के लिए कवि प्रसाद के 'प्रेम पथिक' से ये पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

> प्रेम यज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा
> तब तुम प्रियतम स्वर्ग-विहारी होने का फल पाओगे;
> प्रेम पवित्र पदार्थ, न इसमें कहीं कपट की छाया हो
> इसका परिमित रूप नहीं जो व्यक्तिमात्र में बना रहे
> क्योंकि यही प्रभु का स्वरूप है जहाँ कि सबको समता है।
> इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त-भवन में टिक रहना
> किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं
> अथवा उस आनन्दभूमि में जिसकी सीमा कहीं नहीं
> यह जो केवल रूप-जन्य है मोह न उसका स्पर्धी है
> यही व्यक्तिगत होता है; पर प्रेम उदार, अनन्त अहो
> उसमें इसमें शैल और सरिता का-सा कुछ अन्तर है
> प्रेम, जगत का चालक है, इसके आकर्षण में खिच के
> मिट्टी का जल पिण्ड सभी दिनरात किया करते फेरा
> इसकी गर्मी मरु धरणी, गिरि, सिंधु, सभी निज अंतर में
> रखते हैं आनंद सहित, है इसका अमित प्रभाव महा।
> इसके बल से तरुवर पतझड़ कर वसंत को पाते हैं
> इसका है सिद्धान्त मिटा देना अस्तित्व सभी अपना
> प्रियतम-मय यह विश्व निरखना फिर उसको है विरह कहाँ

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६७६—रामचंद्र शुक्ल

अथवा महादेवी वर्मा की इन पंक्तियों में प्रेम की व्यंजना की शिष्टता देखिये—

सजनि, तेरे दृग बाल, चकित से विस्मित-से दृग बाल
आज खोए से आते लौट, कहाँ अपनी चंचलता हार
झुकी जाती पलकें सुकुमार, कौन-से नव रहस्य के भार
सजनि, ये पद सुकुमार, तरंगों-से द्रुत पद सुकुमार
सीखते क्यों चंचल गति भूल, भरे मेघों की धीमी चाल
तृषित कन—कन को क्यों अलि चूम, अरुण-आभा-सी देते ढाल

—रश्मि : महादेवी

छायावाद में प्रेम का जो इतना सयमित, शिष्ट और सूक्ष्म चित्रण हुआ इससे अध्यात्म का भ्रम भी स्वाभाविक था। छायावादी कविताओं में कहीं आध्यात्मिकता है ही नहीं, ऐसा मैं नहीं मानता; लेकिन बात अधिकतर यही हुई है कि लौकिक प्रेम का ही इतना उदात्त चित्रण किया गया है कि उसमें रहस्यवाद अथवा अध्यात्म का भ्रम होने लगता है। किन्तु वास्तवता यही है कि छायावाद में प्रेम का आदर्शीकरण हुआ है। और अंत में छायावाद की प्रेम साधना का आदर्श यही है कि प्रेम में स्वार्थ और कामना का हवन करना होगा। प्रेम में देना ही देना है, लेने की बात नहीं उठती।—

पागल रे! वह मिलता है कब
उस को तो देते ही हैं सब
आँसू के कन-कन से गिनकर
यह विश्व लिये है ऋण उधार
तू क्यों फिर उठता है पुकार?
मुझको न मिला रे कभी प्यार!

—प्रसाद

प्रेम में मिलन, विरह, उत्कण्ठा और तीव्रता, प्रिय की स्मृति, रूप-वर्णन आदि विविध मनोदशाओं का भी सुन्दर चित्रण छायावादी कविताओं में हुआ है। इन पंक्तियों में प्रिय के मिलन की स्मृति और उस समय की उसकी रूप छवि देखिये—

शशि-मुख पर घूँघट डाले, अंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूलि में, कौतूहल-से तुम आये!

—आँसू : प्रसाद

और अब उसी के वियोग की स्थिति देखिये—

हिम शीतल प्रणय अनल बन, अब लगा विरह से जलने!

—आँसू : प्रसाद

फिर भी, कवि को पुनर्मिलन की आशा है—

इस शिथिल आह से खिंचकर, तुम आओगे आओगे
इस बढ़ी व्यथा को मेरी, रो-रोकर अपनाओगे!

—आँसू : प्रसाद

इसी प्रकार पंत, महादेवी वर्मा आदि की कविताओं में भी प्रेम की विविध दशायें देखी जा सकती हैं। प्रेम, छायावादी कवियों के लिए साधना की वस्तु रहा। उनकी प्रेम-साधना इतनी सिद्धि से प्राप्त हुई कि वह कलात्मक ही नहीं, उदात्त होकर आध्यात्मिक भी बन गई। छायावादी कविताओं के विश्लेषण और मूल्यांकन करते समय छायावाद में वेदना और प्रेम-साधना की इन विशेषताओं की ओर ध्यान देना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।

एक बात और। छायावादी कविताओं में यही प्रेम-साधना व्यक्तिगत जीवन से ऊपर उठकर अन्तर्राष्ट्रीयता का भी स्पर्श करती है। छायावादी कवियों के व्यक्तिगत जीवन में जो असफल प्रेम की घटना घटी थी वही प्रेम उदात्त बनकर समस्त विश्व के प्रति प्रेम में परिणत हो जाता है। महाकवि निराला की ये पंक्तियाँ देखिये—

जग को ज्योतिर्मय कर दो

अथवा, पंत जी समस्त विश्व-वेदना में जलने की, गलने की बात कहते हैं—

विश्व-वेदना में तप प्रतिपल,
जग-जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल
तप रे, विधुर-विधुर मन!

जिस युग में, जिस कविता में, प्रेम इतना ऊँचा उठ गया हो, वास्तव में, उसका गौरव अक्षय है! प्रो० क्षेम ने ठीक ही लिखा है "प्रेम के विविध रूपों व्यक्तिगत प्रेम से लेकर विश्व-प्रेम तक प्रसृत उदात्त अनुभूतियों का जो निर्मल निष्कलुष अभिव्यंजन छायावाद-युग में संभव हुआ है, वह अपने ढंग का अनुपम है।"[1] छायावादी कविता में वेदना और प्रेम-साधना, वास्तव में, अत्यंत प्रभावपूर्ण और अनुभूति युक्त हुई है। हिन्दी कविता के किसी भी युग से इसका आदर्श और इसकी अभिव्यंजना अधिक उन्नत है।

इतनी उदात्तता, साधना की ऐसी सफल सिद्धि हिन्दी काव्येतिहास में अभूतपूर्व ही कही जाएगी।

१—छायावाद की काव्य-साधना, पृष्ठ १६० प्रो० क्षेम

अभिजात-मनोवृत्ति का काव्य—'छायावाद'

काव्य पर रचयिता के कुल और व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ना ही है—यह कथन चाहे अन्य किसी युग की कविता पर चरितार्थ न हो, किन्तु छायावाद के सम्बन्ध में तो निश्चय ही तथ्य है। छायावाद के प्रमुख प्रवर्तक और लब्ध प्रतिष्ठ प्राय: सभी कवि उच्च-मध्य-वर्गीय व्यक्ति थे। अत: स्वभावत: उनका काव्य उनके व्यक्तित्व से प्रेरित-प्रभावित रहा है। कविताओं के तारों से उनके हृदय की वीणा बज उठी है, प्राय: रचना-रचना में उनका अपना व्यक्तित्व मुखर हो उठा है। जैसा कि मैंने कहा, छायावाद के प्रमुख प्रवर्तक और लब्धप्रतिष्ठ प्राय: सभी कवियों का सम्बन्ध उच्च मध्यम वर्ग से रहा। प्रसाद जी का तो जन्म ही काशी के लब्धप्रतिष्ठ उदार, उच्च और काफी धनी घराने में हुआ था। पंत जी भी सुख-सुषमाओं की गोद में पले। निराला का आरंभिक जीवन भी राज-परिवारों के वैभव-विलास में बीता। महादेवी जी का बचपन भी प्यार-दुलार के पालने में पला है। उनके पास भौतिक अभाव नहीं रहा। तो निष्कर्षत: सुख-विलास और सुकोमल स्नेह में पले इन सभी कवियों की अभिजात-मनोवृत्ति की काव्यगत अभिव्यक्ति अत्यंत स्वाभाविक ही थी। इनकी अभिजात-मनोवृत्ति का प्रचुर प्रमाण हमें इनकी रचनाओं में मिलता है। पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी की छायावादी कविताओं में जो एक सामान्य विशेषता विशेष रूप से लक्षित है वह है अभिजात-मनोवृत्ति। इसका कारण संभव है, छायावादी कवियों की जन्मजात मनोवृत्ति के अतिरिक्त, अपेक्षाकृत संघर्षमुक्त और कोमल-कुसुमित जीवन भी हो : फिर भी, अभिजात मनोवृत्ति उनके काव्यों में प्राय: सदैव स्थित रही है, इसमें सन्देह नहीं। इस अभिजात मनोवृत्ति का अभिव्यंजन उनकी रचनाओं में स्थूल और सूक्ष्म रूप में विविध प्रकार से किया गया है।

स्थूल दृष्टि से, छायावाद का कवि प्राय: सदैव उन वस्तुओं की ओर आकृष्ट रहा है जिनका पारम्परिक सम्बन्ध अभिजात वर्ग से माना जाता है और जिनके कारण अभिजात वर्ग अपने को उच्च समझता आया है। जैसे उदाहरण के लिए—सोना-चाँदी, हीरा-मोती, मणि-मरकत, रेशम-मलमल, कला-संगीत, फल-फुलवारी, मदिरा-प्याला, नृत्य-अभिनय इत्यादि। छायावाद के काव्य में मणि-मुद्राओं की भरमार है। कवियों को रजत-स्वर्ण, हीरा, मोती, रेशम, मलमल बहुत ही पसन्द हैं। वे प्राय: फूल और फुलवारी का वर्णन करते हैं। कला-और संगीत से भी उन्हें काफी प्रेम है। नृत्य और अभिनय में भी उनकी अत्यधिक रुचि है। मदिरा-मादकता की भी उनके काव्य में काफी चर्चा आई है। निष्कर्षत:

अभिजात-मनोवृत्ति का खासा सुन्दर परिचय उनकी कविताओं में मिलता है। रजत-स्वर्ण तो कवि पंत की पुस्तकों के शीर्षक तक में विराजमान हैं—'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि,' 'रजत-शिखर' इत्यादि।

आगे कुछ उदाहरणों से मैं अपनी उपयुक्त विचार भावनाओं को स्पष्ट करूँगा। पहले सोने-चाँदी की ही चमक देखी जाये—

(१) स्वर्ण-स्वप्नों का चितेरा (२) पथ में जुगनू के स्वर्ण-फूल
(३) तरल सोने से धुली यह (४) धर कनक-थाल में मेघ
— महादेवी (नीरजा)

(५) फिर स्वर्ण-सृष्टि सी नोचे (६) अम्लान स्वर्ण शतदल हो।
—प्रसाद (आँसू)

(७) यह सुवर्ण-सा हृदय गलाकर (८) खिली स्वर्ण-मल्लिका की सुरभित वल्लरी-सी
—प्रसाद (लहर)

(९) हेमहास से शोभित है नव (१०) स्वर्ण मंजरी से भूषित (११) अलमित पलकों से स्वर्ण स्वप्न नित (१२) खुले पलक फैली सुवर्ण छवि (१३) उन स्वप्नों की स्वर्ण सरित का (१४) किन पुष्पों का स्वर्ण-पराग (१५) स्वप्नों का जो स्वर्ण-जाल है (१६) जिन सुवर्ण स्वप्नों की गाथा (१७) फैन स्वर्ण पंखों से हम भी (१८) स्वर्ण पंखों को सिहग कुमारि, (१९) कनक छाया में जब कि सकाल, (२०) कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन; वह स्वर्ण का प्रात (२१) अये, विश्व का स्वर्ण स्वप्न; संसृति का प्रथम प्रभात (२२) किसी को सोने के सुख-साज (२३) अब हुआ सांध्य स्वर्णाभ लीन (२४) लहरों पर स्वर्ण रेख सुन्दर (२५) किस स्वर्णाकांक्षा का प्रदीप।
—पंत (पल्लविनी)

यह स्वर्ण-प्रियता रंगों के चुनाव के समय भी प्रकट हुई है। सुनहला रंग छायावादी कवियों को बहुत ही पसन्द है—

(१) उषा सुनहले तीर बरसती जयलक्ष्मी-सी उदित हुई
—प्रसाद

(२) स्वर्ण-बेलि-सी खिली विहान
—पंत

(३) रूपहले सुनहले आम्र बौर
—पंत

(४) उड़ा सुनहली अंचल छोर
—पंत

(५) नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ
—महादेवी

(६) शरद के बिसरे सुनहले जलद-सो

— 'पंत' [इत्यादि

सोने के बाद चाँदी भी प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है—

(१) रजत-तार-सी शुचि रुचि मान (२) जो रज को रजत बनाता (३) चाँदी की चौड़ी रेती (४) रजत रेत बनकर झलमल (५) रुचिर रजत किरणें सुकुमार (६) खेलती थी एक रजत मरीचिका

—पंत

(७) तरल रजत की धार बहा दे, मृदु स्मित से अपनी ! (८) रजत श्याम तारों से जाली (९) रजत झीने मेघ सित (१०) रजत स्वप्नों में उचित

— महादेवी

सोने-चाँदी की एकत्र राशि भी द्रष्टव्य है –

(१) रजत-स्वर्ण में खिलती अविदित (२) हृदय-सर में करते अभिसार, रजत-रति स्वर्ण-विहार ! (३) स्वर्ण-पुष्प में रजत-हिलार (४) मुझे गूँथने दोगे अपनी स्वर्ण-रजत कलियों का हार (५) छू स्वर्ण-रजत किरणें प्रभात

—पंत

(६) ले ले तरल रजत और कंचन

— महादेवी

स्वर्ण-रजत के बाद अब मोती और हीरे का भाण्डार देखिये—

(१) मृदु फेनमय मुक्तावली से (२) मोतियों के सुमन कोष (३) जो आ जाते मोती उन बिन (४) उर कोषों के मोती अविदित (५) जुगनू के लघु हीरक के कण (६) मोती-से उजले जलकण-से (७) कंचन की और न हीरक की (८) मेरी आँखों में ढलकर छवि, उसकी मोती बन आई

—महादेवी (नीरजा)

(९) कोई मुक्ता की ढेरी

—प्रसाद (आँसू)

(१०) मोती-सा शुचि हिमजल है (११) हिल मोती-का-सा दाना (१२) उमड़ मोतियों से अवदात (१३) प्रथम केवल मोतियों को हंस जो (१४) सुघर मोती-से पदों के ओस के (१५) अश्रु ! हे अनमोल मोती दृष्टि के (१६) मोती की ज्योत्स्ना रही विचर (१७) भरती मोती के चुम्बन (१८) मोतियों जड़ी ओस की डाल

—पंत (पल्लविनी)

(१९) श्रमकण में ले ढुलते हीरक

—महादेवी (नीरजा)

(२०) हीरे सा हृदय हमारा (२१) क्यों भरा हुआ हीरों-से

—प्रसाद (आँसू)

छायावादी काव्यों में मणि-मरकत की भी कमी नहीं है—

(१) कब माँगा मरकत का प्याला (२) मणि-दीपक बुझ-बुझ जाते

—महादेवी

(३) मणि दीप लिये निज कर में (४) मणि दीप विश्वमंदिर की (५) मणिवाले फणियों का मुख (६) मणिमुक्ता की झलकों में (७) मणि-मेखला में रही

—प्रसाद

(८) मरकत वन में आज तुम्हारी नव प्रवाल की डाल

(९) मरकत-पुष्पों-सा खुला ग्राम

—पंत

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद के काव्यों में सोने-चाँदी, हीरा मोती और मणि-मुक्ताओं आदि की अकसर चर्चा हुई है। इस प्रवृत्ति के अन्दर अभिजात मनोवृत्ति ही क्या काम नहीं कर रही है ?

मखमल, मलमल और रेशम भी (जो अभिजात वर्ग के लोगों की वस्तुएँ हैं) छायावादी कवियों की कविताओं में पर्याप्त परिमाण में दीखते हैं—

(१) रेशमी घूँघट बादल का (२) नील रेशमी तम का कोमल (३) सुरंग रेशमी पंख तितलियाँ (४) शशि की रेशमी विभा से भर (५) मखमली टमाटर हुए लाल (६) मखमल की कोमल हरियाली (७) मैं मलमल की साड़ी तुझको बनवाऊँगी फेनोज्ज्वल ! (८) तब मग में मखमल बिछवाया (९) वह मखमल तो भक्तिभाव थे (१०) घने लहरे रेशम-से बाल !

—पंत

कोमलता, मधुरता तो छायावादी कविताओं की पंक्ति-पंक्ति में विद्यमान है। छायावादी कवियों में इतनी सौन्दर्य-चेतना, सौन्दर्य के प्रति इतनी आसक्ति भी अभिजात-मनोवृत्ति की ही सूचक है—

(१) अकेली सुन्दरता कल्याणि !
सकल ऐश्वर्यों की सन्धान !

—पंत

(२) यह पतझर मधुवन भी हो

—महादेवी

(३) उषा का था उर में आवास मुकुल का मुख में मृदुल विकास
चाँदनी का स्वभाव में भास विचारों में बच्चों के साँस !

—पंत

सुन्दरता की ऐसी खोज अभिजात वर्ग की ही विशेषता है—

कुटिल काँटे हैं कहीं कठोर जटिल तरु जाल घिरे चहुँ ओर
सुमन दल चुन चुनकर निशि भोर खोजना है अजान वह छोर !

—पंत

प्रायः अभिजात वर्ग के ही व्यक्ति संगीत-नृत्य और कला-प्रेमी भी हुआ करते हैं। छायावाद में नृत्य की नूपुर ध्वनि और संगीत की मीठी तान भी प्रायः सर्वत्र सुनाई पड़ेगी—

(१) मर्मर की सुमधुर नूपुर-ध्वनि

(२) पिक की मधुमय वंशी बोली नाच उठी सुन अलिनी भोली

(३) लय गीत मदिर, गति ताल अमर अप्सरि ! तेरा नर्तन सुन्दर !

—महादेवी

(४) नाचती हिलोरें सिहर-सिहर

—पंत

(५) नाचती है नियति नटी-सी (६) नर्तित पद-चिह्न बना जाती

—प्रसाद

(७) लेकर मृदु उर्म्मि बीन कुछ मधुर करुण नवीन
प्रिय की पदचाप मदिर गा मलार री !

—महादेवी

(९) युग से थी प्रिय की मूक बीन
थे तार शिथिल कम्पन-विहीन
मैंने द्रुत उनकी नींद छीन
सूनापन कर डाला क्षण में
नव झंकारों से करुण मधुर !

—महादेवी

'हिम-शैल बालिका' भी जाने 'किस अतीत युग की गाथा गाती' हुई 'कलरव संगीत सुनाती' है—

कलरव संगीत सुनाती
किस अतीत युग की गाथा गाती आती

—प्रसाद

और कहीं वीणा की मधुर ध्वनि किसी में जीवन डाल रही है—

उनकी वीणा की नव कम्पन डाल गई री मुझ में जीवन

—महादेवी

और कहीं तो वंशी की लय में मधुमास का ममार ही मुखर है—

मर्मर की वंशी में गूँजेगा—
मधु ऋतु का प्यार !

—महादेवी

इस भाँति संगीत-नृत्य एवं कला के प्रति अपार आसक्ति भी छायावादी काव्य की अभिजात-मनोवृत्ति की ही परिचायक है। छायावाद का फूलों में अत्यधिक शौक भी उसकी अभिजात-मनोवृत्ति का ही परिचय देता है। फूलों में गुलाब, (पाटल), रजनीगंध, जूही, मोतिया, बेला, कमल (सरोज), शेफाली आदि ही इसे बहुत पसन्द है। यहाँ तक कि छायावन के पशु पंछी भी वे ही है जिनका ऐतिहासिक सम्पर्क विशेषतः अभिजात वर्ग से रहा है। जैसे—चातक, चकोर, भौंरा, मृग, मीन, हंस, हाथी, शुक, सारस, पपीहा, कोयल, तितली इत्यादि। उपहार (Presents) देने की परिपाटी भी कम-से-कम हमारे यहाँ तो राज रजवाड़ों तक ही सीमित रही है। अभिजात-वर्ग में ही उपहारों की चर्चा हम सुनते आए हैं। छायावादी कवियों ने उपहार देने की जो बातें की हैं वे भी निस्संदेह छायावादी काव्य की अभिजात-मनोवृत्ति की ही द्योतक हैं—

(१) तू स्वप्न-सुमनों से सजा तन विरह का उपहार ले !

—महादेवी

(२) आ रही प्रतिध्वनि वही फिर नींद का उपहार ले !

—महादेवी

(३) स्वर्गङ्गा की धारा में उज्ज्वल उपहार चढ़ाये !

— प्रसाद

(४) अश्रुकणों का यह उपहार !

—पंत

(५) किसे अब दूँ उपहार गूँथ यह अश्रुकणों का हार !

—पंत

[इत्यादि

मदिरा-प्याला भी अमीरों की ही चीजें रही हैं। छायावादी काव्यों में वे भी पर्याप्त परिमाण में प्राप्य हैं—

(१) पीली मधु मदिरा किसने थी बन्द हमारी पलकें

—प्रसाद

(२) परिरम्भ कुम्भ की मदिरा

—प्रसाद

(३) विष प्याली जो पीली थी वह मदिरा बनी नयन में

—प्रसाद

(४) मेरी टूटी मृदु प्याली को

—प्रसाद

(५) वैभव की यह मधुशाला जग पागल होनेवाला
अब गिरा-उठा मतवाला प्याले में फिर भी हाला

—प्रसाद

(६) जीवन सुरा की वह पहली ही प्याली थी

—प्रसाद

(७) तेरा अधर-विचुम्बित प्याला
तेरी ही स्मित मिश्रित हाला
तेरा ही मानस मधुशाला !

—महादेवी

(८) मैंने कब देखी मधुशाला
कब माँगा मरकत का प्याला
कब छल का विद्रुम-सी हाला……

—महादेवी

(९) अपना मुख वाँट दिया हो, जिसने इस मधुशाला में।
इस हालाहल हाला हो, अपनी मधु सी हाला में।
मेरी साधों से निर्मित, उन अधरों का प्याला हो !

—महादेवी

(१०) मुकुलित पलकों के प्यालों में किस स्वप्निल मदिरा का राग

—पंत

(११) लाज की मादक सुरा-सी लालिमा

—पंत

(१२) अह, सुरा का बुलबुला यौवन, धवल

—पंत

(१३) कपोलों की मदिरा पी प्राण !

—पंत

छायावाद को सुरा के अतिरिक्त सुन्दरी से भी काफी प्रेम रहा है। विस्तार-भय के कारण एक ही उदाहरण पर्याप्त है—

तुम्हारे रोम-रोम से नारि !
मुझे है स्नेह अपार !!

—पंत

इस तरह कचन-कामिनी कादम्ब का संकलनत्रय छायावाद में परिमाण-प्रचुर है। कंचन, कामिनी और कादम्ब के प्रति यह अपार स्नेह, निस्सन्देह, अभिजात-मनोवृत्ति ही है। सुवर्ण, सुरा और सुन्दरी की प्रधानता के काव्य को अभिजात-मनोवृत्ति का काव्य नहीं तो और क्या कहेंगे ?

तो मेरा दावा यही है कि छायावाद का काव्य अभिजात-मनोवृत्ति का काव्य है। क्या विषय और क्या अभिव्यंजना-प्रणाली—दोनों दृष्टियों से विचार करने पर आप पायेंगे कि

मेरी मान्यता को सत्य की मुहर प्राप्त है। छायावाद, ठीक ही आरंभ में प्रेम, प्रकृति और नारी के भाव-गान में संकुचित रहा। 'कागजी कुसुम', 'सध्या', 'ऊषा', 'जुही की कली', 'अप्सरा,' 'नारी-रूप', 'भावी पत्नी, एव अन्यान्य प्रणय-भावनायें ही छायावादी कविताओं को विषय रही। दृष्टि थोड़ी आगे बढ़ी तो वह या तो राजकुमार-राजकुमारियों की ओर गई या अतीत एव वर्तमान के महापुरुषों की ओर। 'प्रसाद' जी की 'कामायनी,' 'महाराणा का महत्त्व,' 'अशोक की चिन्ता' एवं 'प्रलय की छाया'; पंत जी की 'बापू के प्रति,' 'मार्क्स के प्रति,' और 'निराला' की 'तुलसीदास' आदि रचनायें उपर्युक्त दृष्टि की ही परिचायक है। संक्षेप में, छायावाद की विषय-वस्तुएँ अभिजात-वर्ग तक ही प्रायः सीमित रही। छायावादी कवियों के संस्कार ही अभिजात-वर्ग के संस्कार थे। फलतः अभिव्यंजना-प्रणाली में भी अत्यधिक कल्पनाशीलता, कोमलता, माधुर्य और अलंकार-प्रियता अभिजात, संस्कार के ही परिणाम है।

छायावादी कवियों पर अँग्रेजी के रोमांटिक कवियों का भी प्रभाव पड़ा था। अँग्रेजी के वे रोमांटिक कवि उच्चवर्ग के थे। अतएव स्वभावतः, छायावादी काव्यों में भी अँग्रेजी-रोमांटिक कवियों की अभिजात-मनोवृत्ति का प्रभाव दिखाई पड़ा। पंत जी की कविताओं में तो उस अभिजात-मनोवृत्ति का जादू सर चढ़कर बोला है। कुछ पंक्तियाँ देखिए—

रंग रग के खिले फ्लॉक्स, वर्बीना, छिपे डिमाथस
नतदृग ऐंटिर्ह्निम तितली-सी पेंजी, पॉपी सालम

और—

जोसेफ हिल, सनबेस्ट पील, स्वर्णिम लेजी हेलिडन

और यह भी अभिजात-वर्ग का ही संस्कार है कि छायावादी कवि को बीसवी शती की शिक्षित-सभ्य नारी इंजीनियर डॉक्टर या समाज-सेविका के रूप में नही दिखाई पड़ी: वह आज की शत-शत कॉलिज बालाओं-सी अपटूडेट', 'फारवर्ड', 'फैशनेबुल' और फ्रॉड (छल) प्रतीत हुई—

सुभग रज, लिपस्टिक, ब्रॉस्टिक, पौडर से कर मुख रजित
अंगराग, क्यूटेक्स, अलक्तक से बन नखशिख शोभित
सागर तल से ले मुक्ता फल, खानों से मणि उज्ज्वल
रजत-स्वर्ण मे अंकित तुम फिरती 'अप्सरि-सी चचल
....
तितली-सी तुम फूल-फूल पर—मँडराती मधुक्षण हित
....
तुम्हें सुहाता रंग प्रणय, धन, पद मद, आत्म-प्रदर्शन!
तुम सब कुछ हो, फूल, लहर, तितली, विहगी, मार्जारी
आधुनिके! तुम नहीं अगर कुछ, नही सिर्फ तुम नारी!

और पीछे चलकर छायावाद ने जब अपने को पीड़ितों और निर्बलों का जीवन-सम्बल भी बताया (जो दीन-हीन पीड़ित-निर्बल; मैं हूँ उनका जीवन-सम्बल !—पंत) तो फिर भी उसके आभिजात्य संस्कार छिपाये नहीं छिप सके। यही कारण है कि छायावादी कवि निम्न वर्ग को मात्र बौद्धिक सहानुभूति दे पाए, वहाँ उन कविताओं में तन्मयता नहीं है, कवि के हृदय के तार नहीं बजे हैं, मानवता के नाते केवल मस्तिष्क ही मुखर हो उठा है। हृदय से दूर होने के कारण ही कविताओं की विषय-वस्तु और शैली में वैषम्य भी आ उपस्थित हुआ है। निम्न वर्ग के चित्रण के समय भी छायावादी कवि के स्वर्ण-रजत, मणि-मुक्ता, हीरा मोती, मरमरा-मलमल, मरकत-नीलम आदि के संस्कार बोल उठते हैं। इसीलिए 'ग्राम युवती' 'सिर पर धर स्वर्णकलश डाली' पेड़ों पर आती-जाती है और वह देखती है—

> फैली खेतों में दूर तलक, मखमल की कोमल हरियाली
> लिपटी जिससे रवि की किरणें, चाँदी की-सी उजली जाली
>
> —पंत

और—

> अब रजत-स्वर्ण मंजरियों से लद गई आम्र-तरु की डाली

तो इस प्रकार अभिव्यंजना-प्रणाली में स्वर्ण-रजत, मणि-मुक्ता आदि के रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के बहुल प्रयोग भी छायावादी कवि के अभिजात-संस्कार ही प्रकट करते हैं। भावाभिव्यंजना की तह में जो बात सूक्ष्म रूप में काम करती है वह अभिजात-संस्कार ही तो है !

इस भाँति ऊपर के विवेचन से मेरी मान्यता प्रमाणित है। छायावाद का काव्य, निस्सन्देह, प्रमुखतः अभिजात-मनोवृत्ति की ही कृति है। किन्तु उसमें बिल्कुल ही एकांगिता है, ऐसा मैं नहीं मानता। समाज के जनसाधारण के जीवन से प्रायः विमुख होते हुए भी उसने दीन दलितों की समस्याओं को भी स्पर्श किया है अवश्य। छायावाद का समाजशास्त्रीय अध्ययन अन्यत्र प्रस्तुत किया गया है।

छायावाद का समाजशास्त्रीय अध्ययन

प्रस्तुत प्रबंध में छायावादी काव्यों के समाज-पक्ष पर विचार करना अभीष्ट है। कुछ आलोचकों का आक्षेप है कि छायावाद-काव्य बिल्कुल अभिजात-वर्ग का काव्य है, जन-जीवन से वह सर्वथा उदसीन है। समाज के सुख-दुख, समाज की जटिल-जीवंत समस्याएँ उसमें मुखरित नहीं। किन्तु, जैसा कि आगे आप देखेंगे, छायावाद-काव्य समाज पक्ष से सर्वथा तटस्थ नहीं है। व्यक्ति-प्रधान अभिजात-मनोवृत्ति का काव्य होते हुए भी उसमें समाज के प्रमुख प्रश्न बोल उठे हैं। यहाँ समाज की दृष्टि से ही छायावाद पर विचार किया जाएगा। आलोचना की यह प्रणाली समाज शास्त्रीय आलोचना कहलाती है। इसका ही दूसरा नाम मार्क्सवादी अथवा प्रगतिवादी आलोचना भी है। तो इस प्रकार छायावाद की यह हमारी समाजशास्त्रीय आलोचना प्रगतिवादी आलोचना भी कही जा सकती है अथवा मार्क्सवाद की दृष्टि से छायावाद का अध्ययन भी।

समाजशास्त्रीय आलोचना की यह मान्यता है कि साहित्य समाज का दर्पण है तथा दीपक भी। अतएव साहित्य में समाज का यथातथ्य चित्रण होना चाहिए। साहित्य समाज की वृत्ति है, समाज के लिए है। साहित्य का, इस दृष्टि से, समाज के लिए उपयोगी होना भी आवश्यक है। जो साहित्य समाज के लिए उपयोगी नहीं, हितकर नहीं, वह व्यर्थ है। समाज से तटस्थता साहित्य की सबसे बड़ी निर्लज्जता है। साहित्य में समाज के वर्ग-संघर्षों का, समाज की भौतिक-आर्थिक स्थितियों का यथावत् चित्रण होना अपेक्षित है। समाज के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वर में भी परिवर्तन होना चाहिए। साहित्य में जन-साधारण की अभिव्यक्ति आवश्यक है। यहाँ कलाकार की दृष्टि आत्मनिष्ठ (वैयक्तिक) नहीं, वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए। उसे किसी वस्तु को अपनी आँखों से नहीं देखना है, उसे तो वस्तु को ज्यों-का-त्यों चित्रित करना आवश्यक है। भौतिक जगत के प्रति यह सच्चाई उसका सबसे बड़ा कर्तव्य है। जिस साहित्य में उपर्युक्त ये बातें, अधिक-से-अधिक परिणाम में मिलती हैं, समाजशास्त्रीय (प्रगतिवादी अथवा मार्क्सवादी) समीक्षा की दृष्टि से वह अधिक-से-अधिक सफल माना जाता है।

तो इस आलोक में छायावाद पर जब हम विचार करते है तो पाते हैं कि छायावाद आरंभ में जितना भी आत्मनिष्ठ अथवा वैयक्तिक रहा हो, बाद में उसकी एकांगिता बनी नहीं रह गई। समाज के सुख-दुख, जीवन-संघर्ष एवं प्रधान समस्याओं की ओर भी उसका ध्यान गया। जन-साधारण के जीवन का उसने स्पर्श किया। उनकी भौतिक-आर्थिक

स्थितियों को वाणी दी। भिक्षुक, विधवा से लेकर पासी के बच्चों तक का यथातथ्य चित्रण किया गया। समाज के लिए केवल समाज के लिए ही नहीं, वरन् पूरे देश, समग्र राष्ट्र एवं समस्त मानवता के कल्याण के लिए मंगल-कामना का स्वर भी छायावाद में मिलता है। तो हम कैसे मान लें कि छायावाद जीवन से पलायन था ? यह कैसे स्वीकार करें कि छायावाद काव्य जीवन-वास्तव से तटस्थ था ? तद्युगीन सामाजिक जीवन, निश्चय ही, छायावाद-काव्य में अभिव्यक्त है। अभिजातमनोवृत्ति भी एक समाज (अभिजात-समाज) की ही तो वाणी है! साथ ही, छायावाद ने जन-साधारण के जीवन को भी अभिव्यक्ति दी। छायावाद की किसी वृत्ति-विशेष अथवा कवि-विशेष को लेकर चाहे सुधी समीक्षक छायावाद में समाज-पक्ष का अभाव मानने की विवशता का अनुभव करें, किन्तु समग्र रूप से विचार करने पर वे पायेंगे कि छाया काव्य में सदैव एकांगिता बनी नहीं रह गई है।

पाश्चात्य आलोचना से आक्रान्त आलोचक डॉ० देवराज का कहना है कि "क्या छायावाद ने ऐसी अनेक रचनायें भी प्रस्तुत की जो हमारे राष्ट्र या जाति के स्थायी महाप्राण साहित्य का अंग बन सकें? इस प्रश्न का उत्तर बहुत अंशों तक नकारात्मक है।"[1] पता नहीं, डॉक्टर साहब 'कामायनी' को कैसे भूल गये! 'निराला' और 'पंत' के काव्य-ग्रंथों को उन्होंने पढ़ा भी है, मुझे सन्देह ही है! पुस्तक के 'निवेदन' में जब उन्होंने लिखा था कि "प्रस्तुत लेखक ने कभी कालेज में हिन्दी नहीं पढ़ी" तो इसे मैंने केवल नम्रता-प्रदर्शन समझा था, परन्तु अब मालूम हुआ कि उस वाक्य का अर्थ अभिधा में ही ग्रहण करना चाहिए। ऐसी हालत में छायावाद पर उनके निर्णय मनमाने, अधकचरे और भ्रामक हैं तो इसमें अचरज की कौन-सी बात!

छायावाद में मनुष्य-समाज के प्रति गहरी सहानुभूति आरम्भ से ही जगती रही है। 'प्रसाद' का कवि समस्त मानव समाज के मन मंदिर का पुजारी है। आरम्भ से ही प्रसाद जी की रचनाओं में व्यापक मानवता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता का स्वर सुनाई देता है। वे ऐसे व्यक्तियों का आह्वान करते हैं सारा मानव-समाज जिन्हें प्रिय हो—

> जो अछूत का जगन्नाथ हो, कृषक-करों का दृढ़ हल हो
> दुखिया की आँखों का आँसू और मजूरों का बल हो

साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति मुख्यत: दो रूपों में संभव है। इसमें सहज रूप है समाज के लोगों की अभिव्यक्ति। अर्थात् समाज के लोगों के प्रति प्रेम, उनकी आर्थिक-भौतिक स्थितियों का वर्णन इत्यादि। समाज के दीन- दुर्बल जन-साधारण के प्रति सहानुभूति प्रकट करने वाली कवितायें इस कोटि में आती हैं। किसान मजदूर, अशिक्षित, दुर्बल-असहाय व्यक्ति इस प्रकार के काव्य के आलंबन बनते हैं। उनके शोषण, उन पर अत्याचार आदि के विरुद्ध क्रांतिकारी कविताएँ लिखी जाती हैं। छायावाद में ऐसी कवितायें प्रचुर परिमाण

1—छायावाद का पतन—पृष्ठ २०

में उपलब्ध हैं। छायावाद पर आक्षेप किया जाता है कि उसने समाज के संकट-संघर्षों से भागकर (पलायन कर) कल्पनालोक में शरण ली, वह सोने-चाँदी के ताने-बानों से व्यर्थ का शब्द-जाल बुनता रहा : किन्तु सुप्रसिद्ध प्रगतिवादी आलोचक श्रीप्रकाशचन्द्र गुप्त ने ही स्वीकार किया है कि छायावादी कवि भागकर भी ये जीवन से विलग न हो पाये। छायावादी कवियों की रचनाओं में समाज का क्रन्दन प्रतिध्वनित हुआ है। भारत की दुखी विधवा का करुण चित्र 'निराला' की इन पंक्तियों में देखिये—

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी
वह दीपशिखा-सी शांत भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन—
दलित भारत की ही विधवा है।

—परिमल : निराला

छायावादी काव्य में तद्युगीन भारतीय सामाजिक जीवन की यह अभिव्यक्ति स्वाभाविक ही है। समाज की परम्परागत अंध-मान्यताएँ, दरिद्रता, असंतोष आदि भी छाया-काव्य में सस्वर हो उठे। सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों से कवि की स्वच्छन्द कविता विद्रोह कर उठी। ऐसी स्थिति मे शोषण, अत्याचार और अंधविश्वास के अंत के लिए कवि का हृदय आकुल था।

'कृषकबाला' से लेकर समाज के अत्यन्त उपेक्षित वर्ग 'पासी के बच्चे' तक को छायावाद ने अभिव्यक्ति दी। लहलहाते खेतों में धान काटती हुई कृषकबाला के प्रति कवि का ध्यान आकर्षित हुआ—

उस सोंधे जीवन का श्रम
हेमहास से शोभित है नव
पके धान की डाली में—
कटनी के घुँघुर रुन-झुन
(बज-बज कर मृदु गाते गुन)
केवल श्रांता के साथी हैं
इस ऊषा की लाली में !

—पंत

फिर संध्या में 'टी-वी-टी-टु टु-टु-टु' करती चिड़ियों को जब कवि देखता है, तो मजदूरों के श्रम-श्लथ चरण और उनके बोझिल जीवन की उपेक्षा वह नहीं कर पाता—

ये नाप रहे निज घर का मग
कुछ श्रमजीवी धर डगमग डग
भारी है जीवन ! भारी पग !!

—पंत

भारतीय ग्राम्य-जीवन और ग्रामीण समाज ने भी पंत के कवि को काफी आकृष्ट किया। 'ग्राम्या' की रचनायें इस कथन की साकार प्रमाण हैं। ग्रामीण-समाज के अनेक जीते-जागते चित्र 'ग्राम्या' में आप पाते हैं। 'ग्राम वधू'-शीर्षक कविता में ग्रामीण-समाज की यह एक कितनी सुन्दर तस्वीर है—

जाती ग्राम वधू पति के घर !
माँ से मिल, गोदी में सिर धर
गा-गा बिटिया रोती जी भर
जन-जन का मन करुणा कातर !

.. ..

मिलती ताई से गा-रोकर
मौसी से वह आपा खोकर
बारी-बारी रो-चुप होकर

....

माँ कहती रखना सँभाल घर
मौसी,—धनि, लाना गोदी भर
सखियाँ,—जाना हमें मत बिसर
जाती ग्राम-वधू पति के घर !!

ग्रामीण-समाज के लोगों का यथातथ्य चित्रण 'नहान' शीर्षक दूसरी कविता में भी द्रष्टव्य है—

जन पर्व मकर-संक्रांति आज,
उमड़ा नहान को जन-समाज,
गंगा-तट पर सब छोड़ काज,

नारी-नर कई कोस पैदल
आ रहे चले लो दल-के दल
गंगा-दर्शन को पुण्योज्ज्वल !

गा रही स्त्रियाँ मंगल कीर्तन
भर रहे तान नवयुवक मगन,
हँसते, बतलाते बालक-गण

बाँहों में वहु बहुँटे जोशन
बाजूबन्द, पट्टी, बाँक, सुषम
गहने हीं ग्वारिनों के धन !

वे कटि में चल करधनी पहन
पाँवों में पायजेब, झाँझन
वह छड़े, कड़े, बिछिया शोभन !

—पंत

दूसरी ओर अत्याधुनिक नागरिक समाज की 'अप टू-डेट' बनी-ठनी, 'फॉरवर्ड' और 'फैशनेबुल' नारी भी छायावाद की दृष्टि से बच नहीं सकी है। पाश्चात्य-प्रभावित ऐसे नारी-समाज का बिल्कुल यथातथ्य चित्र आप देखना चाहें, तो देखें—

सुभग सज, लिपस्टिक, ग्रीस्टिक, पौडर से कर मुख रंजित,
अंगराग, क्यूटेक्स, अलक्तक से धन नख-शिख शोभित,

....

लहरी-सी तुम चपल लालसा श्वास वायु से नर्तित
तितली-सी तुम फूल-फूल पर मँडराती मधुक्षण हित !
मार्जारी तुम, नहीं प्रेम को करती आत्म-समर्पण
तुम्हें सुहाता रंग-प्रणय, धन, पद, मद, आत्म प्रदर्शन !

—पंत

'निराला' के काव्यों में भी समाज के जीवन-संघर्षों को वाणी मिली है। 'भिक्षुक-शीर्षक कविता में कवि ने एक भिक्षुक का बड़ा ही करुण चित्र प्रस्तुत किया है। समाज की दीन-दुर्बल मजदूरिन का भी यथातथ्य अंकन करते हुए कवि ने कहा है कि—

वह तोड़ती पत्थर।
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
वह तोड़ती पत्थर
कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार;
सामने तरु-मालिका-अट्टालिका प्राकार
चढ़ रही थी धूप,
गर्मियों के दिन
दिवा का तमतमाता रूप;

उठी झुलसती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगीं छा गई
प्राय: हुई दुपहर ;
वह तोड़ती पत्थर !

एक ओर समाज की ऐसी दशा, और दूसरी ओर सम्पन्न व्यक्तियों का कला-विलास, 'ताजमहल' देखकर छायावाद का हृदय हाहाकार कर उठा—

हाय, मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन
जब विषण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन ?
... ...
शव को दें हम रूप-रंग आदर मानव का,
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का !
—पंत

एक ओर सम्पन्न व्यक्ति मृत प्रेयसी की स्मृति में लाखों-करोड़ों रुपये खर्च कर ताजमहल बनवाते हैं, और दूसरी ओर भूखे-नंगे लोगों के रहने को भी जगह नहीं ! यह कैसी विषमता है, मनुष्य के प्रति मनुष्य की यह कैसी प्रीति है ?

मानव ऐसी भी विरक्ति का जीवन के प्रति !!
आत्मा का अपमान ! प्रेत औ' छाया से रति ! !
—पंत

छायावाद की कोमल-क्लांत कविता आज कैसी बात कह रही है ? यह तो जीवन से पलायन नहीं, जीवन के प्रति प्रगाढ़ अनुराग है । छायावाद ने जीवन का परिधान भी पहना, जीवन की वास्तविकता को भी सच्ची वाणी दी । आधुनिक सभ्यता की ट्रैजेडी उसके काव्यों में बोल उठी । अब वह इन्द्रजाल और केवल बादल दल के कल्पनालोक का विहारी नहीं, जीवन-संघर्षों का भी गायक है । उसके लिए अब कला सत्य नहीं, जीवन ही सत्य है । छायावाद के ही शब्दों में "सर्वोच्च कलाकार वह है, जो कला के कृत्रिम पट में जीवन की निर्जीव प्रति कृतियों का निर्माण करने के बदले अस्थि-मांस की इन सजीव प्रति-माओं में अपने हृदय से सत्य की साँसें भरता है ।"[1] इस प्रकार छायावाद सामाजिक समस्याओं की घाटियों में भी आया । छायावाद का काव्य समाज से उदासीन नहीं, वह तो काव्य के लिए समाज का विशाल चित्र-पट चाहता है । समाज से, जीवन से कवि को प्रेम है—

जग-जीवन में उल्लास मुझे !
—पंत

१—ज्योत्स्ना (भूमिका)—सुमित्रानन्दन पंत

वह प्रकृति से लेकर व्यापक विश्व, सारी मानवता, मनुष्यता-मात्र से प्रेम करता है—

प्रिय मुझे विश्व यह सचराचर
तृण, तरु, पशु, पक्षी, नर, सुरवर !

किन्तु, साथ ही वह जीवन की विभीषिकाओं को दूर करने का अभिलाषी है। उसे जड़-जर्जर अंधविश्वासों में विश्वास नहीं। वह आर्थिक असमानताओं में तड़पते दीन-दुर्बलों को नहीं देख सकता। इस प्रकार स्पष्ट ही छायावाद-काव्य अब समाज का रियलिस्ट-काव्य बन जाता है।

छायावाद 'मानव' की ओर गुंजन-काल से ही आकृष्ट हो चुका था—

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर, मानव, तुम सबसे सुन्दरतम !
निर्मित सबकी तिल सुषमा से तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम !!

—पंत

पीछे चलकर उसकी कला-कल्पना दृढ़ता के साथ धरती के जीवन-वास्तव पर उतरी। ठोस यथार्थ के प्रति उसका आग्रह बढ़ा—

ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु, नीलिमा, गहन
गगन ?
अनिमेष, अचितवन, काल-नयन ?
देखो भू को,
जीव प्रसू को !
... ...
जिस पर अंकित
सुर-मुनि वंदित
मानव-पद-तल !

—पंत

और अब छाया, संध्या, नारी, मधुकरी और कागजी-कुसुम की जगह उसकी कविता के विषय बने—

नंगे-तन, गदबदे, साँवले सहज छबीले
मिट्टी के मटमैले पुतले, पर फुर्तीले

—पंत

और पासी के बच्चे, दीन-हीन, पीड़ित-निर्बल !

और गाँवों में झाड़-फूस के झोपड़ों को देख कवि कह उठता है—क्या यही जीवन-शिल्पी के घर हैं ? क्या नंगे-भूखे यही मनुष्य हैं ?—

यह तो मानव-लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित

—पंत

और अब अंधविश्वासों, अत्याचारों एवं विषमताओं को दूर करने की क्रांतिकारी आवाज़ भी छाया-काव्य में आप सुन सकते हैं। महाकवि निराला ने विषमताओं के भीषण वातावरण के प्रति जन-समुदाय को जागरूक किया—

जागो फिर एक बार!
गया दिन, आई रात
मुँदी रात, खुला दिन,
ऐसे ही मतार के
बीते दिन, पक्ष मास,
वर्ष कितने ही हजार!
जागो फिर एक बार!!

साथ ही, स्वतन्त्रता का सन्देश भी उन्होंने सुनाया—

ताल-ताल से रे सदियों के जकड़े हृदय-कपाट
खोल दे कर-कर कठिन प्रहार—

—निराला

और कवि प्रसाद ने सैकड़ों मुसीबतों, विपत्तियों के बीच भी आगे बढ़ने की प्रेरणा दी—

सपूत मातृभूमि के
रुको न सूर साहसी
अराति-सैन्य-सिन्धु में
सुवाडवाग्नि से जलो,
प्रवीर हो, जयी बनो,
बढ़े चलो, बढ़े चलो!

निराला जी में सामाजिक अंधविश्वासों के प्रति विद्रोह है। उदाहरण देखिये—

मेरे पड़ोस के वे सज्जन, करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन
झोली से पुए निकाल लिए, बढ़ते कवियों के हाथ दिए
देखा भी नहीं उधर फिर कर, जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर
चिल्लाया किया दूर मानव, बोला मैं 'धन्य श्रेष्ठ मानव'!

—अनामिका : निराला

निर्बलों और गिरे हुओं के प्रति सहानुभूति नरेन्द्र की कविता में भी मिलती है—

यहाँ कौन है जग में पापी वह मेरा भोला भाई है
वह मेरा भूला भाई है, यहाँ कौन इस जग में पापी
बालक है, थक ही जाते हैं, पल भर कहीं ठहर जाते हैं
क्या डर है यदि कठिन मार्ग में संग न ये शिशु चल पाते है

स्त्रियों की दशा में सुधार के लिए कवि पंत उनके अधिकारों का समर्थन करते हुए स्वतन्त्रता देना चाहते हैं—

उसे मानवी का गौरव दे पूर्ण स्वत्व दो नूतन
उसका मुख जग का प्रकाश हो उठे अंध अवगुंठन
खोलो हे मेखला युगों से कटि प्रदेश से, तन से
अमर प्रेम ही बन्धन उसका, वह पवित्र हो मन से

और भी—

मुक्त करो नारी को मानव, मुक्त करो नारी को !
युग-युग की निर्मम कारा से जननी, सखी, प्यारी को !!

इस प्रकार कवि समाज की अपूर्णता के लिए पूर्णता का प्रयासी है। वह समाज की विभीषिकाओं को दूर करने के लिए एक नई व्यवस्था की आवश्यकता समझता है। पहले तो जीर्ण शीर्ण प्राचीन अंधविश्वासों का ही अंत होना चाहिए—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र हे स्रस्त ध्वस्त ! हे शुष्क शीर्ण
हिम-ताप पीत, मधुवात-भीत तुम वीत राग, जड़, पुराचीन !
—पंत

तथा—

नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन, ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बन्धन !
झरें जाति-कुल-वर्ण-पर्ण घन, अंध-नीड़ से रूढ़ि रीति छन
—पंत

और तब नव-निर्माण होगा, नवीन समाज-व्यवस्था की स्थापना होगी। सुन्दर संसार की कल्पना कवि के मन-प्राणों में जाग उठी है—

सुन्दरता का संसार नवल, अंकुरित हुआ मेरे मन में
जिसकी नव मांसल हरीतिमा, फैलेगी जग के गृह वन में।
—पंत

उस संसार में शोषण, पीड़न, अत्याचार और अंधविश्वासों का नाम नहीं रहेगा—

रूढ़ि-रीतियाँ जहाँ न हों आराधित, श्रेणी वर्ग में मानव नहीं विभाजित
धन-बल से हो जहाँ न जन-श्रम-शोषण, पूरित भव-जीवन के निखिल प्रयोजन
ऐसा स्वर्ग धरा में हो समुपस्थित, नव मानव-संस्कृति-किरणों से ज्योतित
—पंत

सभी मानव मानव समान होंगे, सब काम करेंगे, उचित मान पाएँगे—

सब श्रम उद्यम गौरव प्रधान
सब कर्मों का हो उचित मान
सब कंठों में हो एक गान—
मानव-मानव सब हैं समान !
—पंत

स्पष्ट ही, यह मार्क्सवादी विचार है, इस प्रसंग में यह कहना अनुचित न होगा।

अब मानव-समाज की समस्याओं ने छायावाद को अत्यधिक आक्रान्त कर दिया है। छायावाद मे लोक मंगल की भावनायें प्रबल हो उठी हैं—

आओ, लोक-समस्याओं पर मिलकर करें विवेचन
मानव-तन को शोभाऽवृत कर नव-युग करे पदार्पण
सर्वाधिक रे जन-शिक्षा का प्रश्न महत्, आवश्यक...

—पन्त

'निराला' का तो विचार है कि अमीरो की इतनी कोठियाँ क्यो हैं? इन्ही मे पाठशालाएँ और बैंक बनने चाहिए—

आज अमीरो की हवेली, किसानो की होगी पाठशाला,
धोबी, पासी, चमार, तेली, खोलेंगे अँधेरे का ताला।

... ...

जहाँ-जहाँ सेठ जी बैठे थे, बनिए की आँख दिखाते हुए
उनके ऐंठाये ऐंठे थे, धोखे पर धोखे खाने हुए
बैंक किसानों का खुलवाओ : —निराला

तो इस प्रकार स्पष्ट ही छाया काव्य में सामाजिक जागरण की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। फिर छायावाद के सम्बन्ध में यह गलत आक्षेप कि "स्वभावत: जन-जागरण के विक्षुब्ध भैरव-नाद का निर्घोष करने में छायावाद की कोमल स्वर-तन्त्रियाँ फटी बाँसुरी की तरह फड़फड़ाकर रह गईं"[1] अनुचित नही तो और क्या है? यही नवलकिशोर गौड़-जैसा विद्वान् (?) प्रोफेसर-आलोचक ईमानदारी की पटरी से उतर जाता है। आलोचक-प्रवर को ज़रा समझना चाहिए था कि 'अधरों में राग अमन्द पिये' ही एकमात्र छायावादी कविता नहीं है! ऊपर के हमारे विवेचन से स्पष्ट है कि समाज के सुख-दुख, समाज की विषमतायें-समस्यायें भी छायावाद मे स्थान पा सकी हैं। अत्याचारो-अंधविश्वासों और शोषण के विरुद्ध क्षोभ एवं असंतोष भी छाया-काव्य मे मुखरित हैं। छायावाद ने राजनीति और समाज-जीवन की सर्वथा उपेक्षा नही की है। समाज के कल्याण के साथ साथ ही आज व्यक्ति का कल्याण भी संपृक्त है। लोक-मंगल में ही व्यक्ति-मंगल अन्तर्मुक्त है—

भू-मंगल के साथ आज परिणीत व्यक्ति का मंगल

— पंत

इसलिए छायावाद-काव्य मे लोकमंगल की भावना प्रचुर परिमाण मे मिलती है—

आओ मुक्त कंठ से सब जन
भू-मंगल का गावें गायन,

१—साहित्यिक निबंधावली—सं० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृष्ठ १२१

जाति वर्ण के टूटें बन्धन
रुढ़ि रीति से मुक्त बने मन
दिशालोक श्रम से हों हर्षित
काल विश्व-रचना में योजित
भव-संस्कृति में देश हों ग्रथित
जन-संपन्न, जगत मनुजोचित !

—पंत

कुसुम-कलि में तृण-तरु में सर्वत्र कवि विराट् मंगल-विधायक चेतना का आह्वान करता है—

जग के उर्वर आँगन में, बरसो ज्योतिर्मय जीवन !
बरसो लघु-लघु तृण-तरु पर, हे चिर अव्यय, चिर नूतन !

... ...

बरसो सुख बन, सुषमा बन, बरसो जग जीवन के घन !
दिशि-दिशि में औ' पल-पल में, बरसो संसृति के सावन !!

—पंत

और कवि जग-जीवन के लिए, समस्त मानवता के लिए, समग्र लोक-मंगल के हेतु कहता दीख पड़ता है कि—

विश्व-वेदना में तप प्रतिपल
जग-जीवन की ज्वाला में गल
बन अकलुष, उज्ज्वल, औ' कोमल
तप रे विधुर विधुर मन !

... ...

तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन
गंधहीन, तू गंधयुक्त बन
निज अरूप में भर स्वरूप मन
मूर्तिमान बन, निर्धन !

—पंत

तो निष्कर्षतः, निश्चय रूप से, छायावाद में लोकमंगल के तत्त्व उपलब्ध हैं। छाया-काव्य की सामाजिक उपयोगिता कम नहीं है। जैसा कि हम देख चुके हैं, छायावाद दलित-दुर्बल-शोषित वर्गों के जीवन में दिलचस्पी रखता है, और साथ ही उन्हें आगे बढ़ने को प्रेरित भी करता है। इससे भी बढ़कर उसका स्वप्न है नवीन समाज-व्यवस्था की स्थापना का। वह नवीन मानवता के नवीन विश्व का आकांक्षी है।

छायावाद में धोबी, चमार, ग्रामीण जन, साधारण से लेकर तेली, पासी और समाज के अन्यान्य वर्गों ने भी प्रतिष्ठा पाई।

फिर छायावाद समाज-कल्याण के लिए समता और स्वतंत्रता की आवश्यकता समझता है। स्वतंत्रता के लिए आकुल आवाज छायावाद की अनेक कविताओं मे विद्यमान है। सामाजिक समस्याओं की आलोचना करते हुए छायावाद ने पीछे चलकर वर्तमान समाज-व्यवस्था मे ही बिल्कुल परिवर्तन आवश्यक समझा। जब तक नई समाज-व्यवस्था नही होती, मानवता का कल्याण सभव नही है। इसलिए नवीन विश्व, नवीन सस्कृति का स्वर भी छायावाद काव्य मे प्रधान हो उठा। इस प्रकार स्पष्टत: हम पाते है कि छाया-काव्य लोकमगल से सर्वथा विमुख कदापि नही रहा। तो निश्चय ही छायावाद पर पलायनवाद का आक्षेप हम सही नहीं मान सकेंगे। छायाकाव्य मे वैयक्तिकता भी है, किन्तु सामाजिकता भी। आरभ मे व्यक्ति-निष्ठ होते हुए भी इसने समाज की सर्वथा उपेक्षा नही की। इसमे सामाजिक समस्याएँ भी हैं, समाज-कल्याण की भावना भी। यह समाज-पक्ष, लोक-मंगल का तत्त्व, छायाकाव्य के पुनर्मूल्याकन की दृष्टि से भी अत्यत महत्त्व-पूर्ण है।

---

९. छायावादी काव्य में विचार-तत्त्व : बुद्धि-पक्ष

काव्य के तीन तत्त्व होते है—भाव-तत्त्व, कल्पना-तत्त्व और बुद्धि-तत्त्व। भाव तत्त्व का ही दूसरा नाम रागात्मक तत्त्व है, तथा बुद्धि-तत्त्व को ही दूसरे शब्दों में विचार-तत्त्व भी कहते हैं। काव्य के इन तीन तत्त्वों—भाव, कल्पना और बुद्धि—में परस्पर क्या सम्बन्ध है और साहित्य में उनका क्या महत्त्व है, प्रश्न विचारणीय है। भाव तत्त्व ही अन्य तत्त्वों की अपेक्षा प्रधान माना जाता है। वास्तव में भाव-तत्त्व ही काव्य में सब कुछ है, कल्पना और बुद्धि तत्त्व उसके सहायक तथा उत्कर्ष वर्द्धक-मात्र हैं। जिस तरह मानव-मन के भाव जटिल और दुरूह हुआ करते हैं, उसी तरह काव्य के भी। काव्य के भाव बड़े विचित्र और अनोखे होते हैं। काव्य में जो विविधता और विलक्षणता दिखाई देती है, उसका मूल कारण यही मानव-मन की विचित्रता, चंचलता एवं अनेकरूपता है। भाव कवि के हृदय में उठते हैं, और वह कल्पना तथा बुद्धि के सहारे उन्हे वाणी देता है। मन में तरंगित वे भाव कई प्रकार के होते हैं और हो सकते हैं। साधारणतः इन्द्रिय-जनित प्रज्ञात्मक तथा गुणात्मक—तीन प्रकार के भाव विद्वानों ने माने हैं। भाव से ही काव्य बनता है, भाव के अभाव मे काव्य हो नही सकता। किन्तु भाव ही काव्य नहीं है। भाव की अभिव्यक्ति जब होगी, तभी काव्य का सृजन होगा। हमारे मन में वेदना है, हमारी आँखों में आँसू भी है—किन्तु वे काव्य नहीं। 'प्रसाद'-जैसा कवि जब उन्हें 'आँसू' की पंक्तियों में व्यक्त करता है, तभी वेदना के वे भाव काव्य बनते हैं। तात्पर्य यह कि भाव की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। कल्पना-तत्त्व से काव्य के भाव-तत्त्व को बल मिलता है। कल्पना भावों के चित्र अंकित करने की शक्ति रखती है, और इस प्रकार वह काव्य को प्रभावोत्पादक बनाती है। वह काव्य के भावों को मूर्त रूप देकर उन्हे सशक्त करती है। किन्तु बुद्धि-तत्त्व का भी काव्य मे कम महत्त्व नही। कवि अपने काव्य में जिन विचारों को व्यक्त करता हैं, उन्ही का सम्बन्ध बुद्धि-तत्त्व से है। बुद्धि निश्चयात्मक वृत्ति है। बुद्धि से ज्ञान का बोध होता है। काव्य में व्यक्त कवि का विचार ही उसका ज्ञान है। यह ज्ञान, यह विचार जितना ही श्रेष्ठ होगा, काव्य भी उतना ही उच्च कोटि का होगा। काव्य में बुद्धि-तत्त्व का यही महत्त्व है। काव्योत्कर्ष की दृष्टि से बुद्धि-तत्त्व की महत्ता भी विचारणीय है। जिस काव्य में विचारों की गंभीरता होगी, उसके उत्कर्ष का धरातल अवश्य कुछ ऊँचा हो जायगा। इसीलिए काव्य मे बुद्धि या विचार-तत्त्व को सुचारु रूप से सुव्यवस्थित करने में काव्य की महत्ता अभिव्यंजित होती है। इसके अभाव मे काव्य चाहे कितना भी सरस और प्रभावशाली क्यों न हो, वह स्थायी महत्त्व को नहीं प्राप्त हो सकता। निष्कर्षतः भाव के अभाव में काव्य हो नहीं सकता, कल्पना के बिना उसमें प्रभाव नही भरा जा सकता, और बुद्धि के अभाव में तो काव्य महत्त्व-हीन है।

प्रस्तुत प्रबंध में छायावादी काव्य मे इसी बुद्धि-तत्त्व का विवेचन किया जायगा। जैसा कि हम जानते हैं, छायावादी काव्य में अत्यधिक भावुकता है और अत्यधिक कल्पनाशीलता भी; किन्तु विचार-तत्त्व (अथवा बुद्धि-पक्ष) का, निस्सन्देह उसमें बिल्कुल अभाव नही है। छायावादी काव्य का क्रमशः विकास हुआ है। विकास के इस क्रम मे छायावाद में भाव, कल्पना एवं बुद्धि-तत्त्वों का सुन्दर सामंजस्य हुआ है। कला-विलास के किशोर छायावादी कवियों में कालांतर मे विचार-प्रौढ़ता भी आई। तदुपरांत विचार-तत्त्व को भी काव्य के भाव एवं कल्पना-तत्त्वो मे अन्तर्मुक्त किया गया। छायावाद में विचार-तत्त्व मुखर हो उठा। कवि 'पंत' के 'गुंजन' तक छायावादी काव्य मे यह विचार-तत्त्व स्वस्थ कहा जा सकता है। बाद की छायावादी रचनायें विचार-बोझिल होकर कविता बनी नही रह पातीं। 'पंत' की 'युगवाणी' इस कथन का ज्वलंत प्रमाण है। किन्तु 'प्रसाद' जी की 'कामायनी' में भाव, कल्पना और बुद्धि तत्त्वों का जो सुन्दर सामंजस्य मिलता है, वह हिन्दी-कविता मे अभूतपूर्व है।

आइये, छायावादी काव्य में विचार-तत्त्वों को अब हम अलग-अलग शीर्षकों में विभक्त कर देखें।

प्रकृति :—

एक बार अँगरेज-कवि विलियम डेविस ने कहा था—

> Joy ! I have found thee !
> Far from the halls of Mirth,
> Back to the soft green earth
> I find thee, Joy, in hours
> With clouds, birds and flowers !

इसी प्रकार प्रकृति के प्रति सभी छायावादियों का अपार प्रेम रहा है। 'सुन्दरता कहँ सुन्दर करई, छबि गृह दीप-शिखा जनु बरई' की नारी से भी बढ़कर प्रकृति उन्हे ज्यादा प्रिय है। तभी तो—

> छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
> तोड़ प्रकृति से भी माया,
> बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन !
> ... ...
> तजकर तरल तरंगों को,
> इन्द्र-धनुष के रंगों को,
> तेरे भ्रू-भंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग-सा मन !!
>
> —पंत

अँग्रेज कवि-बैरन (Byron) ने भी कहा था—

There is a pleasure in the pathless woods,
There is a rapture on the lonely shore,
There is society where none intrudes,
By the deep sea and music in its roar :
I love not Man the less, but Nature more !

किन्तु वर्डस्वर्थ (Wordsworth) ने तो प्रकृति मे केवल आनन्द ही नहीं पाया और न उसने उसके प्रति केवल प्रेम ही प्रकट किया। प्रकृति उसके लिए चेतन सत्ता के रूप में एक रहस्यमयी अनुभूति थी। इसलिए कोकिला (Cuckoo) के प्रति वह कह उठता है—

Thrice welcome darling of the spring
Even yet thou art to me :
No bird but an invisible thing
A voice, a mystery !

वर्डस्वर्थ प्रकृति को शिक्षिका भी मानता है, पुस्तकों से भी अत्यधिक ज्ञान प्रकृति के पत्रों में है—

Books ! It's a dull and endless strife
Come, hear the woodland linnet
How sweet his music ! on my life,
There is no more of wisdom in it !

और इसीलिए—

Let Nature be your teacher
She has a world of ready wealth
Our minds and hearts to bless
Spontaneous wisdom breathed by health
Truth breathed by cheerfulness

इतना ही नहीं, और भी—

One impulse from the vernel wood
May teach you more of man !
Of moral evil and of good
Then all the sages can !!

छायावाद ने भी प्रकृति को चेतन सत्ता के रूप में देखा। यहाँ प्रकृति केवल हँसती, गाती और मनुष्यों को शिक्षा ही नहीं देती, अपितु दुख में सहानुभूति प्रकट करती हुई वह भी मानव-वेदना से उदास, उन्मन और पीली पड़ी हुई भी दिखाई देती है—

पीली पड़, दुर्बल, कोमल, कृश देह लता कुम्हलाई,
विवसना लाज में लिपटी साँसों में शून्य समाई !
रे म्लान, अंग, रंग, यौवन ! चिर मूक, सजल, नत चितवन !
जग के दुख से जर्जर उर, बस मृत्यु शेष अब जीवन !!

— पन्त

छायावाद ने प्रकृति को एक सर्वथा नवीन दृष्टि से भी देखा है। लौकिक जीवन में मानव की महत्ता के कारण, छायावाद प्रकृति को ही मानव की शिष्या बतलाता है। प्रकृति में जो शोभा-शृंगार है, मानव को ही देखकर तो उन्हें प्रकृति ने सीखा है। जैसे—

सीखा तुमसे कलियों ने मुख देख मन्द मुस्काना,
तारों ने सजल नयन-द्वो करुणा किरणें बरसाना !

— पन्त

'मधुवन'-शीर्षक कविता में, इसीलिए, कलियों कुसुमों में विकसित शोभा-सुषमा पर प्रेयसी की ही छवि का प्रभाव दिखाई देता है—

प्रिये, कलि कुसुम-कुसुम में आज मधुरिमा, मधु, सुषमा, सुविकास
तुम्हारी रोम-रोम छवि व्याज, छा गया मधुवन में मधुमास !

—पन्त

प्रकृति में चेतन सत्ता को देखकर कभी कवि का हृदय कौतूहल से भी भर जाता है। वर्डस्वर्थ की तरह ही प्रकृति उसे रहस्यमयी प्रतीत होने लगती है—

शांत सरोवर का उर
किस इच्छा से लहरा कर
हो उठता चंचल-चंचल !

—पन्त

नारी :

द्विवेदी-युग के जड़-जर्जर संस्कारों की कारा में बन्दिनी नारी को स्वतन्त्र करने के लिए छायावाद बोल उठा—

मुक्त करो नारी को मानव, चिर बन्दिनी नारी को
युग-युग की निर्मम कारा से जननी, सखी, प्यारी को !

—पन्त

छायावाद की विशेषता है कि उसने रीतिकाल की तरह नारी को केवल वासना की पुतली के रूप में नहीं देखा, और न तो द्विवेदी-युग के कलाकारों की तरह उसे रूढ़ संस्कारों के बन्धनों में ही बन्दिनी कर रक्खा। हिन्दी कविता में पहली-पहली बार छायावाद में ही नारी के प्रति इतनी उदात्त, इतनी व्यापक दृष्टि मिलती है—

तुम्हारे गुण हैं मेरे गान, मृदुल, दुर्बलता, ध्यान;
तुम्हारी पावनता, अभिमान, शक्ति, पूजन सम्मान;

तुम्हारी सेवा मे अनजान
हृदय है मेरा अंतर्धान;
देवि ! मा ! सहचरि ! प्राण !

—पन्त

और कवि 'प्रसाद' की तो उक्ति है—

नारी, तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पगतल में,
पीयूष स्रोत-सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल मे !

विलियम वर्ड्सवर्थ ने एक बार कहा था—

A Perfect woman nobly planned
To warm, to comfort, and command.
And yet a spirit still, and bright
With something of angelic light !

किन्तु बीसवीं शती की तथाकथित सु-सभ्य-सुशिक्षित नारियों, विशेषत: कॉलेज-बालाओं मे 'पर्फेक्ट वूमेन' के वे तत्त्व हैं कहाँ ! आज की स्त्रियों में केवल बाह्य रूप-प्रदर्शन है, पर हृदय का सौरभ नहीं । छायावाद की सजग आँखों से वह 'आधुनिका' छिप नहीं पा सकी है—

सुभग रुज, लिपस्टिक, ब्रौस्टिक, पौडर से कर मुख रंजित,
अंगराग, क्यूटेक्स, अलक्तक से बन नख-शिख शोभित;
....

नारी की सौन्दर्य, मधुरिमा औ' महिमा से मण्डित,
तुम नारी-उर की विभूति से, हृदय-सत्य से वंचित !
लहरी-सी तुम चपल लालसा श्वास वायु से नर्तित
तितली-सी तुम फूल-फूल पर मँडराती मधु क्षण हित !
....

तुम सब कुछ हो, फूल, लहर, तितली, विहगी, मार्जारी
आधुनिके, तुम नहीं अगर कुछ, नहीं सिर्फ़ तुम नारी !

— पंत

प्रेम :

प्रेम सर्व व्यापी है—

अनिल-सा लोक-लोक में,
हर्ष में, और शोक में,
कहाँ नहीं है प्रेम ? साँस-सा सबके उर में !

— पंत

बचपन, यौवन और वृद्धावस्था में सदैव यह विद्यमान रहता है। इसका आरंभ और अंत जाना नहीं जा सकता—

खोच लो इसका कहीं क्या छोर है! द्रौपदी का यह दुरंत दुकूल है!
फैलता है हृदय मे नभ-बेलि-सा! खोज लो इसका कहीं क्या मूल है?
—पंत

प्रेम का प्रभाव अनिर्वचनीय है। प्रेम का विज्ञापन नहीं किया जा सकता। फिर भी प्रेम मे आँखों की भाषा बदल जाती है, अधरों की भंगिमा बदल जाती है, हृदय मे नया ही संसार बस जाता है। तुलसीदास को तो रूप-वर्णन में कहना पड़ा था कि 'गिरा अनयन, नयन बिनु बानी' किन्तु प्रेम के प्रभाव मे तो ऐसी अवस्था हो जाती है कि—

गिरा हो जाती है सनयन नयन करते नीरव भाषण;
श्रवण तक आ जाता है मन, स्वयं मन करता बात श्रवण!
—पंत

और इसीलिए तो प्रेमानुभूति-वेला में महादेवी भी कह उठती हैं कि—

नयन श्रवणमय, श्रवण नयनमय, आज हो रही कैसी उलझन,
रोम-रोम में होता री सखि! एक नया उर का-सा स्पन्दन!

किन्तु सच्चे प्रेम का परिणाम प्रायः पीड़ा ही है। इसीलिए कहा भी गया है कि Love is a pleasant woe! बात यह है कि प्रेम देकर मनुष्य प्रेम पाना चाहता है। वह अपने प्रेम का समुचित प्रतिदान चाहता है। किन्तु प्रेम देकर प्रेम पाने की अभिलाषा व्यर्थ है। सच्चे प्रेम में तो देने की ही बात रहती है—

पागल रे, वह मिलता है कब उसको तो देते ही हैं सब।
—'प्रसाद'

प्रेम की संकीर्ण राह में (किसी प्रेमी का) हृदय जाकर (अपने प्रिय-पात्र के) हृदय के साथ लौट हो नहीं सकता—

रसिक वाचक! कामनाओं के चपल,
समुत्सुक, व्याकुल पगों से प्रेम की—
कृपण वीथी में विचर कर, कुशल से
कौन लौटा है हृदय को साथ ला?
—पंत

यही कारण है कि संत कबीर ने बहुत पहले ही कहा था—

प्रेम गली अति साँकरी तामें दो न समाहिं;
जब मैं था तो हरि नहीं, जब हरि तब मैं नाहिं।

इसीलिए महाकवि जयशङ्कर 'प्रसाद'जी ने प्रेम का यह आदर्श प्रस्तुत किया है कि—

प्रेम-यज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा
—'प्रसाद'

वैसा ही प्रेम सच्चा होगा, दिव्य होगा!

सौन्दर्य :

छायावाद ने पहले तो प्रकृति को ही सबसे सुन्दर माना था, किन्तु पीछे चलकर उसने अपने को सुधारा और 'मानव' को ही निखिल सृष्टि में 'सुन्दरतम' स्वीकार किया—

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर, मानव, तुम सबसे सुन्दरतम;
निर्मित सबकी तिल सुषमा से तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम!

—पंत

इस प्रकार छायावाद की सौन्दर्य-भावना का सम्बन्ध मानव के यथार्थ जीवन-वास्तव से रहा। इसीलिए 'पासी के बच्चे' भी उसे सुन्दर दीख पड़े—

सुन्दर लगती नग्न देह मोहते नयन-मन
मानव के बालक हैं ये पासी के बच्चे,

—पंत : आधुनिक कवि

और इसी यथार्थ को पकड़ सकने के कारण छायावाद की सौन्दर्य-भावना छायावाद-काव्य को महिमा-मंडित करती है। छायावाद-काव्य के पुनर्मूल्यांकन के प्रसंग में यह बात भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

सौन्दर्य चेतना का वरदान है। कवि 'प्रसाद' की पंक्तियों में—

वरदान चेतना का उज्ज्वल सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं;
जिसमे अनन्त अभिलाषा के सपने सब जगते रहते हैं।

—प्रसाद : कामायनी

सुप्रसिद्ध अंग्रेज-कवि जॉन कीट्स (John keats) के विचारानुसार तो सौन्दर्य ही सत्य है—

Beauty is truth—truth Beauty-that is all
Ye know on earth, and all ye need to know.

छायावादी कवियों में सौन्दर्य की यही भावना है। यही कारण है कि वे सौन्दर्य की खोज इतनी अधिक करते दिखाई देते हैं—

कुटिल काँटे हैं कहीं कठोर,
जटिल तरु जाल घिरे चहुँ ओर;
सुमन दल चुन-चुनकर निशि भोर,
खोजना है अजान वह छोर!

—पंत

और कीट्स के विचारों की लय में लय मिलाकर कहते है कि—

अकेली सुन्दरता कल्याणि!
सकल ऐश्वर्यों की सन्धान!!

—पंत

और जैसी कि मेरी मान्यता है, छायावाद-काव्य के पुनर्मूल्यांकन के प्रसंग में छायावाद की इस सौन्दर्य-भावना को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यहाँ तक कि डॉ॰ देवराज सरीखे छायावाद के निन्दक आलोचक को भी इस बात को मानने की विवशता का अनुभव करना पड़ा है कि "साहित्यिक दृष्टि से छायावादी काव्य की मुख्य लब्धि हिन्दी पाठकों में सौन्दर्य-दृष्टि का उन्मेष और प्रसार है। ...... और क्योंकि काव्य सृष्टि की प्रेरक शक्तियों में सौन्दर्य, मुख्य है इसलिए कहना चाहिए कि छायावाद ने पहली-पहली बार आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रकृत काव्य दृष्टि की प्रतिष्ठा की।"[1]

सुख-दुख :

सुख-दुख की दोरंगी डोरों से सजी जिन्दगी को छायावाद ने पहचाना था। जीवन में हर्ष विषाद, सुख-दुख, उल्लास-उत्ताप, संयोग-वियोग और विरह-मिलन चिर स्नेहालिङ्गन में आबद्ध हैं—

जग-जीवन में है सुख-दुख, सुख-दुख में है जग-जीवन;
है बँधे विरह-मिलन दो देकर चिर स्नेहालिङ्गन।

—पंत

ठीक ही, सुख-दुख जीवन-आत्मा के दोरंगी दुकूल की तरह हैं—

Joy and woe are woven fine
A clothing for the soul divine!

—*William Blake*

सुख-दुख, जिन्दगी में दोनों का होना आवश्यक है। दोनों की जिन्दगी में अनिवार्यता है, क्योंकि दुख के बिना सुख की अनुभूति नहीं हो सकती, और बिना सुख के केवल दुख ही दुख जिन्दगी का भार बन जाएगा। इसीलिए सुख-दुख के मधुर मिलन से जीवन परिपूर्ण हो—

सुख-दुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरन;
फिर घन में ओझल हो शशि फिर शशि में ओझल हो घन!

—पंत

कवि 'प्रसाद' भी यही आकांक्षा प्रकट करते हैं कि—

मानव जीवन-वेदी पर परिणय हो विरह-मिलन का,
सुख-दुख दोनों नाचेंगे है खेल आँख का, मन का!

किन्तु वैसा हो कहाँ पाता है! वास्तविक स्थिति तो यह है कि—

मिलन के पल केवल दो-चार!
विरह के कल्प अपार!!

—पंत

१ छायावाद का पतन—पृष्ठ १८, डॉ॰ देवराज

और—

यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरु !
अरे, जग है जग का कंकाल !!
—पंत

प्रकृति में खुशी देखकर चाह होती है सदैव खुशी की ही, लेकिन वास्तविकता यही है कि—

कुसमों के जीवन का पल हँसता ही जग में देखा,
इन म्लान मलिन अधरों पर स्थिर रही न स्थिति की रेखा !

तब कवि सुख-दुख और हर्ष-विषाद की भावनाओं से ऊपर उठकर हृदय पर आत्म-नियंत्रण करने का ही आकांक्षी होता है—

मन हो विरक्त, जीवन से अनुरक्त न हो जीवन पर !
—पंत

और—

यह जग का सुख जग को दे दे, अपने को क्या सुख, क्या दुख !
—पंत

ईश्वर और जीवात्मा :

छायावाद को ईश्वर में विश्वास है—

ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे !
—पंत

किन्तु यह बात दूसरी है कि छायावाद का ईश्वर अवतारी व्यक्ति नहीं। छायावाद ने तो उसे विराट् चेतन सत्ता के रूप में देखा है। उसके हृदय में ईश्वर की अनुभूति होती है। महादेवी और पंत की अनेक पंक्तियाँ इसी बात को प्रकट करती हैं। उस रहस्यमय ईश्वर से छायावाद का प्रगाढ़ प्रेम है, वह उसकी विराट् और महिम रूप-छवि पर मुग्ध है। इसीलिए कवि प्रसाद' ईश्वर से यह नहीं समझना जानना चाहते कि तुम कौन हो ? वे तो कहते हैं कि—

तुम हो कौन, और मैं क्या हूँ इसमें क्या है धरा सुनो
मानस-जलधि रहे चिर-चुम्बित मेरे क्षितिज ! उदार बनो !
—प्रसाद ('लहर')

और महादेवी की भी उक्ति है—

तुम मुझमें प्रिय, फिर परिचय क्या ?

क्योंकि नयनों की प्यास में, सुनहले सपनों में और मन-प्राणों में कौन सर्वत्र विद्यमान है ? वही तो !!

कौन प्यासे-लोचनों में
घुमड़ घिर झरता अपरिचित ?
स्वर्ण-स्वप्नों का चितेरा

नींद के सूने निलय में !
कौन तुम मेरे हृदय में !!

—महादेवी वर्मा

और जीवात्मा उसी विराट् का ही अंश है—

मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन !

—पंत

उसी विराट् से इसकी उत्पत्ति भी हुई है और उसी में इसका विनाश भी होता है—

सिंधु को क्या परिचय दें देव बिगड़ते बनते वीचि-विलास !
क्षुद्र हैं मेरे बुदबुद प्राण तुम्ही मे सृष्टि, तुम्ही मे नाश !!

—महादेवी वर्मा

फिर भी, विराट् चेतना का क्षुद्र अंश होते हुए भी, जीवात्मा का महत्त्व कम नहीं है—

उनसे कैसे छोटा है मेरा यह भिक्षुक जीवन,
उनमें अनंत करुणा है मुझमें असीम सूनापन !

—महादेवी वर्मा

माना, जीवात्मा क्षणभंगुर है किन्तु इससे उसकी महत्ता कम नहीं हो जाती। वह आँखों के पानी से प्रेम का दीप जला सकती है, यह सामर्थ्य क्या उस 'अक्षर-अनंत' में है ? कवयित्री प्रश्न करती है—

क्या यह दीप जलेगा तुमसे
भर हिम का पानी ?
बतलाता जा रे अभिमानी !!

—महादेवी वर्मा

जीवात्मा क्षणभंगुर है, नाशवान् है: उसका प्रेम-दीपक बुझ ही जायगा तो उसे चिन्ता क्या है—इससे तो 'निर्गुण-असीम' के ही प्रेम की पीड़ा का राज्य अंधकारमय हो जायगा—

चिन्ता क्या है हे निर्मम, बुझ जाए दीपक मेरा
हो जाएगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अँधेरा !!

—महादेवी वर्मा

जीवात्मा के महत्त्व की यह प्रतिष्ठा हिन्दी कविता में पहले-पहल छायावाद ने ही की। छायावाद के मूल्यांकन में यह बात भी ध्यातव्य है।

इसके अतिरिक्त, मार्क्सवाद, गांधीवाद, वेदान्त-दर्शन, शैव-दर्शन, बौद्ध-दर्शन, साम्यवाद तथा अरविन्दवाद आदि के कतिपय सिद्धान्तों का भी छायावाद-काव्य के विचार-तत्त्वों में समावेश हुआ है। इनकी चर्चा अन्यत्र अभीष्ट है।

———

छायावाद और अंग्रेजी कविता का रोमान्टिक पुनर्जागरण

छायायुग की रचनाओं एवं अंग्रेजी-साहित्य के रोमान्टिक पुनर्जागरण-काल रचनाओं में कतिपय ऐसी स्पष्ट समानताएँ हैं, जो एक सामान्य साहित्यिक अध्येता की दृष्टि से भी प्रच्छन्न नहीं रह पातीं। जिस प्रकार द्विवेदीयुग की इतिवृत्तात्मक एवं स्थूल काव्य-प्रवृत्ति के प्रतिक्रिया-स्वरूप हिन्दी-साहित्य में छायावाद का आविर्भाव हुआ, उसी भाँति अठारहवीं शताब्दी के ऑगस्टन युग की बंधनावृत कविता-धारा, जो काल-क्रम से दूषित एवं मृत हो चुकी थी, के विद्रोह में ही रोमान्टिक काव्य-स्रोत निःसृत हुआ। दोनों युगों की काव्य-प्रवृत्तियाँ बहुत कुछ समान हैं—कल्पना की अतिशयता भाव-पक्ष की प्रधानता, 'सुन्दरम्' का विशेष आग्रह, प्रकृति-निरीक्षण की बहुलता, आश्चर्य एवं जिज्ञासा की भावनाओं की उपस्थिति आदि कुछ ऐसे काव्य-लक्षण हैं जो दोनों युगों की काव्य-रचनाओं में परिलक्षित हैं। भाषा की संगीतात्मकता, प्रभविष्णुता, लाक्षणिकता तथा कोमलता दोनों युगों की काव्य-भाषाओं के प्रमुख गुण हैं। किन्तु ये सारी समानताएँ सतह पर की हैं। इन सीमाओं से आगे जाकर इन युगद्वय के उद्भव के सामाजिक, राजनैतिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक कारणों, विविध प्रभावों आदि का तुलनात्मक विश्लेषण, युग-मान्यताओं एवं प्रवृत्तियों तथा काव्य-गुणों का तौलनिक अध्ययन इस निबंध का लक्ष्य होगा।

\+ \+ \+

छायायुग और रोमान्टिक पुनर्जागरण-काल को हम आज निश्चयपूर्वक रचनात्मक-युग (creative age) कह सकते हैं। अंग्रेजी और हिन्दी के साहित्यिक इतिहास के इन काल-खंडों में लेखकों एवं कवियों में निर्माणकारी प्रवृत्ति का अधिकाधिक उन्मेष लक्षित होता है। हम यह कदापि नहीं कह सकते कि इन युगों में आलोचनात्मक प्रवृत्ति शीर्षस्थ थी, मनुष्य के रागात्मक भावोन्मेषों के ऊपर उसकी बौद्धिक विचारप्रवणता का स्थान था। इन युगों के साहित्यकारों का विश्वास था कि मनुष्य की अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति उसकी आलोचनात्मक प्रवृत्ति से अधिक महत्वपूर्ण है; वे रचनात्मक प्रतिभा की महत्ता में अपने विश्वासों को सहज ही आरोपित करते थे। मैथ्यू ऑर्नल्ड ने ऐसी धारणा के भीतर काम करनेवाली वृत्तियों का विश्लेषण करते हुए यह बताया है कि मनुष्य की आन्तरिक इच्छा आनन्द लाभ करने की होती है, जिसके पूर्त्यर्थ वह रचनात्मक कार्य में लीन होता है, जिसके सम्पादन-क्रम में, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है, मनुष्य अत्यधिक आह्लादित होता है। आर्नल्ड ने कहा है कि—

"It is undeniable that the exerecise of a creative power that a free creative activity, is the true function of man; it is

proved to be so by man's finding in it his true happiness" [1]

अंग्रेजी-साहित्य के रोमान्टिक युग मे उपर्युक्त धारणा का प्रभाव अत्यधिक था। छायायुग के साहित्यकारों के बीच भी कुछ इसी प्रकार की विचार-धारा अपना स्थान बना चुकी थी। किन्तु, अंग्रेज़ी के रोमान्टिक कवियों ने, विशेष रूप से वर्डस्वर्थ ने, मनुष्य की आलोचनात्मक प्रवृत्ति की, नग्न शब्दों में, पर्याप्त भर्त्सना की है; छायायुग के कवियों ने आलोचना को उतना हेय नहीं बनाया है। वर्डस्वर्थ ने यह बहुत शक्तिशाली ढग से कहा है कि मनुष्य की रचनात्मक प्रतिभा अधिक श्रेयस्कर है, और आलोचनात्मक विषयो के लेखन में वह अपना समय वृथा ही बर्बाद करता है। वर्डस्वर्थ के सम्वादो के एक विश्वसनीय प्रेषक ने यह लिखा है कि,—'Wordsworth holds the critical power very low, infinitely lower than the inventive; and he said to day that if the quantity of time consumed in writing critiques on the works of others were given to original composition, of what ever kind it might be, it would be much better employed ......" [2]

इतना तो अवश्य कहा जा सकता है मानव की रचनात्मक प्रतिभा का महत्त्व बहुत अधिक है, और उसका प्रयोग अधिक फलदायी एवं सुखद है; किन्तु संदिग्ध यह धारण हो जाती है कि उसकी आलोचनात्मक शक्ति का कोई मूल्य नहीं; विश्लेषणात्मक निबंधो की सृष्टि करना अपने समय का दुरुपयोग है। विश्व के साहित्यिक इतिहासो पर दृष्टि-निक्षेप करने से इस तथ्य का स्पष्टीकरण हुए बिना नहीं रहता कि रचनात्मक युगो का, सच्चे अर्थ में, बहुत कम आविर्भाव हो सका है। प्रश्न किया जा सकता है, आखिर ऐसी बात क्यों होती है ? इस प्रश्न का उत्तर उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना यह प्रश्न, और इनके क्रम मे हमें आलोचना के वास्तविक कार्य को समझना होगा।

रचनात्मक प्रतिभा-सम्पन्न कवि या लेखक को अपनी रचनाओं के लिए अपने प्रवृत्त्यनुकूल पदार्थों एवं विषयों की आवश्यकता होती है, जिनका वह उपयोग कर सके। प्रत्येक युग में सतत परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप ही युग की माँगें बदलती है, कवियो एवं लेखकों के कला के प्रति नवीन दृष्टिकोण निर्धारित होते है तथा तदनुरूप रचनाओ के बाह्य एवं आंतरिक स्वरूपों मे विविध परिवर्तनों का समावेश होता है। प्रत्येक युग की समस्याएँ भिन्न होती है, रुचि एवं संस्कार पृथक् होते है, आकांक्षाएँ एवं आवश्यकताएँ अलग-अलग होती हैं। प्रत्येक युग में कलाकारो को कला के एक ही रूप मे विश्वास नही

---

१. "The function of criticism at the present time: Mathew Arnold.

२. An extract quoted in Mathew Arno'd's essay 'The function of criticism at the present time" collected in "essays in criticism" page 2.

रहता; बल्कि प्रसिद्ध मनीषी टी० एस० इलियट के मतानुसार"·········each generation, like each individual, brings to the contemplation of art its own caregories of appreciation, makes its own demands upon art and has its own uses of art."[१] किन्तु इस रुचि-परिवर्तन की पृष्ठभूमि में कौन-कौन-सी प्रेरक शक्तियाँ कार्यरत रहती हैं, इसका विश्लेषण आवश्यक है। और सभी कारणों को कुछ समय के लिए छोड़कर केवल साहित्यिक कारण का अध्ययन ही, इस स्थल पर, मेरा अभीष्ट है।

द्विवेदी-युग की काव्य-मान्यताओं के विरुद्ध छायावादियों ने विद्रोह का स्वर उठाया: ऑगस्टन युग की कविता-प्रणाली का तिरस्कार रोमान्टिक पुनर्जागरण-काल के कवियों ने किया। किन्तु इस प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति को क्या सर्वप्रथम कविता में वाणी मिली, क्या इस विद्रोहात्मक स्वर का प्रसार काव्य के द्वारा रचनात्मक प्रतिभाओं के बीच पहले पहल हो सका? प्रश्न विचारणीय है। टॉमसन, कोलिन्स तथा जैसा कि डॉ० एफ़० आर० लीविस ने अपने 'रीमैलुएमन" में बताया है, पोप की कविताओं में भी रोमान्टिक पुनर्जागरण-काल की कविताओं के कतिपय लक्षणों का क्षणिक दर्शन हमें हो सकता है, किन्तु ब्लेक के कुछ आलोचनात्मक निबंधों के पश्चात् ही कविता की इस नवीन प्रवृत्ति का अंकुर अधिक स्पष्ट रूप में परिलक्षित हो सका और कोलरिज तथा वर्ड्सवर्थ के आलोचनात्मक निबंधों के पश्चात् ही रोमान्टिक काव्य-धारा को शक्तिशाली बहाव का बल मिला, वह नव-नवोन्मेष प्रतिभासम्पन्न कवियों की साधनाओं से संवलित हो सका। हिन्दी-साहित्य में भी मुकुटधर पांडेय, रामनरेश त्रिपाठी आदि की कविताओं में छायावादी कविताओं के कुछ लक्षण यत्र-तत्र दृष्टिगोचर हो जाते हैं, किन्तु उस युग के कतिपय आलोचकों की रचनाओं द्वारा इस नूतन काव्य-शैली को शैशवावस्था में उठ खड़े होने की शक्ति प्राप्त हुई और प्रसाद तथा पन्त के निबंधों, विशेषकर 'पल्लव' की भूमिका, आदि के प्रभावस्वरूप छायावाद का रूप पूर्णतः स्पष्ट हो सका और वह एक विशिष्ट काव्य-शैली के रूप में अपने को प्रस्थापित करने एवं युग-मान्यता प्राप्त करने में समर्थ हो सका। अतः इतना स्पष्ट है कि प्रत्येक रचनात्मक युग के पूर्व एक आलोचनात्मक युग का आविर्भाव अवश्य हो जाया करता है। मैथ्यू आर्नल्ड ने बहुत सत्य कहा है—"criticism first; a time of true creative activity, perhaps—which, as I have said, must inevitably be preceded amongst us by a time of criticism—here after, when criticism has done its work."[२]

---

१. Selected Prose: T. S. Eliot, Penguine series: Page 17.

२. The function of criticism at the Present time. Mathew Arnold.

उपर्युक्त साहित्यिक गति-विधि, आलोचनात्मक युग के पश्चात् रचनात्मक युग का आविर्भाव, की पृष्ठभूमि में किन कारणों का हाथ रहता है-- इस प्रश्न का समाधान भी आवश्यक है। आलोचना, साहित्यिक चिन्तकों के हाथ मे, एक ऐसा अस्त्र है जिसके सहारे, यदि वे एक समालोचक के कार्य एवं दायित्व को पूर्णतः निभाने में सक्षम हों, वे रूढ़िगत विचारों को खंडित कर नवीन मान्यताओं की स्थापना करने में सफल हो पाते है। समालोचना, मैथ्यू ऑर्नल्ड के अनुसार, नवीन विचार धाराएँ (currents of new ideas) तैयार करने में समर्थ हो पाती है। इसका कार्य टी० एस० इलियट के अनुसार निम्न-लिखित है—" Criticism must always profess an end in view, which, roughly speaking, appears to be the elucidation of works of art and the correction of taste. "[१]

(ऊपर की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि आलोचना के अनेकानेक महत्त्वपूर्ण दायित्वो मे रुचि-परिमार्जन भी एक है। समालोचक एक युग की सकुचित रुचियो का परिष्कार करता है, उनमें नवीन दृष्टि-बिन्दुओं की प्रस्थापना करता है। यदि एक युग में इतिवृत्तात्मकता, स्थूलता, बाह्य-बंधनों का आधिक्य रहता है तो वह काल्पनिकता सूक्ष्मता एवं स्वच्छंदता के सिद्धान्तों का प्रचार कर, दोनो के बीच एक सम्यक् संतुलन लाने की चेष्टा करता है। समालोचक के इन प्रयासों के परिणाम-स्वरूप नाना नवीन विषयों के भंडार का द्वार खुल जाता है, जिससे नवीन विचार-धारा से प्रभावित कवि अपने मनोवांछित ग्रहणीय उपदानों एवं सम्पत्तियों का आकलन कर उन्हें अपनी रचनाओं में प्रयुक्त करने में सफलता प्राप्त करते हैं। स्वभावतः रूढ़िगत काव्य-धारा मे एक आन्दोलन का श्रीगणेश होता है, और काव्य-क्षेत्र में एक नवीन युग का प्रादुर्भाव।

इसी स्थल पर रुक कर हमें रोमान्टिक युग तथा छायावादी युग की आलोचनाओं मे प्रतिष्ठित काव्य-लक्षणों पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है, क्योंकि यह अब स्पष्टतः सिद्ध है कि इन आलोचनात्मक धारणाओं का बहुत गहरा प्रभाव इन युगों की काव्य-रचनाओं पर अंकित हुआ है।

रोमान्टिक युग के विश्रुत कवि वर्डस्वर्थ ने कविता की परिभाषा देते हुए एक स्थान पर कहा है—"Poetry is the spontaneous overflow of powerful emotions recollected in tranquitily."[२] इस परिभाषा के विश्लेषणात्मक अध्ययन से हमें तीन बातों की शिक्षा होती है। कविता मे निर्बंध प्रवाह की आवश्यकता है। कवि द्वारा संकेतित काव्य के इस लक्षण की ऐतिहासिक महत्ता अत्यधिक है। अठारहवीं शताब्दी के काव्य मे बाह्य बंधनों की प्रचुरता थी जिसके भीतर कविता को जीवन-शक्ति का ह्रास हो रहा था। वर्डस्वर्थ ने स्वभावतः काव्य की बंधनहीनता का पक्ष ग्रहण किया। काव्य का दूसरा लक्षण, कवि-आलोचक के

१. Selected prose. T. S. Eliot penguine series. पृष्ठ १८.
२. Preface to lyrical Ballads : wordsworth.

अनुसार, तीव्र भावों को गहनता है। भावनाओं का सम्बन्ध मानव की बुद्धि से अधिक उसके हृदय से है। अत: हृदय की आत्मनिष्ठ (subjective) रागात्मक भावनाओं की अभिव्यंजना ही कविता का लक्ष्य बनी। शान्ति के क्षणों में, जैसा कि डा० एफ० आर० लीविस ने बताया है, भावनाओं के आकलन करने की प्रचेष्टा में मानव का बौद्धिक यंत्र भी सचेत हो जाता है।[1] परिणाम यह होता है कि कविताओं में केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति ही न होकर भावना-चिंतन-मिश्रित रागों का प्रकाश होता है। इसी कारण रोमांटिक युग की कविताओं में हमें दार्शनिक गहराई का भी दर्शन होता है जो तद्युगीन कविता की तीसरी मुख्य विशेषता है। इस प्रकार यह परिलक्षित है कि वर्डस्वर्थ ने काव्य-सम्बंधी जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया उसका प्रभाव रोमान्टिक युग की अधिकांश रचनाओं पर पड़ा और इसके स्पष्ट रूप-निर्धारण में भी सहायक हुआ।

छायावाद के उद्भव के पीछे भी तत्कालीन आलोचकों की काव्य-धारणाओं की प्रेरणा कार्य कर रही थी। उस युग के समालोचक यह समझ रहे थे कि ठोस पदार्थों के बाह्य रूपों के स्थूल वर्णन पर आधारित कविता के आधिक्य की प्रतिक्रिया भावना-प्रधान, सूक्ष्म वर्णन-संवलित काव्य के रूप में अवश्य ही होती है। तत्कालीन आलोचकों की यह धारणा श्री हरिऔध जी के निम्नलिखित शब्दों में स्पष्टत: मुखरित हो उठी है—"जब वर्णनात्मक अथवा वस्तुवृत्ति प्रधान रचनाओं का बाहुल्य हो जाता है तो उसकी प्रतिक्रिया भावनात्मक अथवा भाव-प्रधान रचनाओं के द्वारा हुए बिना नहीं रहती।"[2]

आचार्य द्विवेदी जी आत्मानुभूतिमय कविताओं की प्रशस्ति करते दीख पड़ते हैं। यह ठीक है कि उन्हीं के प्रभाव स्वरूप द्विवेदीयुग की कविता में इतिवृत्तात्मकता की बहुलता थी, किन्तु प्रो० सुधीन्द्र के अनुसार "आचार्य द्विवेदी इस स्वानुभूतिमय कविता को प्रशस्ति न दे सके—यह भ्रान्ति यहाँ नहीं होनी चाहिए। वे कालीदास और रवीन्द्रनाथ के भाव-माधुर्य के प्रशंसक थे, पाश्चात्य, पौर्वात्य आत्मगत कविता के रस-मर्मज्ञ थे।"[3] अत: हमें यह ज्ञात होता है कि द्विवेदी युगीन काव्य की वस्तु-प्रधानता, स्थूलजीवन का अंकन तथा आलेखन, बहिर्जगत के बाह्यकार का वर्णन आदि प्रवृत्तियों के विरुद्ध प्रतिवर्त्तन के रूप में ही छायायुग के कवियों का आविर्भाव हुआ। छायावादी कविता की इन प्रवृत्तियों का अग्रिम कथन (Prophecy) हमें 'सरस्वती' में प्रकाशित एक निबंध के विद्वान आलोचक के इन शब्दों में प्राप्त होता है—"बाह्य प्रकृति के बाद मनुष्य अपने अन्तर्जगत की ओर दृष्टिपात करता है। तब साहित्य में कविता का रूप परिवर्तित हो जाता है। कविता का लक्ष्य 'मनुष्य' हो जाता है। संसार से दृष्टि हटाकर कवि व्यक्ति पर ध्यान देता है। तब उसे

---

१. Revaluation : F.R.Lavis.

२. "हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास" : 'हरिऔध' द्वितीय संस्करण

३. हिन्दी कविता में युगान्तर : प्रो० सुधीन्द्र पृ. ३५८.

आत्मा का रहस्य ज्ञात होता है। वह सान्त में अनन्त का दर्शन करता है और भौतिक पिण्ड में असीम ज्योति का आभास पाता है। भविष्य कवि का लक्ष्य इधर ही होगा।"[१]

अतः यह स्पष्ट है कि छायायुग के आविर्भाव के कुछ समय पूर्व तत्कालीन कतिपय साहित्यिक विचारकों ने ऐसी धारणाएँ एवं मान्यताओं की प्रस्थापना की थी जो इस युग के कवियों के लिए प्रेरणादायक हुईं, जिनने उनके लिए नए उपादानों के भाडार के द्वार खोल दिए। उन लोगों ने शिक्षा देने की प्रवृत्ति (didacticism) तथा दार्शनिक विचारों को गद्यवत् पद्य में व्याख्या करने के कार्य को सच्चे कवि का कार्य नहीं घोषित किया उन लोगों ने जोरदार शब्दों में यह मत प्रेषित किया कि "कवि का काम न तो शिक्षा देना है और न दार्शनिक तत्वों की व्याख्या करना है। उसके हृदय से तो वह गान उद्‌गत होना चाहिए जिससे समस्त मानव-जाति की हृत्तन्त्री में विश्व-वेदना का स्वर बज उठे।"[२] इस प्रकार कवि कर्म की इस व्याख्या ने तथा काव्य गुणों के इस नवीन आदर्श ने रचनात्मक प्रतिभा-सबलित कवियों के बीच एक आन्दोलन का प्रारम्भ किया जिसका परिणाम छायायुग का आविर्भाव है।

अब हम यह निःसंकोच स्वीकार कर सकते हैं कि छायावादीयुग एवं अंग्रेजी रोमान्टिक कविता का पुनर्जागरण-युग का आविर्भाव आलोचनात्मक युगों के पश्चात् ही हुआ। अंग्रेजी साहित्य का ऑगस्टनयुग, जैसा कि सेन्टस्बरी ने कहा है, प्रधानतः आलोचनात्मक ही था और इसके अन्तिम दिनों में काव्य संबन्धी ऐसी धारणाएँ प्रतिपादित हो चुकी थीं जिनका स्वाभाविक प्रतिफलन वहाँ की कविता में रोमान्टिक पुनर्जागरण का उन्मेष था।[३] ठीक इसी भाँति छायावाद का आविर्भाव भी द्विवेदी-युग के पश्चात् हुआ जो मुख्यतः ऐसा कहा जा सकता है, आलोचनात्मक विचार-धाराओं के विकास का ही युग था। प्रो० शिवनन्दनप्रसाद जी ने बहुत उचित कहा है कि "...... पुस्तक रूप में समालोचना का आरंभ पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ही किया। अतः विकास-युग के प्रवर्तक ये ही माने जा सकते हैं। सरस्वती के द्वारा उन्होंने भाषा का स्वरूप परिमार्जन करने और उसे व्याकरण सम्मत बनाने के अतिरिक्त आलोचना को भी यथेष्ट प्रगति दी।"[४] इस युग के अन्त में भी काव्य-सिद्धान्तों में अनेकानेक परिवर्त्तन समाविष्ट हुए; आलोचकों ने, जैसाकि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है, व्यष्टिगत काल्पनिकता, रागात्मक भावोद्रेकों एवं स्वानुभूति पर जोर दिया। फलतः हिन्दी-कविता में छायावाद का आविर्भाव हुआ जिसका स्थान हिन्दी-साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण एवं गौरवास्पद है। यह ठीक है कि आलोचकों के एक दल ने, जो गतानुगतिकता के पोषक एवं प्रचारक थे, प्रारम्भ में इन कवियों के खिलाफ आवाजें उठाईं। डॉ० जॉनसन आदि ने रोमान्टिक कवियों की भर्त्सना की; द्विवेदी

१. हिंदी कविता का भविष्य ; सम्पादकीय ; १९२०, सरस्वती

२. वही

३. The peace of the Augustan age : Saintsbury.

४. काव्यालोचन के सिद्धान्त ; प्रो० शिवनन्दनप्रसाद, एम० ए० साहित्यरत्न, पृ० ६.

युगीन कतिपय आलोचकों ने भी छायावादी कवियों का प्रबल विरोध किया। किन्तु इस नवीन काव्य-धाराओं में एक ऐसी उद्दाम शक्ति अन्तर्निहित अवश्य थी कि इंगलैंड और भारतवर्ष दोनों देशों में वे मार्गावरुद्ध करने की चेष्टा करनेवाली समस्त विरोधी भावनाओं की बाधाओं को ध्वस्त करती हुई नए उत्साह एवं सुरम्यता के साथ प्रवाहित हुईं।

× × ×

ऊपर के विवेचन में छायावाद और रोमान्टिक पुनर्जागरण के आविर्भाव के साहित्यिक कारणों में से कुछ का दिग्दर्शन कराया गया है। अब हमारा ध्येय उन सामाजिक एवं आर्थिक कारणों का अध्ययन होगा जिनकी प्रेरणाओं से प्रभावित होकर दोनों के साहित्यिक इतिहासों में इस प्रकार की विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया का जन्म हुआ। किसी देश की अर्थ-व्यवस्था में जब परिवर्तन आने लगते हैं, तो उससे वहाँ का सामाजिक जीवन अछूता नहीं रहता। एक देश की आर्थिक व्यवस्था के क्रमिक परिवर्त्तन के साथ-साथ वहाँ की सामाजिक चेतना एवं रुचियों में भी फेर-बदल होते है जिनका बहुत गहरा प्रभाव वहाँ के साहित्य पर अंकित होता है। इसी कारण केवल साहित्यिक प्रेरणाओं और प्रवृत्तियों के विश्लेषण की संकुचित सीमा-रेखा में सिमटकर बँधे रहने से ही हम किसी नवीन काव्य-धारा का यथार्थ एवं उचित मूल्यांकन करने में कदापि समर्थ नहीं हो पाते। जैसा कि श्री आर्थर कॉम्पटन रिकेट का कहना है, "Literature is viewed not as a mere academic product, but as one expression of the many-sided activities of national growuth "[1] साहित्य राष्ट्रीय विकास के बहुमुखी कार्यों का अभिव्यंजन है; अतएव एक राष्ट्र के आर्थिक एवं सामाजिक स्थितियों के परिवर्त्तन एवं विकास का विवेचन भी एक साहित्यिक समालोचक के दृष्टि-विस्तार से ओझल नहीं होना चाहिए।

रोमान्टिक पुनर्जागरण का आविर्भाव अंग्रेजी-साहित्य के इतिहास में अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में, लगभग सन् १७८० ई० के करीब, होता है। छायावाद का उद्भव बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में, प्रथम विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने के पूर्व ही, हो जाता है। अतः इन दो काव्य-युगों के बीच लगभग सवा सौ वर्षों की एक लम्बी अवधि का दुराव है। किन्तु, एक सामान्य पाठक को यह जानकर कदाचित् आश्चर्य होगा, कि इन दोनों युगों की प्रेरक सामाजिक एवं आर्थिक गतिविधियों में पर्याप्त समानताएँ परिलक्षित होती हैं। प्रश्न उठ सकता है, और वह अत्यन्त स्वाभाविक होगा, कि आखिर इतनी लम्बी अवधि की खाई के रहने के पश्चात् भी आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं एवं गतिविधियों में समानताएँ किस प्रकार आ गई ? इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देने के क्रम में हमें इस तथ्य को सर्वदा ध्यानस्थ रखना होगा कि भारत, परतन्त्रता की जंजीरों में बद्ध रहने के परिणामस्वरूप, पाश्चात्य देशों की तुलना में, विकासशील एवं प्रगतिशील नहीं रह सका है। इस कारण जिस प्रकार की आर्थिक एवं सामाजिक क्रान्तियाँ इंगलैंड आदि प्रगतिशील

---

१. A History of English Literature : Preface, Compton Ricket, Page vii

पाश्चात्य देशों में वर्षों पूर्व हो चुकी होती है, उनका आविर्भाव भारत मे बहुत बाद में होता है। फलत:, जैसा कि प्रो० शिवनन्दनप्रसाद ने ठीक ही कहा है, अँग्रेजी रोमान्टिक पुनर्जागरण-काल के कवियों और छायावादी कवियों के निर्माण मे "भिन्नकालिक पर समान परिस्थितियों का योग रहा है।"[1] यहाँ उन्ही परिस्थितियों का संक्षिप्त विश्लेषण हमारा अभीष्ट है।

इंगलैंड के साहित्यिक इतिहास मे रोमान्टिक पुनर्जागरण के उन्मेष की पृष्ठभूमि में वहाँ की औद्योगिक क्रान्ति का पर्याप्त महत्त्व है। इस क्रान्ति के फलस्वरूप वहाँ की आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं मे अनेकानेक महत्त्वपूर्ण उलट-फेर हुए जिसके कारण वहाँ की जनता के विचारों एवं रुचियों मे भी भिन्नता आ गई है। ब्रिटेन में इस क्रान्ति का तीव्र रूप अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में ही पुष्ट रूप मे दृष्टिगत होता है जिसका अमिट प्रभाव रोमान्टिक कवियों पर पड़ा।

इंगलैंड में औद्योगिक क्रान्ति के उद्भव का सर्वप्रमुख कारण नवीन वैज्ञानिक अनुसन्धानों का व्यापक प्रसार था। अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक ही इंगलैंड के वैज्ञानिकों ने नाना प्रकार के उपादेय यंत्रों के आविष्कार कर लिये थे। आवागमन के नूतन साधनों, भाप-चालित यन्त्रों एवं बड़े-बड़े मशीनों, तथा खानो एवं नहरों की खुदाई के कारण इंगलैंड के उद्योग-धन्धों के विकास के लिए उचित वातावरण एवं स्थिति का निर्माण हो चुका था। इसके उपरान्त उस देश की भौगोलिक सुविधाएँ इतनी अधिक थीं, सामुद्रिक किनारों के कटे रहने के फलस्वरूप व्यापार की प्रगति की इतनी सम्भावनाएँ थी, खनिज पदार्थों का इतना आधिक्य था कि वहाँ औद्योगिक क्रान्ति के विकास के लगभग सम्पूर्ण साधन वर्त्तमान थे। किन्तु राजनैतिक बंधनों का इतना अधिक बाहुल्य था, विविध कानूनों के इतने बड़े व्यवधान थे कि बिना उनकी समाप्ति के किसी प्रकार की आर्थिक क्रान्ति का इंगलैंड की मिट्टी पर जन्म ले सकना ही असम्भव था। १७ वीं शताब्दी की व्यापारिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप उत्थित सामंतवादी समाज-व्यवस्था का अवशेष बहुत दिनों तक इंगलैंड मे चलता रहा और राजा अपने कृपापात्रों को विशेष वस्तुओं के व्यापार एवं क्रय-विक्रय का एकाधिकार समर्पित करते रहे। इन आर्थिक एवं सामाजिक परम्पराओं के विरुद्ध १७ वीं शताब्दी के अन्त में एक व्यापक आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसके कारण सामन्तवादी सामाजिक व्यवस्था का अन्त हो गया और पूँजीपतियों और उद्योगपतियों की शक्ति काफी सम्कुचित हो गई। एस० लीले० की यह धारणा सर्वथा सत्य है कि इंगलैंड में सामन्ती प्रतिबन्धों की परिसमाप्ति के पश्चात् उद्योगपतियों का समाज मे शीर्ष स्थान हो गया जिसके फलत: उद्योग-धन्धों के विकास एवं प्रसार में अभूतपूर्व प्रगतियाँ हुई।[2]

सत्ताप्राप्त होने के कारण इंगलैंड के व्यापारियों ने सर्वप्रथम पूँजी को अधिक से अधिक मात्रा मे जमा करना ही अपना ध्येय बनाया। औपनिवेशिक साम्राज्य के विस्तार

१. काव्य सुमित्रानन्दन पंत और उनका प्रतिनिधिकाव्य : प्रो० शिवनन्दनप्रसाद, पृष्ठ २४.
२. Men, Machines and History : S. Lilley, पृ० ७३

द्वारा अपने व्यापारिक क्षेत्र को बढ़ा कर तथा विशेषकर सन् १७५७ के पश्चात् भारत की लूट से भी वे पूँजी बटोरने मे संलग्न रहे। इन उद्योगपति व्यापारियों की इस गतिविधि मे ही लक्षित कर ए० एल० मार्टन ने इस मत की स्थापना की है कि सन् १६८८ और सन १७५० के मध्य के वास्तविक इतिहास का यथार्थ तथ्य पूँजी का एकत्रीकरण है।[१] पूँजी-संग्रह करने की इस प्रवृत्ति में १८वीं शताब्दी के विविध युद्धों ने भी पर्याप्त योग-दान दिया। इन युद्धों में स्थायी सेना की नियुक्ति होती थी जिनके लिए बराबर ब्रिटिश मालों की आवश्यकता पडती थी। युद्ध सामग्रियो, वस्त्र, रसद आदि वस्तुओं की माँग अधिक मात्रा में होने लगी। मित्र-राज्यों में भी इंगलैंड में उत्पादित वस्तुओं का ही निर्यात होता था। इसके उपरान्त इंगलैंड के कुछ पूँजीपतियों ने युद्ध की ठीकेदारियाँ भी ली जिनमें उन्हें बहुत अधिक लाभ हुआ। इन युद्धों के परिणाम-स्वरूप ब्रिटेन को एक बहुत बड़ा उपनिवेश भी प्राप्त हुआ जहाँ से कच्चे मालों का आयात बहुत बड़ी मात्रा में सम्भव था और वे ही उपनिवेश ब्रिटेन के तैयार मालों finished goods) के लिए एक व्यापक बाजार भी उपस्थित करते थे। इस प्रकार इंगलैंड के व्यापारियों के लिए अधिक-से-अधिक मुनाफा कमाने का अवसर सहज ही वर्त्तमान था और वे भी इस अनुकूल परिस्थिति से पर्याप्त लाभन्वित होने के लिए पूर्णत: प्रयत्नशील थे।

इसी समय कृषि-क्षेत्र में भी आमूल परिवर्त्तन हुए। १८वीं शताब्दी मे लोगों के लिए जीविकोपार्जन का प्रमुख साधन कृषि था और इन व्यापक परिवर्त्तनों के परिणाम स्वरूप ग्रामीण आबादी में, जैसा की श्री राइकर साहब का विचार है, जमीनवालों की संख्या में वृद्धि हुई और औद्योगिक क्रान्ति के उदभव के लिए अनुकूल अवस्था का निर्माण हुआ।[२] इस प्रकार की कृषि-क्रान्ति का परिणाम यह हुआ कि इंगलैंड में परती जमीनों को भी जोतने एवं खाद के उपयोग की परम्परा प्रारम्भित हुई। इसी समय टाउनशेन्ड नामक एक धनी एवं समर्थ कृषक ने फसल-परिक्रमण (Rotation of Crops) की पद्धति का प्रयोग कृषि-कार्य में किया। परिणाम यह हुआ कि खेत कभी खाली नहीं रह पाते थे। श्री रामशरण शर्मा ने बताया है कि, "खेत के कभी खाली नहीं रहने से पैदावार बहुत बढ़ गई।........ जहाँ अभी तक फी एकड़ ६ बुशल गेहूँ होता था, वहाँ अब फी एकड़ २४ बुशल होने लगे।"[३] रोमान्टिक कविता के पुनर्जागरण की पृष्ठ-भूमि में इन्हीं औद्योगिक एवं कृषि-परिवर्त्तनों तथा क्रान्तियों का भी प्रभाव था। यहीं पर रुक कर छायावाद के उद्भव के पीछे प्रेरणा-रूप मे काम करनेवाले आर्थिक एव सामाजिक परिवर्त्तनों पर भी दृष्टि-निक्षेप करना अपेक्षित है।

भारतवर्ष में अंग्रेजों के आगमन के कारण यहाँ की प्राचीन आर्थिक-व्यवस्था में बहुत से उथल-पुथल हुए। भारत में पदार्पण एवं अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् अंग्रेजों ने

१. A People's History of England : A. L. Morton. पृ० ३१०
२. T. W. A Riker: History of Modern Europe : पृ० ३३१
३. विश्व-इतिहास की भूमिका : द्वितीय भाग : श्री रामशरण शर्मा : पृष्ठ ६५

अपनी कूटनीति एवं विलक्षण राजनैतिक बुद्धि के सहारे यहाँ की जनता को अपने अधीन रखने के बहुत से सफल प्रयत्न किए। सर्वप्रथम यहाँ के गृह-उद्योगों पर ही उन लोगों ने आघात किया। सच्ची बात तो यह थी कि अंग्रेजों की आकांक्षा भारतीयों को सभी प्रकार से गुलाम बना लेने की थी और इसी मन्तव्य के पूर्त्यर्थ वे किसी भी रीति का प्रयोग करने में नहीं हिचकते थे। भारतवासियों को सभी प्रकार से लूट कर वे अपनी जेब भरने की चेष्टा में ही सर्वत्र संलग्न रहते थे। उनका विश्वास था कि भारत की आर्थिक हीनावस्था उसे बहुत दिनों तक परतंत्र बनाए रखने में सहायक होगी। इसी कारण भारतीयों को दरिद्र बना कर वे अपने लक्ष्य की पूर्ति करने में प्रयत्नशील थे। वे भारतीयों को उन पदों पर भी नहीं जाने देते थे जहाँ निम्नवर्गीय एवं न्यून बुद्धि वाले अंग्रेज नियुक्त होते थे। भारतीयों को परतंत्र रखने की अंग्रेजों की इस नीति को श्री शोर ने बहुत स्पष्टता के साथ निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है :—

"The fundamental principle of the English has been to make the whole nation *subservient* in every possible way to the interests and benifits of themselves.. .. .. The Indians have been excluded from every honour, dignity of office to which the lowest Englishman could be prevalted upon to accept,[1]"

अंग्रेजों की इस नीति के प्रभाव उनके व्यवहारों में स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। कृषि-नीति में इसका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अंग्रेजों ने भारतीय किसानों पर तरह-तरह के कर लगाए। भूमिकर और आमदनी कर इतना अधिक था कि उनको चुकाने के पश्चात् भारतीय कृषकों को खाने-पीने तक की भी पर्याप्त सामग्री नहीं बच पाती थी। श्री आर० सी० दत्त ने बताया है कि—"It is estimated from official records that one fifth of the Indian rural population, 40,000,000 or between 40,000,000 and 50,000,000 of people are in sufficiently fed even in years of good harvest."[2]

अंग्रेजों की व्यापारिक नीति भी भारतवर्ष के गृह-उद्योगों के सर्वथा प्रतिकूल थी; बल्कि कहना तो यह चाहिए कि उसी के फलस्वरूप यहाँ के प्राचीन गृह-उद्योगों की समाप्ति हुई, यहाँ की परम्परागत कलाओं का विनाश हुआ। यहाँ के सौदागरों पर बहुत से राजनैतिक अन्याय किए गए, उन्हे विविध कुचक्रों द्वारा कुचला गया और भारत से निर्यात होने वाली चीजों पर अत्यधिक कर लगाकर भारत के व्यापार को रोकने के बहुत प्रयत्न किए गए। इन स्वार्थमयी नीतियों के फलस्वरूप भारत के गृह-उद्योग ध्वस्त हो गए और यहाँ के कारीगर बेकार होकर बैठ गए। इन परिस्थितियों से बाध्य होकर भारतवर्ष को कच्चे मालों का ही निर्यात करना पड़ा जिससे भारत की आर्थिक दशा और भी हीनतर

1. Notes on Indian Affairs, vol. II : Honourable E. J. Shore, पृ० २१६
2. England and India : R. C. Dutta, पृ० १२४

होती गई। इस संबंध में श्रीदत्त ने बहुत ही सत्य कहा है कि—"During a century and a half the commercial policy of the British rulers of India has been determined, not by the interests of Indian manufacturers, but by those of British manufacturers.........India's exports now are mostly raw products.....largely the food of the people. Manufacturing industry as a source of national income has been narrowed"[1]

अतः इतना स्पष्ट है कि अँग्रेजों ने भारतवर्ष को बहुत अधिक चूसा और ऐसी समस्त क्रूर नीतियों एवं शोषण-पद्धतियों का सहारा लिया जिनसे भारत की आर्थिक दशा हीन से हीनतर होती जाए। भारतवासियों को इस तरह लूटा गया कि वे आर्थिक विपन्नावस्था में रहते-रहते निराश हो चुके थे। जितना शोषण भारतवर्ष का हुआ था, उतना ही किसी भी दूसरे सम्पत्तिशाली देश को भी दरिद्रावस्था में परिणत कर देने को पर्याप्त था। इसी कारण हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रान्तों में दुर्भिक्ष भी पड़े जिनसे निरीह भारतीय बहुत अधिक संख्या में असमय ही मृत्यु की गोद में सदा के लिए सो गए। इस विपन्नावस्था में रहने के कारण भारतीयों के मन में असंतोष की भावना का अनिवार्यतः उद्भव हुआ। श्री केसरीनारायण शुक्ल ने भारतीयों की इस असंतोष-भावना पर विचार करते हुए लिखा है। "ऐसी आर्थिक परिस्थिति में असंतोष अनिवार्य था। असंतोष उस निरंकुश शासन-नीति के प्रति था जो जनमत की अवहेलना करती थी। देशवासी देख रहे थे कि हमारा काम केवल कर देना रह गया है। इसके आगे न हमारे कोई अधिकार हैं और न कोई हमारी सुनता है।"[2] भारतीय जनता की इस असंतोषजनक भावना का प्रकाशन तत्कालीन जन-नायकों के भाषणों में हुआ। कांग्रेस की स्थापना उस काल तक हो चुकी थी और उसके सदस्यों का ध्यान भारत की इस अवस्था की ओर भी पूर्णतः आकृष्ट हुआ नए-नए नेताओं ने अँग्रेजों की निरंकुश शोषण-नीति की भर्त्सना बहुत तीखे शब्दों में की। उन लोगों ने सरकार की कटु आलोचना करते हुए भारतीय कला कौशल, कृषि विज्ञान, टेकनिकल शिक्षा आदि के प्रचार एवं प्रसार के लिए विविध माँगों का प्रस्तुतीकरण प्रारम्भ किया। सन् १८८४ ई० में आयोजित कांग्रेस के तृतीय सम्मेलन में एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ जिसका सार एम० नुरुल्ला और जे० पी० नायक के शब्दों में निम्नलिखित है—

"That having regard to the poverty of the people it is desirable that the government be moved to elaborate a system of technical education, suitable to the condition of the country, to encourage indigenous manufature...and to employ more extensively than at present the skill and talents of the people of the country."[3]

---

१. Economic History of India: R. C. Dutta, पृ० १

२. आधुनिक काव्य-धारा का सांस्कृतिक स्रोत: श्री केसरीनारायण शुक्ल, पृ० ८०

३. History of Education in India: S. Nurullah and J. P. Naik, पृ० २८१

इसी प्रकार के प्रस्ताव कांग्रेस के प्रायः सभी सम्मेलनों में स्वीकृत होते थे और भारतीय नेता अपने आग्रह को बड़े ज़ोरदार शब्दों में सरकार तक पहुँचाने की चेष्टा करते थे। सन् १८९६ मे जब भयंकर दुभिक्ष-ग्रस्त भारतीय जनता अधिकाधिक संख्या मे काल-कलवित होने लगी तो कांग्रेस ने फिर शक्तिशाली शब्दों में इस तथ्य को दुहराया कि इन सारी समस्याओं का एक मात्र समाधान देश को ध्वस्त प्राय कला-कौशल मे नवप्राण भरना तथा प्रियप्राण व्यवसाय का पुनरुत्थान है। सन् १८९८ ई० मे कांग्रेस ने फिर एक प्रस्ताव पास किया जो निम्नलिखित है :—

"That having regard to the poverty of the people and the decline of the indigenous industries, the *government will* introduce a more elaborate and efficient scheme of technical *instruction and set apart* more *funds for* a better and more successful working of the same."[1]

एक ओर भारत के अग्रिम पंक्ति के नेता अँग्रेजी-सरकार की दमन-नीति की कड़ी आलोचना कर नए-नए स्वराष्ट्र-विकास-सम्बन्धी योजनाओं और प्रस्तावो को सामने रख रहे थे और दूसरी ओर अँग्रेजों के सम्पर्क में आने से यहाँ भी वैज्ञानिक यंत्रों एवं प्रसाधनों का प्रयोग प्रारम्भ हो चुका था। आवागमन के नवीन साधनों का निर्माण हो रहा था; रेल, जहाज, मोटर आदि आधुनिक वैज्ञानिक देनों का उपयोग प्रारम्भ हो गया था। इन वैज्ञानिक प्रसाधनों के प्रयोग का अत्यधिक प्रभाव यहाँ के उद्योग-धन्धों, कृषि, तथा व्यापार पर पड़ा। सन् १८८९ ई० में डाक्टर वोयेलकर भारत की कृषि-अवस्था की जाँच के निमित्त भारत-सरकार द्वारा मंत्री नियुक्त हुए जिन्होने अपनी रिपोर्ट मे बहुत से अच्छे-अच्छे लाभ-दायक सुझाव दिए। उद्योग-धन्धों का विकास भी धीरे-धीरे होने लगा। प्रो० विमला प्रसाद ने भारतीय जनता के बीच उद्योग-धन्धो के पुनर्निर्माण की भावना को जागृति के सम्बन्ध मे लिखा है कि "धीरे-धीरे भारतीयों को यह अवस्था अखरने लगी और वे भारत में फिर से उद्योग-धन्धों के खोलने की बात सोचने लगे। उन्नीसवी शताब्दी के आखिर से ही यह काम शुरु हो गया। भारतीयों के मार्ग मे अनेक कठिनाइयाँ थी। यहाँ तक कि सरकार का रुख भी उनके अनुकूल नही था। लेकिन धीरे-धीरे भारत मे फिर उद्योग-धंधे खुलने लगे और यूरोप को तरह कई बड़े बड़े मिल चलने लगे। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे स्वदेशी आन्दोलन ने भारतीय उद्योग-धन्धों के विकास में बहुत मदद पहुँचाई।"[2] व्यापार के क्षेत्र मे भी काफी उन्नति हुई जिसे फिर विमलाप्रसाद के ही शब्दों मे सुनिए— "उन्नीसवी शताब्दी में स्वेज नहर खुल जाने के बाद विदेशों के साथ भारत का व्यापार बहुत बढ़ गया। साथ-ही-साथ आवागमन के साधनों में सुधार होने के कारण देश के भीतर के व्यापार मे भी बहुत वृद्धि हुई। उन्नीसवी शताब्दी तक भारत के बाहर अधिकतर ब्रिटेन

---

१. Ibid, पृ० २२१

२. भारतवर्ष का इतिहास : विमला प्रसाद एम० ए०, पृ० २२१-२२

के साथ ही व्यापार होता था। लेकिन बीसवीं शताब्दी के शुरू में जर्मनी, अमेरिका, जापान आदि अन्य देशों के साथ भारत का व्यापार होने लगा।"[१] आर्थिक क्षेत्र में इन सारे परिवर्तनों के परिणाम-स्वरूप यहाँ के कतिपय व्यक्तियों को अत्यधिक लाभ हुआ। इन सारी घटनाओं के परिणाम-स्वरूप उनमें भी पूँजी एकत्रित करने की प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगी और भारत में पूँजीवाद का क्रमिक विकास प्रारम्भ हुआ। प्रो० शम्भूनाथ सिंह जी के शब्दों में ....."भारतीय पूँजीवाद के विकास के सम्बन्ध में भी विचार कर लेना आवश्यक है, क्योंकि छायावादी काव्य में अभिव्यक्त व्यक्ति-स्वातन्त्र की भावना उसी की देन है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक देश के उद्योग-धंधों का विकास अँग्रेजों की अनिच्छा के बावजूद कुछ न-कुछ हो गया था, क्योंकि हजारों मील लम्बी रेल-लाइनों के बन जाने के बाद भारतीय उद्योग-धन्धों के विकास को रोकना असंभव था। १८९६ ई० में स्वेज नहर का रास्ता खुल जाने से भारतीय माल का निर्यात पश्चिम में बहुत होने लगा। इसी समय बंगाल में कोयले की खानें खोदने का काम शुरू हुआ और सूती तथा जूट की मिलों की संख्या बढ़ी। अतः १९वी ई० तक देश के व्यापार और उत्पादन के क्षेत्र मे एक तरह की क्रान्ति हुई। रेलों के कारण तैयार माल के वितरण में बहुत सुविधा हो गई। औद्योगिक विकास के कारण श्रम-विभाजन और उद्योगों का केन्द्रीकरण होने लगा। इन सभी कामों में विदेशी पूँजी तो बहुत लगी, पर साथ ही देशी व्यापारी भी अपनी पूँजी लगाने लगे। सूती तथा लोहे और जूट के कारखाने अधिकतर हिन्दुस्तानियों द्वारा खोले गए, फिर भी १९ वी शताब्दी के अन्त तक औद्योगिक विकास की गति बहुत धीमी रही। १६०० ई० के बाद स्थिति कुछ बदली। १६१४ ई० तक भारत के व्यापार, उद्योग धन्धों, खानों और कृषि में आशा से अधिक विकास हुआ, यद्यपि वह अँग्रेजो की इच्छा के विरुद्ध और अन्य देशों के इतने ही समय में होने वाले औद्योगिक विकास के मुकाबले में बहुत कम था। इसका कारण यह था कि विकास के रास्ते मे ब्रिटिश सरकार निरन्तर अड़गें लगाती रही, क्योंकि इससे ब्रिटिश पूँजीपतियों के स्वार्थ में बाधा पड़ने की आशंका थी। किन्तु अपने स्वार्थ की दृष्टि से अँग्रेजों ने प्रथम महायुद्ध के समय भारतीय उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहित करने का वायदा किया और युद्ध के बाद १६२५ ई० तक उस नीति के अनुसार उन्होंने काम भी किया। इससे भारतीय उद्योगपतियों को यह आशा बँध गई कि अब सरकार देश के उद्योग-धन्धों का विकास करेगी। इसी नीति के फलस्वरूप जो कुछ औद्योगिक उन्नति हुई, उसके महत्व को नहीं भुलाया जा सकता। १६१५-१९३३ ई० के बीच औद्योगिक उत्पादन में ५६% वृद्धि हुई।..... जो कुछ औद्योगिक विकास हुआ उससे पूँजीवाद की जड़ें जम गई।"[२]

उपर्युक्त विवेचनों के पश्चात् अब दोनों के तुलनात्मक सार का अलेखन अपेक्षित

---

१. वही; पृ० २३३,

२. छायावाद के आविर्भाव के सामाजिक कारण : अंवतिका : काव्यालोचनांक : प्रो० शम्भूनाथ सिंह पृ० २०४

है। हम यह स्पष्ट देखते हैं कि जिस प्रकार अँग्रेजी-कविता के रोमान्टिक पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि में वहाँ की औद्योगिक क्रान्ति प्रेरक शक्ति के रूप में थी, उसी प्रकार छायावाद का आविर्भाव भी नूतन उद्योग-धन्धों के विकासयुगीन भारत की मिट्टी पर ही हुआ। इसके उपरान्त जिस भाँति इगलैंड मे पुरानी सामंतशाही प्रथा एवं तानाशाही-प्रवृत्ति के शासक के खिलाफ वहाँ की जनता ने विद्रोहात्मक स्वर उच्चारित किया, उसी भाँति भारत-वासियों ने भी अँग्रेजों की क्रूर दमन-नीति के विरुद्ध क्रान्ति के नारे बुलन्द किए। समाज में प्रसरित इन विद्रोहात्मक विचारोर्मियों की ध्वनि दोनों युग की कविताओं मे भी गुंजित हुई है। समाज में जिस प्रकार परम्परागत जीर्ण मान्यताओ एवं बन्धनों को ध्वस्त किया जा रहा था ठीक उसी प्रकार साहित्य में भी एक ओर रोमान्टिक कवियों ने ऑगस्टन काव्य-बन्धनों को तोड़कर मुक्त भावनाओं से प्रेरित नवीन काव्य शैलियों का आश्रय ग्रहण किया और दूसरी ओर द्विवेदीयुगीन कविता की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध जोरदार प्रति-क्रिया छायावाद की कविताओं मे परिलक्षित हुई। सर्वप्रमुख बात तो, सामाजिक स्तर पर, यह हुई कि उद्योग धन्धों के प्रसार के कारण दोनों देशों की जनता मे पूँजीवादी प्रवृत्ति ने बल प्राप्त किया। व्यक्ति ने अपने सामर्थ को पहचाना; उसने देखा कि अपने बाहुबल, अपनी बुद्धि एवं शक्ति के सहारे वह बहुत कुछ उपार्जित कर सकता है। पूँजीवादी मनो-वृत्ति के प्रसार के फलस्वरूप, इस प्रकार, व्यक्ति-स्वातंत्र्य की भावना ने भी यथेष्ट बल एवं प्रसार प्राप्त किया। प्रो० शम्भूनाथ सिंह ने बहुत उचित कहा है "इस प्रकार पूँजी-वादी समाज मे व्यक्ति स्वतन्त्र हो जाता है, अब वह सामंती सामाजिक सम्बन्धों का नियमन मानने के लिए मजबूर नहीं होता। तात्पर्य यह कि पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था व्यक्ति वादी अर्थ व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की भावना को खुल-खेलने का अवसर मिलता है।"[१] इसी कारण हम रोमान्टिक पुनर्जागरण काल की रचनाओं और छायावादी रचनाओं में व्यक्तिनिष्ठ भावनाओं की अभिव्यंजना, आदर्श स्वप्नों का मूर्त्त रूप एवं कल्पनाजन्य मृदुल विचारों की अभिव्यक्ति पाते हैं। दोनों युगीन कवियों ने किसी भी प्रकार के बन्धन को अस्वीकार किया है—स्वच्छन्दता, निर्बंधता एवं उद्दाम प्रवाह ही उनके प्रमुख गुण हैं। "पूँजीवादी समाज की संस्कृति और साहित्य भी पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के अनुरूप ही व्यक्तिवादी होते हैं। इस युग का कवि व्यक्तिवादी के रूप में उस स्वतन्त्रता को प्राप्त करने का प्रयत्न करता हुआ दिखलाई पड़ता है, जो सामंती समाज-व्यवस्था में उसे नहीं प्राप्त थी। वह हृदय के आवेग और संवेदना-शक्ति के द्वारा अपने स्व का बाह्य वस्तुओं पर आरोप करता है। वह स्वप्न द्रष्टा होता है जो अपने स्वप्नों और दमित वासनाओं को काव्य में अभिव्यक्ति करता है।"[२] प्रो० शम्भूनाथ सिंह द्वारा प्रकटित उपर्युक्त सम्पूर्ण

---

१. छायावाद के आविर्भाव के सामाजिक कारण : अवन्तिका, काव्यालोचनांक, प्रो० शम्भूनाथ सिंह, पृ० २०२।

२. वही, पृ० २०२-३

लक्षण छायावादी एवं रोमान्टिक पुनर्जागरण-काल के कवियों की रचनाओं में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होते है।

इसी स्थल पर एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य का स्पष्टीकरण नितान्त अपेक्षित है। हमने देखा कि रोमान्टिक एवं छायावादी कवियो के उद्भव की पृष्ठभूमि मे दोनों देशों की औद्योगिक क्रान्ति का, जिसमें विद्रोहात्मक भावनाओं का सन्निवेश था, बहुत बड़ा हाथ था। किन्तु इंगलैंड में जो विद्रोह हुआ उसमें उसी देश की सामन्ती प्रथा एवं राजा की दमन-नीति के प्रति विद्रोहात्मक स्वर था; ऐसी बात नही थी कि कोई अन्य जाति की परतंत्रता के खिलाफ वहाँ की जनता ने आवाज उठायी हो। किन्तु, भारत मे ठीक इसके विपरीत, अंग्रेजों की, जो विदेशी थे, परतंत्रता के विरुद्ध भारत की जनता बगावत की आवाज बुलन्द कर रही थी। इसी कारण इस युग में राष्ट्रीय भावनाओं का भी प्रसार बहुत अधिक हुआ। देश में राष्ट्रीयता की ओजस्विनी हवा प्रवाहित हो चली थी, जिसका प्रभाव छायावादी कवियों पर बहुत अधिक पड़ा। हम ऐसा नहीं कह सकते कि अंग्रेजों के रोमान्टिक कवियों ने देश-प्रेम की कोई कविता ही नही लिखी; किन्तु छायावादी कवियों की तुलना में उनमें राष्ट्रीय-प्रेम का उन्मेष कम था। हमारी इस धारणा की सत्यता इस तथ्य को ध्यान मे लाने से स्वतः सिद्ध हो जाती है कि परिस्थितिवश ही कोई कार्य होता है। अठारहवी शताब्दी के अन्त में इंगलैंड में ऐसी कोई परिस्थिति थी ही नही जिससे राष्ट्रीयता का विकास हो; अतः अंग्रेजी के रोमान्टिक कवियों ने राष्ट्रीय प्रेमविषयक रचनाओं की सृष्टि ही नही की और किसी कवि ने यदि इस विषय पर कलम चलाई भी है तो वह स्वांतर की भावनाओं से ही अभिप्रेरित होकर। उन पर बाह्य वातावरण का कोई प्रभाव नही था।

किन्तु ठीक इसके विपरीत छायावादियों का राष्ट्र-प्रेम तत्कालीन भारत के स्वातंत्र्य संग्राम से निःसृत स्वदेश-प्रेम की सर्वत्र व्यापिनी धारा के परिणाम-स्वरूप ही है। देश के इसी आन्दोलन से प्रेरित होकर 'प्रसाद' ने अतीत की कुहेलिका मे भारत के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष के ज्योति चिन्ह खोजने के प्रयत्न किए और उनके प्रसिद्ध गीत—

"हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा-समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती···"

अथवा—"अरुण, यह मधुमय देश हमारा !
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को
मिलता एक सहारा !!"

इसी भावना से अनुप्राणित हैं। निराला के 'तुलसीदास' की निम्नलिखित पंक्तियाँ—

"भारत के नभ का प्रभापूर्य, शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे तमस्तूर्य—दिग्मंडल !!"

या— वीणावादिनी वर दे !
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत मंत्र नव
भारत मे भर दे !!

स्पष्टत: देशानुरागी मनोवृत्तियों की ही परिचायिकाएँ है। किन्तु क्रमशः राष्ट्रीयता की यह भावना अन्ताराष्ट्रीय भावनाओं के व्यापक क्षेत्र मे विलीन होती गई तथा अँग्रेजी के रोमान्टिक और हिन्दी के छायावादी कवियों में सम्पूर्ण जगत्, ब्रह्म, मानवजाति एवं उसकी शाश्वत समस्याओं के साथ सम्बंध जोड़ने की प्रवृत्ति का ही अत्यधिक उन्मेष दृष्टिगत होता है। इस परिवर्त्तन के पीछे गम्भीर विचारकों की चिन्ता-धारा का भी प्रभाव था जिनका उल्लेख निम्नलिखित पंक्तियों में होगा।

× × × ×

साहित्यिक आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के विवेचन के पश्चात् उन चिन्तकों एव दार्शनिकों, जिन्होंने हिन्दी एव अँग्रेजी-साहित्य की आलोच्य काव्य-धाराओ को प्रभावित तथा अनुप्राणित किया, के विषय में भी जान लेना आवश्यक है। दार्शनिक विचारक ही सच्चे अर्थ में युग-निर्माता होते है। सम्पूर्ण युग को एक नितांत नूतन दिशा में मोड देने का श्रेय इन्ही युग-प्रवर्तक विद्वानों का होता है। एतदर्थ यदि किसी देश के काव्य में नूतन भाव-स्फुरणो का ओकलन दृष्टिगत होता है तो यह मानना कदापि दोषपूर्ण नहीं कि इस प्रवृत्ति का आविर्भाव भी इन्ही मनीषियों की विचार-धाराओं का प्रतिफलन है।

छायावाद के उद्भव के मूल में ब्रह्म-समाज एवं आर्य-समाज के प्रभावों को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु साहित्य के क्षेत्र में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, और राजनीति के क्षेत्र मे गांधी जी के उदय एवं ख्यातिलब्ध होने के फलस्वरूप, ऐसा स्पष्ट दृष्टिगत होता है, इन्ही अमर युगल व्यक्तियों का प्रभाव छायावादियों पर विशेष रूप मे पड़ा है।

भारत के राजनैतिक क्षेत्र में गांधी जी का आगमन उस समय हुआ जब भारतीय नवजागरण का उन्मेष, जो श्रद्धेय लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में हुआ था, कुछ उतार पर था। तिलक के व्यक्तित्व से प्रभावित जनता विदेशी राज्य को भारत की भूमि से उच्छेदित कर देने पर कटिबद्ध थी। किन्तु अँग्रेजों की क्रूर दमन-नीति के फलस्वरूप भारतीयों का यह राष्ट्र प्रेम कुछ दिनों के लिए मन्द पड़ गया। ऐसी स्थिति में ही गांधी जी का प्रवेश भारतीय नव जागरण के प्रेरक के रूप मे हुआ। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों पर होते अत्याचार के विरुद्ध उन्होंने जो विजय पायी उससे भारत की जनता के बीच उनकी ख्याति बहुत हो गई थी। यहां आकर उन्होंने सत्य, धर्म, अहिंसा एवं सत्याग्रह को ही अपना अस्त्र बनाया। उन्हें मानव की मौलिक वृत्तियो में विश्वास था। मानव-हृदय की अनुभूतियाँ विकसित हो; सदाचार, प्रेम एव करुणा का प्रसार हो, एक-दूसरे को लोग बंधु-बांधव की तरह देखें तथा द्वेष, घृणा, मद, लोभ, वैमनष्य आदि कुत्सित भावनाओं का समूलोच्छेद हो—सक्षेप में गांधीवादी विचार-धारा कुछ इसी प्रकार की थी। गांधी जी ने यह स्पष्ट कहा था कि लक्ष्य जितना महत्वपूर्ण है उतना ही साधन भी: साधन और साध्य मे अन्योन्याश्रय सम्बध है। साध्य और साधन के सम्बन्ध में उन्होने स्पष्टत: घोषित किया था—"We may be fit to attain the end or we may not be. This

is always hidden from our eyes. But over the Means we have full control; we are all fit for them and it is comparatively easy to achieve success in respect of them. Again we approach the end exactly to the extent that we may make means our own. Means we can recognize because seers have pointed them out, while they have declared the end to be difficult to understand. The chief means is Truth and I am sure you are good at it."[1] सत्य में उनकी अटल निष्ठा उनके इन शब्दों से सहज ही संभाव्य है। उनका यह सत्य-व्रत भारतीय राजनैतिक इतिहास में एक नवीन अध्याय था। उन्हें समष्टि में विश्वास था, किन्तु व्यष्टि के शुद्धीकरण पर उनका ध्यान अधिक केन्द्रित था। उनकी आकांक्षा थी कि समाज रूपी विशाल भवन की ईंट-ईंट शुद्ध हों। इसी कारण हृदय के समस्त कुत्सित विचारों को हटा कर वे उसे निर्मल-निर्विकार करने मे ही लोक-कल्याण की भावना का दर्शन पाते थे। उन्हें आत्मा की शक्ति में विश्वास था—बड़े-बड़े कार्य केवल बौद्धिक परिज्ञान से ही सिद्ध नहीं होते, उनके लिए आत्मबल की भी अत्यधिक आवश्यकता है। महात्मा गांधी की यह धारणा उन्हीं के शब्दों में बहुत ही सुन्दर ढग से व्यक्त हुई है। उन्होने स्पष्ट ही कहा है, "Rule of all without rule of all without rule of oneself, would prove to be as deceptive and disappointing as a painted toy mango, charming to look at outwordly but hollow and empty from within...great causes live these cannot be served by intellectual equipment alone, they call for spiritual effort or soul-force. Soul-force comes only through gods grace, and god's grace never descends upon a man who is slave to lust."[2] इस प्रकार मन के विकारों के परिशुद्धीकरण के पश्चात् ही ईश्वर की कृपा का योग्य पात्र बन कर मनुष्य आत्मा की दिव्य शक्ति अर्जित कर पाता है, जिसके सहारे संसार की समस्त बाधाओं एवं कठिनाइयों पर उसकी विजय होती है और वह शान्ति एवं सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करने में समर्थ होकर लोक-कल्याण की पुण्य भावना से भी अनुप्राणित होता है। अतः यह अब स्पष्ट है कि गांधी जी के विचारानुसार व्यष्टि-परिष्कार ही समष्टि कल्याण की भावना का परिवर्द्धक एव पोषक है। इस प्रकार यह भी अब स्वतः सिद्ध है कि महात्मा जी की दृष्टि में व्यक्ति की महत्ता अधिक थी, क्योंकि व्यक्ति ही समस्त पुनीत भावनाओं का उद्गम-स्थान था। राजनैतिक क्षेत्र में भी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विचारों का आरोप सर्वप्रथम गांधी जी ने ही किया और इस युगान्तरकारी नूतन प्रयोग की प्रभाव-परिधि केवल राजनीति तक ही सकुचित नहीं रह पायी, बल्कि उसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य मे भी दिखाई पड़ा। उस समय के भाव-प्रवण कवियों ने भी गांधी जी के विचारों को हृदयंगम किया। इसी कारण उनकी कविताओं में हमे व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की भावना एव आत्मा के प्रकाश की दिव्य झलक दृष्टिगत होती है।

१. Building New India : पृ० १
२. Building New India : पृ० १२-३.

छायावादी कवियों को प्रभावित करने वाली दूसरी शक्ति कवीन्द्र रवीन्द्र की कविता के रूप में प्रकट हुई थी। बंगला में उन्होंने अपनी अप्रतिम प्रतिभा के बल पर एक नवीन काव्य-धारा प्रवाहित की थी जिसमें व्यक्ति-निष्ठ भाव-स्फुरणों एवं विचारोर्म्मियों की अभिव्यंजना थी, लाक्षणिक प्रयोगों, चित्रमयी भाषा, बाह्य ज्योतित आभरणों का आधिक्य था और थी संवेदना और कल्पना की रमणीयता। वास्तव में रवीन्द्र के व्यक्तित्व पर भारतीय साहित्य का प्रगाढ़ प्रभाव था जो उनकी रचनाओं में लगभग सभी स्थानों पर प्रतिध्वनित है। अपने समय की भारतीय सभ्यता, जिसमें नाना प्रकार के कुत्सित भाव समाविष्ट हो गए थे और जो कलमष वैविध्यों से आवृत हो गया था, के विरोध में उन्होंने स्वर उठाया। जीवन के भौतिक पक्ष पर उन्हें विश्वास नहीं था; द्रव्योपार्जन को ही वे जीवन का अन्तिम लक्ष्य नहीं मानते थे। उनका यह कथन था कि भारत का धार्मिक जीवन ही सर्वश्रेष्ठ है। मुक्ति की लालसा भारतीय धर्म का चरम लक्ष्य है जिसके लिए सत्यनिष्ठ एवं पवित्र हृदय होने की अत्यधिक आवश्यकता है। आत्मा को दोषरहित बना कर ही मनुष्य उस अनन्त सत्ता के साथ सम्पर्क स्थापित कर सकता है और दोषराहित्य के हेतु प्रकृति के बीच निवास करना ही एक मात्र साधन है। उन्होंने इस सम्बन्ध में लिखते हुए खुल कर कहा है, "It is the spiritual truth and beauty of our attitude towards our surroundings, our conscious relationship with the Infinite, and the lasting power of the Eternal in the passing moments of our life. Such a religious ideal can only be made possible by making provision for students to live in intimate touch with nature daily to grow in an atmosphere of service offered to all creatures, tending trees, feeding birds and animals, learning to feel the immense mystery of the soil and water and air."[1] प्रकृति के रहस्य को समझना ही जीवन का अन्तिम ध्येय है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को उपनिषद् के निम्नलिखित श्लोक में अडिग विश्वास था :—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

अतः इन चीजों को देखते हुए इतना तो पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि रवीन्द्र की प्रतिभा में कल्पना, प्रकृति-प्रेम, संवेदना एवं कोमल भावनाओं का संतुलित समन्वय था और यों उनकी कविता में एक नूतन अभिव्यंजना-प्रणाली का प्रयोग उन्होंने जो कविताएँ लिखीं उनका बहुत अधिक प्रभाव हिन्दी के छायावादी कवियों पर पड़ा। श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा ने पूर्णतः सत्य ही कहा है, "छायावाद के विकास के मूल में रवीन्द्र के व्यक्तित्व की सुदूरव्यापिनी छाया का काफी हाथ है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।"[2]

इन प्रभावों के उपरान्त अँग्रेजी रोमान्टिक कवियों का प्रभाव भी छायावादी कवियों

१. Building New India, पृ० २१-२
२. छायावाद और प्रगतिवाद, पृ० ६३—संपादक प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा

पर पर्याप्त रूप में पड़ा। कतिपय आलोचक, जिनमें शुक्ल जी भी बहुत दूर तक सम्मिलित किए जा सकते हैं, इतना तक कहने के पक्षपाती है कि छायावाद रोमान्टिक कविताओं का हिन्दी अनुवाद है।[1] किन्तु मेरी दृष्टि में यह बात सत्य से बहुत दूर है। पन्त ने अंग्रेजी कवियों के प्रभाव को स्पष्टतः स्वीकार किया है, किन्तु प्रसाद, निराला और महादेवी पर यह प्रभाव पड़ा अथवा नहीं और यदि पड़ा तो किस मात्रा मे, यह बताना अत्यन्त ही कठिन कार्य है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् अंग्रेजी रोमान्टिक कवियों को प्रभावित करने वाले दार्शनिक चिन्तकों का संक्षिप्त परिज्ञान भी अपेक्षित है। भारतीय प्राचीन चिन्तकों ने जिस प्रकार छायावादियों को आकृष्ट किया था उसी भाँति प्लेटों ने रोमान्टिक कवियों को प्रभावित किया। प्लेटों भी एक आदर्श आध्यात्मिक चिन्तक था और उसकी निष्ठा भी जीवन के नैतिक एवं अकलुष पक्ष पर अधिक थी। इसी कारण यदि चिन्ता-धारण का परिणाम है तो रोमान्टिक कवियों का आध्यात्मिक पहलू प्लेटों के प्रभाव स्वरूप।

रोमान्टिक कवियों को प्रभावित करने वाला दूसरा युग प्रवर्त्तक चिन्तक रूसो था। उसने तत्कालीन यूरोपीय सभ्यता एवं संस्कृति को दोषपूर्ण बताया, जीवन के भौतिक पक्ष पर ही अधिक जोर दिया जाना अपराध घोषित किया, शासन करने के दैवाधिकार को स्वार्थांधता का दुष्परिणाम करार किया और शक्तिशाली शब्दों में इस मत की प्रस्थापना की कि मनुष्य स्वतंत्रावस्था में जन्म ग्रहण करता हैं, किन्तु सांसारिक चक्रों से उसे गुलामी की जंजीर पहनने को बाध्य होना पड़ता हैं। कम शब्दों में रूसों के विचारों को कॉम्पटन रिकेट ने व्यक्त करते हुए लिखा है कि—

"Original impulses are good because they are natural. Men have become evil, because they left uncontaininate nature, growing luxurious and artificial. To escape from the state of sickness, we must return to the monutains and meadows. In other words, we are to destroy the social structure raised by man during centuries of human history, and start a resh. Why do political instimtions exist? Merely to enable the rich man to rob the poor, the tyrant to opprers the weak. Force is mischievous. There is no compulsion with anything but love. There is no way of erecting a new social order save by the light of pure reason."[2]

इस प्रकार रवीन्द्र की भांति ही रूसों ने भी प्रकृति प्रेम, स्नेह, तथा बनावटीपन से अलग मौलिक मानवी प्रवृत्तियों को ही श्रेष्ठ बताया। गांधी जी की भांति ही राजनीति के क्षेत्र में रूसो मानव-स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का समर्थक था, और साहित्य मे उसे रोमान्टिसिजम का प्रचारक ही माना जा सकता है। विभिन्न चिन्तकों ने उसके व्यापक व्यक्तित्व

१. देखिए—हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल
२. A History of English Literature : A. Compton Ricket.

को एकमत से स्वीकार किया है और वह स्वच्छन्दतावाद का समर्थक एवं पुनरुद्धारक कहा गया है। उसकी आदर्श कल्पना, भावनात्मक शैली, काव्य पूर्ण भाषा आदि ने निश्चय ही यूरोपीय साहित्य में रोमान्टिसिज्म की स्थापना की एक साहित्यिक मनीषी ने रूसों के सम्बन्ध मे उचित ही कहा है—"He was almost the founder of sentimentalism in general literature; and he was absolutely the first to make word painting of nature an almost indispensible element of all imaginative and fictitions writing both in prose and poetry."[१]

रूसों के अतिरिक्त कांट, हीगेल, टॉमस पेन, गिलबर्ट ह्वाइट, स्टीवार्ट आदि विद्वानों ने भी अँग्रेजी की रोमान्टिक काव्य-धारा को बहुत दूर तक अनुप्राणित किया था। ओलिभर एल्टन ने लिखा है कि सर्वप्रथम कोलरिज ने ही कांट, हीगेल शॅलिंग आदि के विचारों को काव्य का रूप देकर उन्हें इंगलैंड की जनता के बीच प्रचारित किया।[२] इन चिन्तकों ने भी भारतीय विचार-धारा के समान ही ईश्वरीय सत्ता को कण-कण मे व्याप्त बताया है जिसके प्रभाव-स्वरूप रोमान्टिक कवियों का आध्यात्मिक दृष्टिकोण और भी प्रबल हो गया।

इस प्रकार हमने छायावादी एवं रोमान्टिक कवियों को प्रभावित करने वाली लगभग समान दार्शनिक चिन्ता-धाराओं का संक्षेप में तुलनात्मक अध्ययन किया। अब छायावादी एवं रोमान्टिक कवियों की रचनाओं का तौलनिक अध्ययन ही अभीष्ट है।

\+ \+ \+

(अँग्रेजी कविता का रोमान्टिक पुनर्जागरण तथा छायावाद निश्चय रूप से काव्य-क्षेत्र में स्वच्छन्दतावादी युग था) सभी प्रकार के बन्धनों को ध्वस्त कर उद्दाम प्रवाह की भाँति अग्रसित होने की आकांक्षा, कल्पना के इन्द्रधनुषी वितान से लिपट कर भावनाओं से ओत-प्रोत गान में तल्लीन होने की कामना, नैसर्गिक रहस्यों के अतल तल में प्रविष्ट होकर अपरूप-रूप की झलक प्राप्त करने की इच्छा, आत्म प्रकाशन की प्रबल चाह आदि कुछ ऐसे तत्व हैं जो दोनों युग की कविताओं में सहज ही दृष्टिगत हैं। अँग्रेजी मे 'क्लासिसिज्म' और 'रोमान्टिसिज्म' दो वाद है जो एक दूसरे के सर्वथा प्रतिकूल हैं। पहले मे बाह्याकार की प्रधानता है, सतुलन, समन्वय, संयम, बंधन, आडम्बर की प्रमुखता है; दूसरे में बंधन हीनता, उद्दाम यौवन, वेग, प्रवाह, संतुलन-राहित्य आदि का आधिक्य है; एक में परम्परावाद का निर्वाह है, इसी संसार के भौतिक एवं गोचर पदार्थों के वास्तविक रूप में विश्वास है, मानव का स्थूल अध्ययन ही अंतिम अभीष्ट है; दूसरे मे विश्व की रंगशाला की विचित्रताओं एवं अप्रकट रहस्यमयी घटनाओं के अध्ययन की घोर चेष्टा है, अज्ञानांधकार को चीर कर नवीन भावनाओं विचारों एवं अनुभवों के आकलन की कटिबद्धता है और है, समस्त

१. Quoted in "Three Centuries of Fresh Literature." Saintsbury.

२. A Survey of English Literature-vol I, Oliver Elton, पृ० २२.

परम्परावादी सिद्धान्तों को तोड़कर स्वच्छन्द रूप में प्रवाहित होने की अनन्त आकांक्षा। इस विभेद को अधिक स्पष्ट करने के लिए स्कॉट-जेम्स के निम्न-लिखित शब्द उद्‌धृत करने योग्य हैं :—

"The one seeks always a mean; the other an exteraity. Repose satisfies the classic; adventure attracts the Romantic. The one appeals to tradition; the other demands the novel. On the one side we may range the virtues and defects which go with the notions of fitness, propriety, measure restraint, conservatism, authority, calm, experience ,comeliness; on the other, those which are suggested by excitement, energy, restlessness, sprituality, curiosity, troublousness, progress, liberty, experiment, provocativeness."[1]

वाल्टर पेटर ने भी रोमान्टिक काव्य के कतिपय प्रमुख लक्षणों की ओर संकेत किए हैं, जिनमें कौतूहल की भावना, जिज्ञासा एवं सौन्दर्य-चेतना शीर्षस्थ हैं।

छायावादी एवं रोमान्टिक कवियों पर दृष्टिपात करने से सबसे पहले उनकी व्यष्टि-केन्द्रिकता पर ध्यान अवश्य ही आकृष्ट होता है। व्यष्टि-प्राधान्य की भावना के उन्मेष की पृष्ठभूमि में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक कारणों की कार्यशीलता की विवेचना इस निबंध के अग्रिम अंश में की जा चुकी है। स्वात्मा-सागर में किल्लोलित भावना-लहरियों का लास, कल्पना की झीनी-झीनी सुगंधपूर्ण हवा, ऐकान्तिक चिन्तन से उत्थित आध्यात्मिक विचार-स्फुरणों के शुभ्र राजहंसों की मधुमय वाणी की प्रतिध्वनि ही हमें दोनों युग के कवियों की रचनाओं में सुनने को मिलती है। स्वकेन्द्रिकता (Subjectivity) दोनों युग के कवियों की प्रमुख विशेषता है। समाज की गरीबी, अंग्रेजों के दमन-चक्र की घड़घड़ाहट अथवा भारतीय जनता के स्वातंत्र्य-संग्राम का यथातथ्य चित्र छायावादी कविता मे प्राय: उपलब्ध नहीं। ठीक उसी भाँति रोमान्टिक कविताओं में भी तत्कालीन इंगलैंड के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियों का सच्चा चित्र हमें नहीं मिलता। इन सारे उथल-पुथल से ये कवि प्रभावित नहीं होते थे, ऐसी बात नहीं थी। उनसे प्रभावित होकर वे उस ओर आकृष्ट होते थे, और उन पर निजी रूप में सोचकर वे अपने विचारों एवं भावों को ही अपनी कविता में स्थान देते थे। 'पर' से अधिक 'स्व' की उपस्थिति थी। आत्मनिष्ठ भावनाओं का चित्रण ही अधिक होता था।

छायावादी कवियों में कौतूहल की भावना का सन्निवेश बहुत अधिक मात्रा में है। नैसर्गिक घटाओं को देखकर, बिजली की चमक, बादलों का जमघट और गड़गड़ाहट, सरिता का वीचि-विलास, एवं नव पल्लव-शोभित तरु-डालियों को देखकर कवि प्राय: भावाकुल हो जाता है। ऐसी प्राकृतिक घटनाएँ क्यों घटती हैं ? बादलों के रूप में कौन-सी रूपसी के अलक-जाल नभ-नीलिमा पर लहरा जाते हैं, बादलों के बीच तड़ित् की मुस्कान किसकी है, लहरों का नर्तन किस व्यथाकुल हृदय का कंपन है—आदि प्रश्न कवि-मानस को

१. The making of literature, R. A. Scott James, p. 170

आन्दोलित कर देते हैं। इस प्रकार की जिज्ञासा एवं कौतूहल की भावनाएँ निश्चय ही अन्वेषणात्मक प्रकृति की परिचायिकाएँ है, जो स्वच्छंदतावाद की कविताओं के प्रमुख लक्षण हैं। यदि 'छाया' को देखकर पंत के हृदय में विभिन्न प्रश्नों का उद्रेक होता है और वे कवि की कला के भागी बनकर निम्न-लिखित रूप में चित्रित होते हैं—

कौन, कौन तुम परहितवसना,
म्लान-मना, भू-पतिता-सी,
वात-हृता विच्छिन्न लता-सी,
रतिश्रान्ता व्रज-वनिता-सी ?
नियति-वंचिता, आश्रय-रहिता
जर्जरिता, पद-दलिता-सी,
धूल-धूसरित मुक्त कुन्तला
किसके चरणों की दासी ?

तो शेली भी विनष्ट होते हुए सौन्दर्य को देखकर पूछ बैठता है :—

Spirit of Beauty, that doth consecrate
With thine own hues all thou dost shine upon
Of human thought or form,—where art thou gone?
Why dost thou pass away and leave our state,
This dim vast vale of tears, vacant and desolate ?
Ask why the sunlight not for ever
Weaves rainbows O'er yon mountain-river,
Why aught should fail and fade that once is shown,
Why fear and dream and death and birth
Cast on the daylight of this earth
Such gloom,—why man has such a scope
For love and hate, despondency and hope ?

यदि 'निराला' जी का कवि-हृदय संसार के तम के पार की चीजों को देखने के लिए उत्कंठातुर हो इन शब्दों में फूट पड़ता है—

कौन तम के पार ?
अखिल पल के स्रोत, जल-जग,
गगन घन-घन धार ?
गंध - व्याकुल - कूल - उर - सर,
लहर कच कर कमल मुख पर,
हर्ष-अलि हर स्पर्श-शर सर
गूँज बारम्बार ?
निशा-प्रिय-उर-शयन सुख-धन
सार या कि असार ?

सो कीट्स को भी अपने निजी घर को देखने की इच्छा होती है, और वह जिज्ञासाकुल हो कह उठता है—

"O think how this dry palate would rejoice !
If in soft slumber thou dost hear my voice,
O thinks how I should love a bed of flowers:—
Young goddess ! let me see my native bowess !
Deliver me from this rapacious deep !"

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिज्ञासा एवं कौतूहल की भावनाओं का प्रकटीकरण जिस मात्रा में छायावादी कवियों में है, उसी मात्रा में अंग्रेजी के रोमान्टिक कवियों मे भी। किसी वस्तु को जानने, देखने अथवा सुनने की उत्कंठा इस बात की द्योतक है कि कवि में अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति का बाहुल्य है। यह स्वच्छंदतावादी मनोवृत्ति है, जो हमें दोनों युग की रचनाओं में बहुत अधिक मात्रा में मिलती है।

प्रकृति-प्रेम एक दूसरा तत्त्व है, जो दोनों युग की कविताओं में स्पष्ट रूप से लक्षित है। द्विवेदीयुगीन कवि भी प्रकृति-सम्पर्क के विविध प्रमाण अपने काव्य मे देते हैं। किन्तु उनकी प्रकृति जड़ है—उसमें स्पंदन नहीं, जीवन के सुख-दुख का पतझड़-वसंत नहीं। यही स्थिति अंग्रेजी के ऑगस्टनयुग के कवियों की भी थी। पोप ने यह स्पष्ट उद्घोषणा कर दी थी कि "The proper study of mankind is Man."[1] नतीजा यह था कि वे कवि बाहर के कवि (urban poets) हो गए थे और हास्य-व्यंग्य-पूर्ण कविताओं की सृष्टि में ही उनकी प्रतिभा का अधिक प्रयोग होता था। फलतः उनका दृष्टिकोण भी स्थूल हो गया था और उनके द्वारा वर्णित प्रकृति भी स्थूल ही थी। इसी स्थूल प्रकृति-वर्णन के विद्रोह में दोनों युग के कवियों ने काव्य-रचना का प्रारम्भ किया। उनकी प्रकृति जीवित है, उसमें जीवन का स्पंदन है, सुख-दुख का पतझड़-वसंत उसे भी हँसाता-रुलाता है। पन्त ने अपने प्रकृति-प्रेम को निम्न-लिखित शब्दों में व्यक्त किया है—

'छोड़ द्रुमों की शीतल छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन!
भूल अभी से इस जग को ?"

कीट्स ने भी बंधनावृत कल्पना की स्वच्छंदता पर जोर देते हुए उसे नैसर्गिक छटाओं के बीच भ्रमण करने का आग्रह किया है—

"Ever let the Fancy roam !
Pleasure never is at home.
× × ×
Sit thee there, and send abroad,
With a mind self-overaw'd,
Fancy, high-commissioned:—send her !

---

१. Essay on Man ; Pope.

She has vassels to attend her;
She will bring, in spite of frost,
Beauties that the earth hath lost;
She will bring the all together,
All delights of summer weather;
All the birds and bells of play,
From dewy sword or thorny spray."

संसार को असार बताकर और भौतिक साधनो के प्रति मोह को दुख का मूल कहकर छायावादी कवियो ने प्रकृति की शान्त गोद मे ही विहार करने का व्रत किया। 'प्रसाद' ने इस पलायनवादी प्रवृत्ति का परिचय देते हुए कहा—

ले चल मुझे भुलावा देकर
मेरे नाविक धीरे-धीरे !
जिस निर्जन मे सागर-लहरी,
अम्बर की कानों में गहरी,
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे !!

कीट्स ने भी 'प्रसाद' की ही भाँति कल्पना के पंखों पर प्राकृतिक लोक में उड़ जाने की आकांक्षा प्रकट की है—

"Away ! away ! for I will fly to thee,
Not charioted by Bacchus and his pards,
But on the viewless wings of Poesy,
Though the dull brain perplexes and retards,
Already with thee ! tender is the night,
And happly the Queen—Moon is on her throne,
Clustered around by all her starry Fays;"[१]

छायावादी कवियो ने प्रकृति का चित्रण शिक्षिका के रूप में भी किया है। संसार विविध संकटों से घिर गया है, कुत्सित प्रवृत्तियाँ मानव-हृदय मे उफान पर हैं, सभी ओर छल-कपट, लोभ-मद का निर्विघ्न नर्तन हो रहा है और लोग एक दूसरे को चूस कर आगे बढ़ जाने की चिन्ता मे लगे हैं। ऐसी स्थिति में व्याकुल कवि-मन को प्रकृति के विभिन्न उपादान शिक्षक के रूप में दीख पड़ते हैं। पन्त 'मधुप कुमारी' से गीत सीखने को आतुर हैं—

सिखा दो ना, हे मधुप-कुमारि ! मुझे भी अपने मीठे गान,
कुसुम के चुने कटोरों से करा दो ना, कुछ-कुछ मधुपान।

अंग्रेजो के रोमान्टिक कवि भी प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करने की दिशा में पूर्ण तत्पर दीख पड़ते हैं। जैसा कि एक विचारक ने कहा है—"They all (Romanticists) had a deep interest in nature, not as a centre of beautiful scenes but as an informing and spiritual influence on life"

१. Ode to Nightingale : Keats.

(For Evans) वास्तव में अंग्रेजी के रोमान्टिक कवि प्रकृति को शिक्षिका-रूप में देखते थे और वर्ड्सवर्थ ने तो यह स्पष्ट ही कहा है कि—

Love had he found in huts where poor men lie,
His daily teachers had been woods and rills,
The silence that is in the starry sky,
The sleep that is among the lovely hills."

छायावादी कवियों ने प्रकृति के अणु अणु में आत्मा की हलचल का अनुभव किया है। वे प्राकृतिक वस्तुओं में किसी अगोचर-अज्ञात सर्वव्यापी चेतन-सत्ता की छाया देखकर आश्चर्य-चकित रह जाते हैं। पन्त, प्रसाद, निराला आदि कवियों ने अपनी इस छायावादिनी भावना की अभिव्यंजना भिन्न-भिन्न रूपों में की है। पन्त ने तो यह स्पष्ट लिखा है कि—

दूर, उन खेतों के उस पार जहाँ तक गई नील झंकार,
छिपा छाया-वन में सुकुमार स्वर्ग की परियों का संसार !

वर्ड्सवर्थ ने भी निम्न-लिखित पंक्तियों में—

There was a time when meadow, grove, and stream,
The earth, and every common sight,
To me did seem
Apparell'd in celestial light.

प्रकृति को स्वर्गिक प्रकाश में स्नात देखने की बात को स्वीकार किया है।

छायावादी कविता में प्रकृति-चित्रण करीब-करीब प्रत्येक स्थल पर मानवीकरण अलंकार के सहारे हुआ है। 'बादल' में पंत ने लिखा है—

सुरपति के हम ही हैं अनुचर, जगत्प्राण के भी सहचर
मेघदूत की सजल कल्पना, चातक के चिर जीवन-धर;
मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर, सुभग स्वाती के मुक्ताकर;
विहग-वर्ग के गर्भ-विधायक, कृषक-बालिका के जलधर !

शैली के "दि क्लाउड" की पंक्तियों से उपर्युक्त उद्धरण की तुलना कीजिए—

I bring fresh showers for the thirsting flowers
From the seas and the streams;
I bear light shade for the leaves when laid
In their noonday dreams.
From my wings are shaken the dews that waken
The sweet buds every one,
When rocked the rest on their mothers breast
As she dances about the sun.

दोनों कवियों द्वारा वर्णित बादल अपने मुख से ही अपनी कृतियों का वर्णन करते हैं।

छायावादी और रोमान्टिक कवियों की सौन्दर्य-चेतना भी अत्यन्त ही विकसित है। इन कवियों की सौन्दर्योपासक कहना कभी अनुचित नहीं हो सकता। कृत्रिम संसार की कुरूपता से दूर हटकर वे नैसर्गिक सौन्दर्य की गोद में सर्वदा तल्लीन रहते हैं। कीट्स ने

तो सौन्दर्य को ही अपना दर्शन बना लिया था और उसकी यह धारणा थी कि सौन्दर्य ही सत्य है और सत्य सौन्दर्य। सौन्दर्य पर अपनी असीम आस्था का प्रदर्शन करते हुए कीट्स ने लिखा है—

"A thing of Beauty is a joy for ever
Its loveliness increases, it will never
Pass into nothingness ...."

हिन्दी के छायावादी कवि भी सौन्दर्य-प्रेक्षक हैं, सुन्दरता में उन्हें अडिग विश्वास है। 'प्रसाद' तो सौन्दर्य को चेतना का वरदान मानते हुए लिखते हैं—

"वरदान चेतना का उज्ज्वल, सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं;
जिसमें अनन्त अभिलाषा के सपने सब जगते रहते हैं।"

पन्त ने स्वयं स्वीकार करते हुए लिखा है—'पल्लव-काल में मैं उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी-कवियों—मुख्यतः शेली, वर्डस्वर्थ, कीट्स और टेनीसन—से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ, क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीन-युग का सौन्दर्य-बोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवन-स्वप्न दिया है। रवि बाबू ने भी भारत की आत्मा को पश्चिम की, मशीन-युग की, सौन्दर्य-कल्पना में ही परिधानित किया है। पूर्व और पश्चिम का मेल उनके युग का स्लोगन भी रहा है। इस प्रकार मैं कवीन्द्र की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार करता हूँ।"[1] किन्तु पन्त की क्रमिक विकासमयी कवि-प्रतिभा के साथ-साथ उनका सौन्दर्य-बोध भी निरन्तर विकसित होता गया और एक रचना में उन्होंने लिखा—

"सुन्दर, शिव, सत्य
कला के कल्पित माप-मान,
बन गए स्थूल,
जन-जीवन से हो एक प्राण।
मानव-स्वभाव ही
बन मानव-आदर्श सुकर
करता अपूर्ण को पूर्ण,
असुन्दर को सुन्दर।"

विकसित होते-होते प्राकृतिक उपादानों में ही केवल सौन्दर्य-बोध करनेवाले कवि पन्त ने मानव को ही सर्वसुन्दर घोषित करते हुए कहा—

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर, मानव, तुम सबसे सुन्दरतम;
निर्मित सबकी तिल-सुषमा से तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम।

धीरे-धीरे "जीवन-क्रम" में तो कवि को 'जग-जीवन' ही सुन्दर दीखने लगा। सौन्दर्य उसे एक ऐसा तत्त्व दीख पड़ा, जो संसार के अणु-अणु में परिव्याप्त है और वह निम्न-लिखित शब्दों में फूट पड़ा—

---

१. आधुनिक कवि : पन्त—भूमिका।

उपर्युक्त नारी-सौंदर्य का अंकन रूप-सौंदर्य-अंकन है। किन्तु, जैसा कि हम जानते हैं, छायावाद में नारी-सौंदर्य का अंकन दो रूपों में हुआ है—रूप-सौंदर्य और भाव-सौंदर्य। रूप-सौंदर्य में नख-शिख आदि शरीरी अंगों का चित्रण मिलता है तथा भाव-सौंदर्य में लज्जा, मोह, प्रेम आदि भावात्मक वृत्तियों का आभास।

भावनात्मक वृत्तियों का अंकन 'प्रसाद' ने बहुत सफलता-पूर्वक किया है, और नारी-लज्जा के चित्रण में उनकी ये पंक्तियाँ अमर हैं—

तुम कनक-किरण के अन्तराल में
लुक-छिपकर चलते हो क्यों ?
नत-मस्तक गर्व वहन करते,
यौवन के घन रस-कण ढरते,
ओ लाज-भरे सौंदर्य बता दो,
मौन बने रहते हो क्यों ?

तुलना कीजिए:—

"And if she met him, though she smiled no more,
She looked a sadness sweater than her smile,
As if her heart had deeper thoughts in store
She must not own, but cherish'd more the while
For that compression in its burning core;"[1]

किन्तु इन संयमित चित्रणों के बीच कहीं-कहीं छायावादी और रोमान्टिक कवियों ने नारी-सौंदर्य एवं प्रेम का नग्न वर्णन भी किया है, जो रीतिकाल की शृंगारिक कविताओं से किसी स्थिति में कम नहीं कही जा सकती। पंत की पंक्तियाँ हैं:—

मंजरित आम्र-वन छाया में हम प्रिये, मिले थे प्रथम बार,
ऊपर हरीतिमा नभ गुंजित, नीचे चंद्रातप घना स्फार !
× × ×
तुमने अधरों पर धरे अधर, मैंने कोमल वपु धरा गोद,
था आत्म समर्पण सरल, मधुर, मिल गए सहज मारुतामोद !

इन पंक्तियों को पढ़ते ही बाइरन की निम्न-लिखित पंक्तियों की याद स्वतः मानस-पट पर खिच जाती है:—

"And Julia sate with Juan, half embraced
And half retiring from the glowing arm,
Which trumbled like the bosom where it was placed;
Yet still she must have thought there was no harm,
Or else it was easy to withdraw her waiste;
But then the situation had its charm,......"
(Don Juan, Book I, Stanza cxv)

---

१. Don Juan, stanza Lxxii canto I Byron,

अथवा उसी कवि की निम्न-लिखित पंक्तियाँ भी इस दृष्टि से पठनीय हैं—

Thoy look upon each other, and their eyes
Gleam in the moonlight; and her white arm clasps
Round Juan's head, and his around her lies
Half buried in the tresses which it grasps;
She sits upon his knee, and drinks his sights,
He hers, until they end in broken gasps;
And thus they form a group that's quite antique,
Half-naked, loving, natural, and greek"

(Don Juan, Bk. II stanza c x c iv)

उपर्युक्त उद्धरणों से नारी के नग्न सौंदर्य एवं नायक-नायिका के प्रेम-व्यापार का अवगुंठन-हीन चित्र है। नारी-चित्रण में यहाँ तक तो छायावादी और रोमान्टिक कवियों में साम्य है; किन्तु अंग्रेजी के रोमान्टिक कवि, ऐसा निःसंकोच कहा जा सकता है, इन विषय सीमाओं तक ही आबद्ध रहे। छायावादी कवियों ने नारी-समस्या पर भी विचार किया है। गुप्तजी द्वारा वर्णित नारी का रूपमात्र "आँचल में है दूध और आँखों में पानी" का था; पन्त चिरवन्दिनी नारी को मुक्त करने का आग्रह करते हैं:—

'मुक्त करो नारी को मानव चिरवन्दिनि नारी को,
युग-युग की निर्मम कारा से जननि, सखी, प्यारी को।"

सौन्दर्यानुरक्ति की यह भावना छायावादी और रोमान्टिक कवियों की रचनाओं में समान रूप से बालावस्था के प्रति प्रगाढ़ अनुराग के रूप में भी ध्वनित हुई है। दोनों युग के कवियों ने बालापन को जीवन का स्वर्ण-काल मानकर उसकी प्राप्ति के लिए उत्कट आकांक्षा प्रदर्शित की है। बचपन एक ऐसा काल है, जिसमें मनुष्य संसार की असत्यताओं से दूर ईश्वरीय आभा के समीप रहता है, और उसकी उपस्थिति वह अणु-परमाणु में भी देखता है। एक बालक सर्वदा अपने को सुन्दरताओं के बीच पाता है। इसी कारण दोनों युग के कवियों को बालापन बहुत अधिक प्रिय है। पन्त की आकांक्षा है—

चित्रकार! क्या करुणाकर फिर मेरा भोला बालापन
मेरे यौवन के अंचल में चित्रित कर दोगे पावन?
जब कि कल्पना की तंत्री में खेल रहे थे तुम करतार!
तुम्हें याद होगी, उससे जो निकली थी अस्फुट झंकार?

बचपन में ईश्वरीय आभा का दर्शन कवि को बार-बार होता है—इसी आशय को पन्त ने उपर्युक्त पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है। वर्डस्वर्थ ने भी कुछ इसी प्रकार की भावना को और भी स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया है—

"Heaven lies about us in our infancy!
Shades of the prison—house begin to close
Upon the growing Boy,
But he beholds the light, and whence it flows,
He sees it in his joy!"

बचपन मानव-जीवन की एक ऐसी अवस्था है, जिसमें मनुष्य मुक्त रहता है। जीवन की भिन्न-भिन्न दुर्दमनीय समस्याएँ उस समय मानव को बंदी नहीं कर पातीं। संकट, संघर्ष और संताप से पृथक् वह अपनी रमणीय दुनिया में सानन्द शान्ति एवं सुख की वीणा के रंध्रों पर चिर-मधुर तान फूँकता रहता है। इस निर्विघ्न एवं सुख-शान्ति-स्नात जीवन के प्रति एक भावुक कल्पनाजीवी कवि हृदय का आकृष्ट होना कोई अचरज की बात नहीं। 'प्रसाद' ने इस अल्हड़ बचपन के प्रति अपने अनुराग को व्यक्त करते हुए बड़ी मार्मिक पंक्तियों की रचना की है :—

तुम्हारी आँखों का बचपन !
खेलता था जब अल्हड़ खेल,
अजिर के उर में भरा कुलेल,
हारता था, हँस-हँसकर मन,
आह रे, वह व्यतीत जीवन !

बालापन के प्रति अटूट प्रेम को प्रदर्शित करते हुए उससे दूर हटा हुआ कवि अपने हृदय की वेदना की भी अभिव्यंजना करता है। बाइरन ने भी इसी भाव को निम्न-लिखित रूप में व्यक्त किया है:—

"There is not a joy the world can give line that it takes away,
When the glow of early thoughts declines in feelings dull decay;
It is not on youth's smooth check the blush alone, which fades so fast,
But the tender bloom of heart is gone, eve youth itse'f be past."

बाल्यावस्था की पवित्र अल्हड़ता, चिर सुखमयी घड़ियाँ, सरलता, निष्कपटता एवं अपनापन की भावना युवावस्था के आगमन के साथ ही प्रात के स्वप्न-सी द्रुत गति से तिरोहित हो जाती है। मानव-जीवन की वह स्वर्णावस्था निश्चय ही वंदनीय है और छायावादी तथा रोमान्टिक कवियों ने एकस्वर से उसकी वंदना के गीत गाए हैं।

जीवन के प्रति इन कवियों का दृष्टिकोण दार्शनिक था। वे असंतुष्ट असीम अभिलाषा को जीवन की समस्त विपदाओं एवं दुखों का मूल मानते थे। मानव-जीवन के विटप पर सुख-दुख के पतझड़-बसंत आते-जाते रहते हैं। मनुष्य के लिए चिर सुख अथवा चिर दुख अग्राह्य एवं अनपेक्षित है। सुख-दुख के सम्मिश्रण से ही मनुष्य-जीवन सार्थक एवं सुखद बन सकता है, अन्यथा कदापि नहीं। पन्त की प्रसिद्ध पंक्तियाँ :—

"मैं नहीं चाहता चिर सुख, मैं नहीं चाहता चिर दुख,
सुख-दुख की आँख-मिचौनी, खोले जीवन अपना मुख !"

मानव-जीवन में सुख-दुख के संतुलित समन्वय को ही प्रधानता देती है। पन्त की इस भावना की तुलना ब्लेक की निम्न-लिखित पंक्तियों से कीजिए :—

Joy and woe are woven fine,
A clothing for the soul divine;
Under every grief and pine
Runs a joy with silken twine.
It is right it should be so;
Man was made for joy and woe;
And when this we rightly know,
Safely through the world we go."

विषय और भाव-क्षेत्र में छायावादी और रोमान्टिक काव्य-रचनाओं की इन समान प्रवृत्तियों पर दृष्टि-निक्षेप करने के पश्चात् हम दोनों की एक प्रमुख असमानता की ओर भी दृष्टि दौड़ाएँ। प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा ने लिखा है, "रोमान्टिक भाव-धारा में बहुत कुछ साम्य रहने पर भी उसमें और छायावाद में एक तात्त्विक अन्तर है—जहाँ रोमान्टिक साहित्य में हमें पूर्ण उल्लास, आशावादिता और सप्राणता के दर्शन होते हैं, वहाँ छायावाद में हम पाते हैं अवसाद, नैराश्य और निष्प्राणता। यह एक विचित्र विरोधाभास है, जिसका आलोचकों ने, भिन्न-भिन्न रूप से, समाधान करने की चेष्टा की है।"[1] इस प्रश्न को लेकर आलोचकों के बीच दो दल परिलक्षित होते हैं। पहले दल के आलोचकों का कथन है कि छायावाद में अवसाद-जनित भावनाओं का आविर्भाव असहयोग-आन्दोलन के विफल होने का ही परिणाम है। भारतवर्ष में जब असहयोग-आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ, तो भारतीय जनता आशा-संवलित थी कि इस माध्यम से वह निश्चय-पूर्वक फिरंगियों को भारत-भूमि से खदेड़ देने में सफलता प्राप्त करेगी। किन्तु जब यह आन्दोलन भी पूर्ण रूप से निष्फल साबित हो गया, तब भारतीय जनता नैराश्य-सागर में डूब गई। भारतीय जन-जीवन की यही अवसाद-पूर्ण निराशा छायावादी कवियों के हृदय को आक्रान्त कर उनकी काव्य-रचनाओं में प्रतिध्वनित हुई है। परन्तु आलोचकों का एक दूसरा दल इस सिद्धांत को सर्वथा भ्रम-पूर्ण मानता है। उसका कथन है कि छायावादी कवि, यद्यपि वे भी बाह्य वातावरण से प्रभावित होते थे, अधिकतर व्यक्तिवादी कवि थे। वे आत्मनिष्ठ भावनाओं की अभिव्यक्ति में ही संलग्न रहते थे। इसी कारण उन्होंने असहयोग-आन्दोलन की असफलता-जनित अवसाद-पूर्ण निराशा को अपनी कविता में स्थान दिया हो—ऐसा मानना कदापि युक्ति-संगत नहीं। छायावादी कवि व्यक्तिवादी थे, और उन्होंने अपने निजी जीवन की निराशा और अवसाद को ही अपने काव्य का विषय बनाया है। उनके निजी जीवन से विरह, दुख और अवसाद ही उनकी पंक्तियों में बोल उठे हैं। उनकी वेदना आत्मनिष्ठ है, उनका अवसाद निजी जीवन की उपज है। भारतीय जन-जीवन की व्यापक निराशा ने उनके हृदय को आन्दोलित नहीं किया और न उसने उनके काव्य में अभिव्यक्ति ही पाई है। इस स्थल पर मेरा अभीष्ट इस विवाद-पूर्ण विषय को छोड़कर इसका पर्यवेक्षण करना है कि क्या वास्तव में रोमान्टिक कवियों का काव्य केवल उल्लास, सप्राणता एवं आशा-संवलित है? क्या उसमें वेदना और विषाद की छाया भी नहीं आ

---

१. छायावाद और प्रगतिवाद : प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा।

पायी है ? जैसा कि बहुत से आलोचकों का मत है, जिन्होंने इस प्रश्न पर विचार किया है, रोमान्टिक पुनर्जागरण-काल की कविता केवल उल्लास एवं आह्लाद की ही अभिव्यक्ति है। किन्तु, जैसा कि मेरा विश्वास है, रोमान्टिक कविता में यदि एक ओर उल्लास है, तो दूसरी ओर विषाद भी। एक ओर आशा की स्वर्ण-प्रात मुस्कुरा रही है, तो दूसरी ओर निराशा की कालिमा भी। आप वर्ड्सवर्थ, कोलरिज, कीट्स, शेली, बाइरन आदि कवियों की रचनायें पढ़ जायँ। आप पाएँगे कि उनमें आशा-निराशा, दुख सुख, अश्रुहास तथा विषाद आह्लाद की मिश्रित वाणी प्रतिध्वनित हुई है। समस्त छायावादी काव्य में केवल विषाद और निराशा की काली रात ही दृष्टिगत नहीं होती। मैं मानता हूँ कि महादेवी प्रधानतः वेदनावादी कवयित्री ही हैं। किन्तु क्या निराला, पन्त और प्रसाद को पूर्णतः वेदनावादी कवि कहा जा सकता है ? कदापि नहीं। मैं यह नहीं कहता कि इन कवियों ने विषाद एवं दुख-पूर्ण कविताएँ लिखी ही नहीं। मेरी तो धारणा यह है कि यदि एक ओर उन्होंने निराशा और दुख की भावनाओं की अभिव्यक्ति की है, तो दूसरी ओर उनकी कविताओं में आनन्द और आह्लाद की भावनाएँ भी सन्निहित हैं। यह बात दूसरी है कि आधिक्य किसका है ? यदि छायावादी काव्य में वेदना का बाहुल्य है, तो मैं यह भी मानने को प्रस्तुत नहीं कि उसकी मात्रा अत्यधिक है। अतः मेरी दृष्टि में रोमान्टिक भाव-धारा और छायावादी कविताओं में सुख-दुख अथवा आशा-निराशा का केवल 'मात्रिक अंतर' है। दोनों प्रकार की भावनाएँ दोनों युग के कवियों ने अभिव्यक्त की हैं। किन्तु यदि रोमान्टिक कविता में आशा और आह्लाद की अधिकता है, तो छायावादी कविताओं में इनकी अभिव्यक्ति कुछ कम मात्रा में हुई है। अन्तर केवल इतना है—इसके आगे कुछ भी नहीं।

अन्त में एक बात और। जिस प्रकार छायावादी कवियों ने उपनिषद्, वेद, सूर, तुलसी, मीरा आदि पुस्तकों एवं कवि-कवयित्रियों से प्रेरणा ग्रहण की थी, उसी प्रकार रोमान्टिक कवि भी स्पेंसर, शेक्सपियर, मार्लो, डन आदि कवियों से ही प्रभावित हुए थे। कहने का तात्पर्य यह कि दोनों युग के कवियों ने अपने पूर्व के कवियों एवं काव्य से प्रेरणा ली है। इस प्रकार यदि दोनों ने पुरानी परम्परा को ध्वस्त किया है, तो नई दूसरी परम्परा की नींव भी डाली है।

इस प्रकार छायावादी और रोमान्टिक कवियों पर विभिन्न पहलुओं से विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनों काव्य-धाराओं में समानताएँ अधिक हैं, असमानताओं की मात्रा बहुत कम है। दोनों ने समपरिस्थितियों में ही जन्म ग्रहण किया और दोनों के काव्य-लक्षणों में भी बहुत कुछ साम्य ही है। कल्पना की उन्मुक्त उड़ान, आत्मनिष्ठ भावनाओं का आकलन एवं प्रकटीकरण, बंधनहीनता, सूक्ष्मता आदि तत्त्व दोनों काव्य-धाराओं में लक्षित हैं। प्रकृति, नारी, सुख-दुख, जीवन, बचपन आदि विषयों पर भी उनके विचार बहुत दूर तक मिलते-जुलते हैं। किन्तु, इतना होने पर भी, हम यह नहीं कह सकते हैं कि छायावाद रोमान्टिक कविता का हिन्दी-संस्करण है।

यह अतिशयोक्ति है और सत्य से बहुत दूर। मुझे यह मान्य है कि कुछ दूर तक रोमान्टिक कवियों ने छायावाद को प्रभावित एवं अनुप्राणित किया; किन्तु यह मुझे कदापि मान्य नहीं कि छायावादियों ने पूर्णतः उनका अनुकरण ही किया है। (प्रभावित एवं अनुप्राणित होना और बात है, अनुकरण करना और बात।) यदि रोमान्टिक कवियों पर अंग्रेजी-भाषा-भाषियों को गौरव है, तो पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में भी अमर हो गए हैं। उनका काव्य निश्चय ही हिन्दी के लिए चिर गौरव-पूर्ण भारती है।

छायावाद और रहस्यवाद

छायावाद और रहस्यवाद को लेकर विगत दो दशकों में इतना अधिक ऊहापोह हुआ है कि यह विषय आज और भी संश्लिष्ट एवं दुरूह बन गया है। समालोचक, कवि और पाठक के बीच उभयभाषिए का काम करता है। उसका पुनीत कर्तव्य किसी नूतन काव्य-धारा अथवा कठिन काव्यांश को अधिक स्पष्ट एवं बोधगम्य रूप से पाठकों के सम्मुख उपस्थित करना है। किन्तु छायावाद और रहस्यवाद के व्याख्या क्रम में, कुछ वैयक्तिक सीमित धारणाओं के फलस्वरूप और कुछ विषय की अस्पष्टता एवं दुर्गम्यता के प्रभावत:, अधिकांश आलोचकों ने विषय को स्पष्ट करने के स्थान पर उसे और भी कठिनगम्य बना दिया है।

प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् हिन्दी में जो नूतन काव्य-स्रोत प्रसरित हुआ, उस पर तद्युगीन आलोचकों ने स्पष्टता का आरोप करते हुए उसे छायावाद की संज्ञा से अभिहित किया। यह नाम देकर उन लोगों ने मानों इसकी निन्दा ही की थी। किन्तु नई भाव-धारा के कवियों ने इसका विरोध नहीं किया और "इस प्रकार स्पष्ट, धूमिल या छाया-सी लगनेवाली कविता को भी 'छायावाद' कहा गया, प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत की व्यंजना भी छायावाद का लक्षण बनी, और प्रकृति को विश्वात्मा की छाया मानकर उसके काव्यगत व्यवहार में भी छायावाद की सृष्टि होने लगी।"[1] दुर्भाग्यवश उसी समय कुछ ऐसे आलोचक भी निकल आए, जो विरोधी आलोचकों द्वारा संकेतित दोषों को ही काव्य का प्रमुख गुण मानने को प्रस्तुत हो गए। विरोधी आलोचकों ने नवीन काव्यधारा की अस्पष्टता की तीक्ष्ण आलोचना की थी। नवीन आलोचकों ने अस्पष्टता को ही काव्य का सर्वप्रधान तत्त्व घोषित किया।

"लोग कहते हैं कि कविता एकदम स्पष्ट होनी चाहिए। मैं कहना चाहता हूँ श्रेष्ठ कविता का पहला गुण अस्पष्टता है। इस वस्तु-जगत् की स्पष्ट तथा व्यक्त बातों को अस्पष्ट तथा अव्यक्त रूप प्रदान करने के लिए ही कविता की सृष्टि हुई है, अन्यथा उसका कोई उद्देश्य नहीं रह जाता। यदि स्पष्ट ही बात कहनी है, तो कविता की आवश्यकता ही क्या है? साधारण गद्य की सरल भाषा में यह और भी अच्छी तरह से कही जा सकती है।"[2]

किन्तु इन तर्कों को पढ़कर यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि पूर्वाग्रह के कारण यहाँ आलोचक सम्यक् निष्कर्ष को प्राप्त करने में सर्वथा अक्षम रहा है। आलोचक को छायावादी कविताओं को श्रेष्ठ बताना है; अतएव वह उसके दुर्गुणों को भी प्रशस्ति करने में नहीं

---

१. छायावाद और रहस्यवाद : श्रीविश्वनाथसिंह। (देखिए—'छायावाद और प्रगतिवाद' सं० देवेन्द्रनाथ शर्मा)

२. काव्य में अस्पष्टता तथा रूपक रस : श्रीइलाचन्द्र जोशी।

हिचकता। किन्तु एक सन्तुलित चिंतक की दृष्टि से यह बात कदापि छिपी नहीं रह सकती कि अस्पष्टता काव्य का एक दोष होने के स्थान पर गुण कदापि नहीं बन सकती। छायावादी काव्य की अस्पष्टता उसका दोष है; किन्तु इसी दोष की आड़ लेकर कोई इसका सम्यक् विश्लेषण करने में च्युत होने की सोचे, तो यह भारी अपराध ही होगा। छायावाद में अस्पष्टता है; इसी कारण यदि हम यह चाहें कि इसको अन्य वादों से पृथक् कर हम नहीं देखें अथवा छायावाद और दूसरे 'वादों' के अन्तर का विश्लेषण न करें, तो निश्चय-पूर्वक यह हमारी भूल ही होगी। इसी कारण इस निबंध में मेरा अभीष्ट छायावाद और रहस्यवाद के बीच के अन्तरों को स्पष्ट कर उनका विश्लेषण करना है।

आलोचकप्रवर रामचन्द्र शुक्ल ने एकस्वर से छायावाद और रहस्यवाद को समानार्थी घोषित किया है। शुक्लजी ने अपनी इस धारणा को सही सिद्ध करने के लिए भगीरथ प्रयत्न किया है। उन्होंने यह बताने की चेष्टा की है कि हिन्दी के छायावादी कवि प्रधानतः अंग्रेजी के रोमान्टिक कवियों तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं से प्रभावित थे। अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियों में रहस्यवादी (mystical) भावना का सम्मिश्रण था, और इंगलैंड में दोनों को समान माना जा चुका था। इसके उपरान्त, जैसा कि शुक्लजी ने लिखा है, "गुप्तजी और मुकुटधर पांडेय आदि के द्वारा यह स्वच्छन्द नूतन धारा चली ही थी कि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की उन कविताओं की धूम हुई, जो अधिकतर पाश्चात्य ढाँचे का आध्यात्मिक रहस्यवाद लेकर चली थी। पुराने ईसाई संतों के छायाभास (Phantasmata) तथा यूरोपीय काव्य-क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (Symbolism) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कविताएँ 'छायावाद' कही जाने लगीं। यह 'वाद' क्या प्रकट हुआ, एक बने-बनाए रास्ते का दरवाजा खुल पड़ा और हिन्दी के कुछ नए कवि उधर एकबारगी झुक पड़े।"[1] इस प्रकार हिन्दी के छायावादी कवियों पर प्रभाव डालनेवाली दोनों काव्य-प्रवृत्तियों में छायावाद और रहस्यवाद का सम्मिश्रण था। कदाचित् इसी कारण शुक्लजी छायावाद और रहस्यवाद में कोई अन्तर नहीं मानते। एक सुधी विचारक ने बहुत उचित कहा है कि—"पाश्चात्य रहस्यवादी कविताओं की उद्भावना छाया-दृश्यों के आधार पर मानकर उन्होंने (शुक्लजी ने) यह निष्कर्ष निकाला कि 'छाया' और 'रहस्य' अथवा हिन्दी के 'छायावाद' और 'रहस्यवाद' समानार्थी हैं। ईरानी सूफियों की व्यक्त को अव्यक्त का प्रतिबिंब (छाया) मानकर जो रहस्य-साधना चलती थी, उसने भी उन्हें छायावाद को रहस्यवाद का पर्याय बनाने में काफी सहायता पहुँचायी होगी।"[2] लेकिन यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय तो हम यह निस्संकोच कह सकते हैं कि शुक्लजी की यह धारणा सर्वथा भ्रामक है। छायावाद और रहस्यवाद

---

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास : पं०रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ६२०-२१।

२. छायावाद और रहस्यवाद : श्रीविश्वनाथसिंह। (देखिये—'छायावाद और प्रतिवाद')

को पर्याय मानना एक अक्षम्य दोष है। दोनों 'वादों' के बीच कतिपय मौलिक वैषम्य है—यद्यपि कुछ साम्य भी है। किन्तु ये वैषम्य इतने महत्त्व-पूर्ण हैं कि यदि उन पर गंभीरता-पूर्वक विचार किया जाय, तो कोई भी सुधी विचारक छायावाद और रहस्यवाद को समानार्थी कदापि नहीं घोषित कर सकता।

(शुक्ल जी के बाद आलोचकों की यह भ्रम कुहेलिका दूर हुई। उन लोगों ने छायावाद और रहस्यवाद के अन्तरों का उद्घाटन प्रारम्भ किया और उनकी सूक्ष्म विवेचना भी। उन लोगों ने यह बताया कि बाह्य साम्य के होते हुए भी मूलतः छायावाद और रहस्यवाद दो विभिन्न काव्य-प्रवृत्तियाँ हैं। आत्मनिष्ठ भावनाओं का प्रकाशन दोनों में होता है; सूक्ष्मता दोनों की विशेषता है, प्रकृति-प्रेम दोनों 'वाद' के कवियों में स्पष्ट रूप में लक्षित है।) लेकिन, जैसा कि मैंने कहा है, ये साम्य बाह्य स्तर पर ही दृष्टिगत होते हैं। गहराई में जाकर देखने से परिधान की समानता रहने पर भी आत्मा के वैषम्य की ओर ध्यान आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता।

(श्रीसद्गुरुशरण अवस्थी ने रहस्यवाद और छायावाद के अन्तर पर निजी दृष्टिकोण से विचार करते हुए यह लिखा है कि "रहस्यवाद का सम्बन्ध सीधे वस्तु-विधान से रहता है, अभिव्यंजना-विधान से नहीं। परन्तु छायावाद का सम्बन्ध केवल अभिव्यंजना की विचित्रता और दुरूह भावगम्यता से रहता है। आज की छायावादी कविता अभिव्यंजन की अनेकरूपता को ही सबसे बड़ी विशेषता रखती है। वह केवल उक्ति-वैचित्र्य पर टिकी है; अतएव उसका छायावादी अभिधान सार्थक है।"[1] श्रीअवस्थीजी द्वारा संकेतित छायावाद और रहस्यवाद के बीच का यह अन्तर यों तो उचित प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में यह धारणा मूलतः त्रुटि-पूर्ण है। (विद्वान् समीक्षक ने यह बताने की चेष्टा की है कि रहस्यवाद वस्तु-विधान से सम्बन्धित है और छायावाद अभिव्यंजना वैचित्र्य से।) किन्तु मेरी शंका यह है कि क्या कोई काव्य-मात्र वस्तु-विधान पर अथवा केवल अभिव्यंजना-वैचित्र्य पर ही स्थिर हो सकता है? स्थिर होने की तो बात दूर रही, जैसा कि मैं समझता हूँ, ऐसी स्थिति में काव्य का सृजन ही सम्भव नहीं है। छायावादी कवियों ने प्रकृति, जगत्, मानव आदि विषयों पर तथा प्रेम, वेदना, जिज्ञासा, कौतूहल आदि हृदय की अमूर्त्त भाव-तरंगों पर कविताएँ की हैं। ऐसी स्थिति में क्या हम यह कह सकते हैं कि छायावादी कविता में विषय है ही नहीं, केवल अभिव्यंजना वैचित्र्य की ही सुन्दर छटा है? ऐसा मत देना कदापि युक्ति-युक्त नहीं कहा जा सकता। अभिव्यंजना आखिर किसी वस्तु अथवा अमूर्त्त भाव की ही होती है; वह शून्य में नहीं [illegible] सकती। इस [illegible] [illegible]थी'जी की यह धारणा कि छायावाद केवल अभिव्यं[illegible] [illegible] नाम है, सर्वथा तर्कहीन एवं ग़लत है। किन्तु इस[illegible] प्रश्न [illegible] अपेक्षित है कि आखिर इस प्रकार की विचार-लहरि[illegible]।

१. रहस्यवाद और हिन्दी में उस[illegible]

उठीं कैसे ? अवस्थीजी की छायावाद-सम्बन्धी यह धारणा शुक्लजी की मान्यताओं से पूर्णतः साम्य रखती है। शुक्लजी ने भी यह स्पष्ट कहा है कि "तात्पर्य यह कि छायावाद जिस आकांक्षा का परिणाम था, उसका लक्ष्य केवल अभिव्यंजना की रोचक प्रणाली का विकास था ...... ।"[१] शुक्लजी की यह धारणा थी कि क्रोचे के अभिव्यजनावाद (Expressionism) की स्पष्ट छाया छायावादियों पर पड़ी है। शुक्लजी यह भी मानते थे कि क्रोचे काव्य के विषय को कोई महत्त्व नहीं देता था; उसकी दृष्टि में अभिव्यंजना ही सब कुछ थी। क्रोचे ने स्पष्ट कहा है कि "aesthetic fact is form and nothing but form." शुक्लजी ने यह मान लिया है, और यही पर उन्होंने सबसे बड़ी भूल की है कि क्रोचे ने केवल बाह्य बेल-बूटों के सौन्दर्य को ही अभिव्यंजना कहा है। किन्तु क्रोचे इसे केवल भौतिक अभिव्यंजना ही कहता है। उसने एक स्थान पर अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—"When we have mastered the internal word, when we have vividly and clearly conceived a figure or a statue, when we have found a musical theme, expression is born and is complete, nothing more is needed... ...what we, then, do is say aloud what we have already said within, sing aloud what we have already sung within."[२] अतः इस उद्धरण से स्पष्ट है कि हम अभिव्यंजना बाह्य रूप में उन आन्तरिक मनोभावों एवं विचार-स्फुरणों की करते हैं, जो हमारे मन में स्फुरित होते रहते हैं। तदुपरान्त क्रोचे की अभिव्यंजना मनुष्य के प्रातिभज्ञान (Intuition) द्वारा अनुशासित है। बिना इसके उसकी अभिव्यंजनावादी विचार-धारा निष्प्राण एवं निरर्थक है। एतदर्थ हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि क्रोचे ने भी किसी भी प्रकार की अभिव्यंजना के हेतु वस्तु-विधान की अनिवार्यता पर भी ध्यान दिया है। विद्वान् आलोचक श्रीरामचन्द्र शुक्लजी की दृष्टि से दुर्भाग्यवश यह तथ्य प्रच्छन्न रह गया और उन्होंने छायावाद को केवल अभिव्यंजना-वैचित्र्य ही घोषित कर दिया। इसी धारणा की छाया श्री अवस्थी जी को भी आक्रान्त किए बिना नहीं रह सकी और उन्होंने ने भी इसी विचार का पिष्टपेषण किया। अतः छायावाद-सम्बन्धी उनकी यह धारणा निर्मूल एवं भ्रामक बन गई।

(रहस्यवाद की व्याख्या करते हुए श्री अवस्थी जी ने कहा कि यह वाद केवल वस्तु-विधान से सम्बन्धित है; इससे और अभिव्यंजना से कोई सम्बन्ध नहीं।) इस धारणा की निर्मूलता भी स्वतः सिद्ध है, क्योंकि वस्तु-विधान की अभिव्यंजना हुए बिना काव्य की सृष्टि असम्भव है। जहाँ हम काव्य की बात करते हैं, वहाँ वस्तु विधान के साथ-साथ अभिव्यंजना की चर्चा भी अनिवार्यतः करते ही हैं। वास्तव में रहस्यवाद में अभिव्यंजना की समस्या

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ६९० ।
२. Aesthetic as a Science of expression and general linguistic : Bendetto croce.

बहुत जटिल है। "रहस्यवादियों का कहना है कि उस 'परम सत्ता' की प्राप्ति ऊपरी मस्तिष्क से नहीं हो सकती, क्योंकि वह तो लौकिक सत्ता और भेद-भावना (Spatial conception) में ही लीन रहता है। वे मनुष्य की दूसरी गुप्त शक्ति प्रातिभज्ञान (Intuition) की ओर संकेत करते है। यह प्रातिभज्ञान रहस्यवादियों का प्रधान साधन और रहस्यवाद का प्रधान अंग है। साधना के कुछ उपाय—जिनमें ध्यान प्रमुख है—चेतनावस्था में ऐसा परिवर्तन उपस्थित कर देते है कि जिससे यह सोयी हुई शक्ति जग पड़ती है। ज्यों-ज्यों इस शक्ति का प्रवेश चेतन जीवन मे होता जाता है, त्यों-त्यों मनुष्य रहस्यवादी बनता जाता है।"[1] इस प्रकार (रहस्यवाद का लक्ष्य परम सत्ता का दर्शन— एक आध्यात्मिक उद्देश्य है जिसका साधन भी आध्यात्मिक है) यदि कोई इस ध्येय की प्राप्ति इस आध्यात्मिक और सूक्ष्मातिसूक्ष्म साधन के द्वारा कर भी लेता है, अर्थात् यदि उसे उस परम सत्ता की झलक मिल भी जाती है— तो वह उसके लिए गूंगे का गुड़ ही सिद्ध होता है। अत: इस सवेदना और अनुभूति की प्रेषणीयता अभिव्यंजना के सहारे ही सम्भव है। यह अभिव्यजना भी ऐसे बाह्य, स्थूल एवं बोधगम्य प्रतीकों के सहारे होनी चाहिए, जिससे रहस्यवादियों की अनुभूति का आभास-मात्र भी पाठकों को अवश्य मिल जाय। इस प्रकार हम देखते हैं कि अभिव्यजना की समस्या रहस्यवादियों के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। रहस्यवादियों ने, जैसा कि डॉ० केसरीनारायण शुक्लजी ने कहा है और जो ठीक भी है, प्रमुखत: तीन प्रकार के प्रतीकों की योजना की है :—

(१) इस संसार को सराय मानकर परमात्मा की खोज को एक यात्रा के प्रतीक में कतिपय रहस्यवादियों ने बाँधा है। 'निराला' की निम्न-लिखित कविता मे :—

डोलती नाव, प्रखर है धार,
सँभालो जीवन-खेवनहार !

तिर-तिर फिर-फिर
प्रबल तरंगों मे
घिरती है,
डोले पग जल पर
डगमग डगमग
फिरती है।

टूट गई पतवार—
जीवन-खेवनहार !

भय मे हूँ तन्मय
थरथर कम्पन
तन्मयता,

---

१. आधुनिक काव्य-धारा : डॉ० केसरीनारायण शुक्ल, पृ० २६५-६६.

छन-छन ... में
बढ़ती ही जाती है
अतिशयता,

पतवार अपार,
जीवन-खेवनहार !

अथवा पन्त' की निम्नांकित पंक्तियों में :—

"घिर-घिर होते मेघ निछावर,
झर-झर सर में मिलते निर्झर,
लिए डोर वह अग-जग की कर,
हरता तन-मन-प्राण।"

अथवा 'प्रसाद' की नीचे दी हुई पंक्तियों में :—

देवलोक की अमृत-कथा की माया,
छोड़ हरित कानन की आलस छाया;
विश्राम माँगती अपना—
जिसका देखा था सपना।

तथा मोहनलाल महतो 'वियोगी' द्वारा रचित निम्न-लिखित काव्यांश में भी :—

"यद्यपि मैं हूँ लिए पीठ पर जीवन का गुरु भार ;
तरी डूबने का यदि भय हो कहीं यहीं दूँ डार।
हाथ जोड़ता हूँ न सताओ तुम हो बड़े उदार ;
मुझे अब पहुँचा दो उस पार।"

एक जीव का उस परमात्मा की 'रहस्यात्मक खोज' की ही अभिव्यंजना प्रतीकों के सहारे हुई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि परम सत्ता की खोज की सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं रहस्यात्मक अनुभूति को कवि ने सहज-ग्राह्य बनाने के निमित्त ही उसे भौतिक यात्रा के स्थूल प्रतीक में बाँधा है। यह प्रतीक-योजना सूक्ष्म भावनाओं की प्रेषणीयता के लिए ही की गई है। अतः अब यह स्पष्ट है कि रहस्यवादी कवियों का सम्बन्ध अभिव्यंजना से भी है और श्री अवस्थी जी की धारणा भ्रामक है।

(२) रहस्यवादी कवियों ने एक दूसरे प्रकार की भी प्रतीक-योजना की है। उनका कथन है कि उस असीम सत्ता का वास-स्थान उनका हृदय ही है। इसलिए उसे बाह्य संसार मे नही खोज कर निज उन्नति के द्वारा ही उसकी प्राप्ति के लिए वे आतुर रहते हैं। "ऐसे रहस्यवादियों का जीवन बाह्य अन्वेषण न होकर आंतरिक परिवर्तन बन जाता है। इनके प्रिय प्रतीक विकास तथा परिवर्तन के दृश्यों से चुने जाते हैं।"[1] 'निराला' ने इसी ओर संकेत करते हुए लिखा है कि "पास हीरे हीरे की खान, खोजता कहाँ और

१. आधुनिक काव्य-धारा : डा० केसरीनारायण शुक्ल, पृष्ठ २६७।

नादान" तथा नेपाली की निम्न-लिखित पंक्तियों में भी ऐसी ही भावना का प्रकटन हुआ है--

'मैं तो पृथ्वी पर पड़ा लोह, बस बाट तुम्हारी रहा जोह ;
तुम पारस कर दोगे कंचन, तुम कब समझोगे मेरे मन।"

पन्त के नीचे लिखे काव्यांश से भी कवि-हृदय की इसी प्रकार की भावना अभिव्यंजित हुई है –

जग के उर्वर आँगन में बरसो ज्योतिर्मय जीवन !
छू-छू जग के मृत रज-कण कर दो तृण-तरु में चेतन
मृन्मरण बाँध जो जग का दे प्राणों का आलिंगन !

यहाँ भी इतना कह देना आवश्यक है कि इन प्रतीकों की खोज के मूल में भी कवि-मानस को आन्दोलित करनेवाली अभिव्यंजना की समस्या ही है। अत: अवस्थीजी की धारणा यहाँ भी त्रुटियुक्त ही साबित होती है।

(३) रहस्यवादियों ने एक तीसरी प्रतीक-योजना को भी अपनाया है, जिसे 'आत्मा के विवाह' का प्रतीक कहा जा सकता है। कबीर ने भी अपने को राम की बहुरिया कह-कर इसी प्रतीक के सहारे अपनी रहस्यात्मक अनुभूति की अभिव्यंजना की थी। विवाह का यह प्रतीक आधुनिक हिन्दी-रहस्यवादी कवियों में अपेक्षाकृत कम दर्शित होता है। मीरा के भजनों में अथवा ताज की ही कविताओं में ऐसे प्रतीकों की योजना बहुत अधिक प्राप्त होती है। जयदेव के अमर काव्य में भी प्रकारान्तर से इसी प्रतीक का प्रयोग हुआ है। किन्तु आजकल ऐसे प्रतीक का प्रयोग बहुत कम हो गया है। केवल आधुनिक कवयित्री महादेवी वर्मा ने ही कहीं-कहीं इस प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया है। उनकी नीचे उद्धृत पंक्तियों में इसी भावना का दर्शन होता है—

"नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ।
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ।
फूल को उर में छिपाए विकल बुलबुल हूँ।
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ।
दूर तुमसे हूँ अनन्त सुहागिनी भी हूँ।"

उदाहरण के लिए नीचे लिखी पंक्तियों को भी पढ़ा जा सकता है—

"सखि, मैं हूँ अमर सुहाग-भरी !
प्रिय के अनन्त अनुराग-भरी।
किसको त्यागूँ किसको माँगूँ,
है एक मुझे मधुमय विषमय;
मेरे पद छूते ही होते
काँटे, कलियाँ प्रस्तर रसमय !
पा लूँ जग का अभिशाप कहाँ
प्रतिरोमों में पुलकें लहरीं।"

अथवा निम्न-लिखित काव्यांश में भी कवयित्री ने विवाह के प्रतीक द्वारा ही अपनी रहस्यात्मक अनुभूति की अभिव्यंजना की है—

> "प्रिय चिरन्तन है सजनि, क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं !
> श्वास में मुझको छिपाकर वह असीम विशाल चिर घन,
> शून्य मे जब छा गया उसकी लजीली साध-सा बन,
> छिप कहाँ उसमें सकी बुझ-बुझ चली चल दामिनी मैं !"

और अन्त में अपने चिर सुहाग-भरे जीवन का प्रतिबिम्ब महादेवी ने सांध्य-गगन में भी देखा है—

> "प्रिय सांध्य-गगन मेरा जीवन !
> यह क्षितिज बना धुंधला विराग,
> नव-अरुण-अरुण मेरा सुहाग,
> छाया-सी काया वीतराग—
> सुधि भीने स्वप्न रँगीले धन !!"

इतना होने पर भी यह कदापि नहीं कहा जा सकता है कि विवाह का प्रतीक आधुनिक रहस्यवादी कवियों ने उसी मात्रा में प्रयुक्त किया है, जितना मध्ययुगीन रहस्यवादी कवियों ने। किन्तु अपनी सूक्ष्मतम रहस्यात्मक अनुभूति के स्थूल अभिव्यंजन के निमित्त, अथवा अमूर्त भावनाओं के मूर्त प्रकटन के लिए, उन्हें विवाह का प्रतीक भी रोचक प्रतीत हुआ और महादेवी ने कहीं-कहीं उसका प्रयोग भी किया। जो कुछ भी हो, लेकिन इतना तो स्पष्ट ही है कि इस प्रतीक का प्रयोग भी उपयुक्त एवं बोधगम्य अभिव्यक्तीकरण की खोज की दौड़ान में ही हुआ है, और यह इस बात का सूचक है कि रहस्यवादी कवि वस्तु-विधान से सम्बन्धित होते हुए भी अभिव्यंजना-प्रणाली में कम दिलचस्पी नहीं रखते थे। इस तरह केवल यह कहना कि रहस्यवादी कवि-मात्र वस्तु-विधान से ही सम्बन्धित थे, उतना ही भ्रामक एवं त्रुटि-पूर्ण है, जितना यह कहना कि छायावाद केवल अभिव्यंजना-वैचित्र्य का ही दूसरा नाम है। इस प्रकार हमने देखा कि अवस्थीजी ने छायावाद और रहस्यवाद की अस्पष्टता के भीतर प्रवेश कर दोनों के बीच अन्तर बताने का जो स्तुत्य प्रयास किया, वह दुर्भाग्यवश गलत दिशा की ओर ही बढ़ गया। दरअसल बात यह थी कि उस समय शुक्लजी की धारणाओं का प्रभाव इतना अधिक था कि उससे नहीं आक्रान्त होने की चेष्टा बहुत कठिन थी। अवस्थीजी भी शुक्लजी की धारणा—छायावाद-मात्र अभिव्यंजना की विचित्रता का ही दूसरा नाम है—से ही आक्रान्त थे। इसी कारण उनके द्वारा संकेतित छायावाद और रहस्यवाद का अन्तर तर्कयुक्त न होकर दोष-पूर्ण ही रह गया। और शुक्लजी भी उसी के शिकार रहे।

(एक दूसरे आलोचक ने भी अभिव्यंजना-प्रणाली की दृष्टि से ही छायावाद और रहस्यवाद के बीच के अन्तर को समझाने की चेष्टा की है। उन्होंने लिखा है—"रहस्यवाद मे सूक्ष्म आध्यात्मिकता की स्थूल अभिव्यक्ति होती है, छायावाद में स्थूल भौतिकता का

सूक्ष्म प्रकाशन ।[1] विद्वान् आलोचक की यह मान्यता कि "रहस्यवाद में सूक्ष्म आध्यात्मिकता की स्थूल अभिव्यक्ति होती है" बहुत दूर तक सही होते हुए भी बहुत अंश में भ्रामक ही है। रहस्यवादियों में सूक्ष्म आध्यात्मिकता का उन्मेष रहता है, यह तो सर्वमान्य है। किन्तु क्या इस सूक्ष्म आध्यात्मिकता की सर्वथा स्थूल अभिव्यक्ति हो पाती है? रहस्यवादी कवि की जो रहस्यात्मक अनुभूति होती है, वह सहज बोध-गम्य नहीं। वह इतना अधिक सूक्ष्म है कि दिव्य प्रातिभज्ञान-संवलित व्यक्ति ही उसकी अनुभूति कर सकता है, और कोई नहीं। रहस्यवादी कवि इसी सूक्ष्म, जल्दी न पकड़ में आनेवाली रहस्यात्मक अनुभूति को ही अपनी अभिव्यंजना-प्रणाली द्वारा लोक-ग्राह्य बनाने की चेष्टा करते है। स्वभावतः इसके लिए उन्हें उन प्रतीकों एवं चित्रों का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है जो स्थूल हों और पाठकों को आसानी से समझ में आ जायँ। मध्ययुगीन रहस्यवादी कवियों ने 'तीन', 'पाँच', 'हंस', 'नैहर', 'चुनरी', 'शूल', 'सेज' आदि स्थूल प्रतीकों की योजना कर ही अपनी सूक्ष्म संवेदना का प्रकाशन किया था। इस दिशा में ये रहस्यवादी कवि आधुनिक रहस्यवादियों से अधिक सफल हुए हैं। तो इस प्रकार इतना कहा जा सकता है कि रहस्यवादी कवि अपनी सूक्ष्म आध्यात्मिक भावना एवं अनुभूति को स्थूल रूप में प्रकाशित करने की चेष्टा करते हैं। इस प्रचेष्टा-क्रम में कभी वे अपनी अनुभूतियों को स्थूल परिधान में सज्जित करने में सफल भी होते हैं और कभी असफल भी। किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि रहस्यवादियों की चेष्टा बराबर सूक्ष्म आध्यात्मिक अनुभूतियों को स्थूल रूप में ही प्रकाशित करने की होती है। किन्तु इसे हम चेष्टा ही कह सकते है, पूर्ण सफलता के रूप में इसको परिणत करके देखना भूल के सिवा और कुछ भी नहीं।

इस स्थल पर श्रीविश्वनाथसिंह द्वारा प्रतिपादित दूसरी धारणा का विश्लेषण भी अनिवार्य है। उन्होंने कहा है, "छायावाद में स्थूल भौतिकता का सूक्ष्म प्रकाशन" होता है। श्री रामचन्द्र शुक्ल और श्रीविश्वनाथसिंह की धारणाओं में केवल इतना ही अन्तर है कि जहाँ पहले ने छायावाद को केवल अभिव्यंजना ही माना है, वहाँ दूसरे ने अभिव्यंजना के साथ-साथ उसके वस्तु-विधान पर भी ध्यान दिया है। किन्तु मेरा निवेदन यह है कि विश्वनाथजी ने इतनी दूर आगे आकर भी एक भूल कर दी है। उन्होंने छायावाद के वस्तु-विधान को स्थूल भौतिकता तक ही सीमित रक्खा है। किन्तु क्या यह बात सही है? यह मैं मानने को तैयार हूँ कि छायावादियों ने संध्या, तारा, लहर, वीचि, पुष्प आदि का वर्णन किया है। किन्तु क्या हम यह भी कह सकते हैं कि छायावादियों ने जिस सध्या के रूप का वर्णन किया है वह द्विवेदीकालीन कवियों की सध्या की भाँति ही स्थूल रूप है। द्विवेदीयुगीन कवि ने सध्या का वर्णन यदि निम्न-लिखित रूप में किया है—

"दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला,

1. छायावाद और रहस्यवाद : श्रीविश्वनाथसिंह।
(देखिये 'छायावाद और प्रगतिवाद'—सं० देवेन्द्रनाथ शर्मा)

तरु-शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी कुल-वल्लभ की प्रभा !''

तो छायावादियों ने निम्नलिखित ढंग से—

''राग भीनी तू सजनि निःश्वास भी तेरे रँगीले !
लोचनों में क्या मदिर नव ?
देख जिसको नीड़ की सुधि फूट निकली बन मधुर रव !
झूलते चितवन गुलाबी—
में चले घर खग हठीले !
छोड़ किस पाताल का पुर
राग से बेसुध चपल सपने लजीले नयन में भर,
रात नभ के फूल लाई,
आँसुओं से कर सजीले !''

उपरि—उद्धृत संध्या के वर्णनों में अभिव्यंजना की स्थूलता एवं सूक्ष्मता का ही केवल अन्तर नहीं; दूसरी कवयित्री ने अपनी पैनी दृष्टि के सहारे सन्ध्या के स्थूल रूप को भेद कर उसके सूक्ष्म रूप को परखा है। अतएव इस निष्कर्ष पर अवि-लम्ब पहुंचा जा सकता है कि छायावादी कवि द्वारा वर्णित सन्ध्या का रूप सूक्ष्म ही है। इसलिए हम यह कह सकते है कि छायावाद में वस्तु-विधान के सूक्ष्म रूपों पर ही दृष्टि-निक्षेप किया जाता है। इस प्रकार छायावाद का वस्तु-विधान स्थूल भौतिकता पर आधारित न होकर सूक्ष्म तत्त्वों पर ही अधिकतर आधारित होता है। इस प्रकार विश्व-नाथजी की उपर्युक्त धारणा भी भ्रामक सिद्ध है। हम पाते हैं। कि जहाँ रहस्यवाद में सूक्ष्म आध्यात्मिक अनुभूतियों की स्थूल अभिव्यंजना करने की चेष्टा रहती है तो छायावाद मे प्रायः सूक्ष्म मनोभावों एवं संवेदनाओं का सूक्ष्म प्रकटीकरण होता है। कुछ लोगोने भ्रमवश रहस्यवाद के सम्बन्ध में यह धारणा बना ली है कि इसमें कवि स्पष्ट वस्तु को भी अस्पष्ट ढंग से कहता है। किन्तु यह धारणा मूलतः निरर्थक है। वास्तव मे, जैसा कि प्रौढ विद्वान् श्री अखौरी वासुदेव नारायण सिंह का कथन है, ''रहस्यवादी कवि जीवन की पहाड़ी पर बहुत ऊँचा चढ़ जाता है और वहाँ का करुण कठोर अनुभव लेकर वहीं से हृदय के अमोघ शब्दों द्वारा नीचे रहनेवालों पर अपने अनुभव की वृष्टि करता है। जब तक सचमुच कुछ तथ्य कविता के अन्दर नहीं आता, अर्थात् प्रकृति के गूढ़ आशयों का अर्थ पूरी तौर से कलाकार की समझ में नहीं आता, तब तक रहस्य कहाँ और कविता कैसी ? किसी स्पष्ट चीज़ को छिपाना रहस्यवाद नहीं, वरन् छिपी चीज को स्पष्ट करना ही रहस्यवाद है।''[1] अतः रहस्यवादी कवियों की प्रचेष्टा अमूर्त्त, सूक्ष्म एवं आध्यात्मिक अनुभूतियों की स्पष्ट एवं स्थूल अभिव्यंजना करने की होती है। सूक्ष्म अभिव्यंजना,

---

१. मोर बाजा (बिजली दिसंबर १९३६, अंक १७-१८) : अखौरी वासुदेव नारायण सिंह।

प्राय: सूक्ष्म वस्तु-विधानों एवं अनुभूतियों की ही, छायावाद की कविताओं का प्रमुख लक्षण है।

भारतवर्ष में छायावाद का इतिहास रहस्यवाद की अपेक्षा नवीन है। कबीर, दादू आदि कवियों की काव्य-साधना में रहस्यवाद का यह स्वर प्रच्छन्न नहीं। इसके अलावा मीरा ताज आदि के पदों में भी रहस्यवाद की छाप दीख पड़ती है। इसके अलावा सूफी सम्प्रदाय द्वारा प्रभावित कवियों ने जो काव्य-साधना की, उसमें भी रहस्य-वाद का पुष्ट पुट परिलक्षित होता है। जायसी के 'पद्मावत' में भी रहस्यवादी विचार-धारा को ही प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। वास्तव में 'पद्मावत' रहस्यवाद का बहुत बड़ा ग्रंथ है जिसमें इस प्रकार की विचार-धारा को विस्तृत रूप में प्रकटित किया गया है। इसके बाद रहस्यवादी काव्य की परम्परा कुछ दिनों तक रीति-कालीन कविता की शृंगारिकता एवं नायिका-भेद-वर्णन के विशाल सागर में ही निमज्जित हो गई। आधुनिक युग में कविता के द्वितीय उत्थान-काल में फिर से यह दबी हुई काव्य-प्रवृत्ति काफी पुष्ट रूप में महादेवी वर्मा, निराला, प्रसाद, पन्त, मोहनलाल महतो वियोगी', 'प्रभात', 'द्विज' आदि की कविताओं में व्यक्त हुई। किन्तु इसी स्थल पर शुक्ल जी द्वारा किए गए आक्षेपों पर ध्यान देना भी आवश्यक है। इन्होंने कहा है कि भारतीय दृष्टि के अनुसार अव्यक्त परम सत्ता के प्रति केवल जिज्ञासा की ही भावना हो सकती है, अभि-लाषा या लालसा की नहीं। उन्होंने यह भी कहा है कि अव्यक्त अगोचर ज्ञान-कांड का ही विषय है, काव्य का नहीं। शुक्लजी की प्रथम धारणा का खंडन करते हुए श्री विश्वनाथ सिंह ने गीता के निम्नलिखित श्लोक उद्धृत कर—

"ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्त पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥"

यह ठीक ही कहा है कि, "यहाँ 'अक्षरमनिर्देश्यमव्यक्त पर्युपासते' और 'अव्यक्ताऽसक्त-चेतसाम्' ध्यान देने योग्य हैं।" उपर्युक्त आरोपों में (शुक्लजी द्वारा किए गए आरोपों में) विद्वान् आलोचक ने अज्ञात-अव्यक्त के प्रति 'अभिलाषा या लालसा' को ही अभारतीय ठहराया है, पर यहाँ तो उसी अज्ञात-अव्यक्त के प्रति 'उपासना' और 'आसक्ति' दिखाई दे रही है। ये दो शब्द— 'अव्यक्तं पर्युपासते'—निर्गुण-भक्ति की प्राचीनता को स्पष्ट कर देते हैं। गीता ने अवतारवाद को प्रश्रय देकर निर्गुण-उपासना-पद्धति को दबा तो अवश्य दिया है, पर इसमें संदेह नहीं कि उसका मूल बहुत प्राचीन है। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि हमारे यहाँ अव्यक्त-अगोचर को प्राचीन काल में ही ज्ञानकांड में उपासना के क्षेत्र में लाया गया था; और यह किसी 'बेढब जरूरत' को दूर करने के लिए नहीं, बल्कि उपासना को चिन्तन का पुष्ट आधार देने के लिए। और जब अव्यक्त-अगोचर

उपासना का विषय हो गया, तो देर या सबेर, उसे काव्य का विषय होना ही था।"[1]
और वास्तव मे रहस्यवाद अभारतीय नहीं होकर भारतीय ही है और इसकी अभिव्यंजना कबीर, दादू आदि के काव्यों में निर्विवाद रूप से हुई है। अतः हमारा यह कथन कि रहस्यवाद या भारतीय इतिहास बहुत पुराना है मूलतः सही ही है। प्रसाद जी ने तो यह भी बताया है कि छायावाद भी भारतीय तो है ही, वह प्राचीन भी बहुत है। उन्होंने कालिदास, भवभूति आदि के काव्यों में लाक्षणिक वैचित्र्य तथा वक्रोक्ति को ढूँढ़ कर यह सिद्ध करना चाहा है कि छायावाद की अभिव्यजना-प्रणाली की जड़ भारतीय प्राचीन संस्कृत-काव्यों मे ही सन्निहित है। किन्तु, एक हिन्दी-साहित्य के अध्येता की दृष्टि से प्रसाद जी का भारतीय प्रेम प्रच्छन्न नहीं। इसके अलावा उसी समय अंग्रेज विद्वानो ने विलुप्त अति प्राचीन संस्कृत एवं हिन्दी-काव्यों की गवेषणा प्रारम्भ की। उन लोगों ने उन काव्यो की श्रेष्ठता भी प्रमाणित की थी और उनका स्थान विश्व-साहित्य की अमर कृतियों में दिया जा रहा था। फलस्वरूप छायावादी कवियों ने भी अपने को पुरानी भारतीय काव्य परम्परा से ही सम्बंधित करने में गौरव अनुभव किया। प्रसाद जी भी इसी विचार-धारा से प्रभावित थे। इसी कारण उन्होने छायावादी अभिव्यंजना-प्रणाली को प्राचीन भारतीय ग्रंथों से सम्बंधित करने की चेष्टा की। यदि ऐसी बात न होती तो अपने निकट के ही घनानन्द, रत्नाकर आदि कवियों को वे भूल क्यों जाते ? यह स्पष्टतः सिद्ध करता है कि 'प्रसाद' जी ने जोर-जबर्दस्ती से छायावाद को प्राचीन भारतीय काव्य की अभिव्यंजना-परम्परा से संलग्न करने का प्रयास किया है। मैं यह कदापि नहीं कहना चाहता कि प्राचीन भारतीय कवियों ने छायावादियों को एकदम प्रभावित ही नही किया। किन्तु उनसे अधिक बंगला के छायावादी कवियों का तथा अंग्रेजी के रोमान्टिक एवं विक्टोरियन कवियों का उन पर प्रभाव पड़ा। अतः सब मिला-जुला कर छायावाद एक नवीन काव्य-प्रवृत्ति हो गई है जिसे भारतीय काव्य-परम्परा से पूर्णतः संलग्न करने की चेष्टा निरर्थक है। इस प्रकार यह कहना, मेरी समझ मे, निर्विवाद रूप में सत्य है कि जहाँ रहस्यवाद भारतीय काव्य-परम्परा की पुरानी चीज है, वहाँ छायावाद भारत के लिए सर्वथा नवीन काव्य-प्रवृत्ति है और यही छायावाद और रहस्यवाद का दूसरा प्रमुख अन्तर है।

महादेवी ने 'यामा' की भूमिका मे लिखा है, "प्रकृति के लघु तृण और महान् वृक्ष, कोमल पत्तियाँ और कठोर शिलाएँ, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अंधकार और उज्ज्वल विद्युत्-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चचलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट् से उत्पन्न सहोदर हैं। जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्त्तनशील विभिन्नता में कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया, जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक-एक अंश अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।"

"परन्तु इस सम्बंध में मानव-हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी; क्योंकि मानवीय

१. छायावाद और रहस्यवाद : श्री विश्वनाथ सिंह।

संबंधों में जब तक अनुराग-जनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं घुल जाता, तब तक वे सरस नहीं हो पाते; और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती, तब तक हृदय का अभाव नहीं दूर होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुर व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य (छायावाद) का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही 'रहस्यवाद' का नाम दिया गया।"

श्री विश्वनाथ प्रसाद ने महादेवी की उपर्युक्त धारणा को भी पूर्वाग्रह का ही अनुचित फल सिद्ध करने की चेष्टा की है। किन्तु मेरी समझ में महादेवी की यह धारणा पूर्णतः सही है। छायावादी कवि वस्तुतः सर्वात्मवाद की धारणा में विश्वास करता है। छायावाद के प्रतिनिधि कवि पन्त की वाणी —

आः भेद न सका सृजन रहस्य
कोई भी! वह जो क्षुद्र पोत,
उसमें अनन्त का है निवास,
वह जग-जीवन से ओत-प्रोत।

प्रारम्भ में कवि इस अनन्त सत्ता को नहीं जान पाता। उसकी यह मानसिक अवस्था निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त हुई है—

कनक-छाया में जब कि सकाल खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल तड़प बन जाते हैं गुंजार;
न जाने ढुलक ओस में कौन खींच लेता मेरे दृग मौन!

किन्तु बाद में इस अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा के लिए कवि उत्कंठातुर हो उठता है—

"मैं चिर उत्कंठातुर!
जगती के अखिल चराचर यों मौन मुग्ध किसके बल!"

और अन्ततः वह यह जान भी जाता है कि—

"आज मुकुलित कुसुमित सब ओर, तुम्हारी छवि की छटा अपार,
फिर रहे उन्मद मधुप्रिय भौंर, नयन पलकों के पंख पसार।"

फिर एक ऐसी अवस्था भी आती है जिसमें कवि की प्रेरणा भी इसी जिज्ञासा के द्वारा आती है—

"दूर इन खेतों के उस पार, जहाँ तक गई नील झंकार
× × × ×
वहीं से खद्योतों के साथ, स्वप्न उड़-उड़ कर आते पास।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी कवि सम्पूर्ण नैसर्गिक उपादानों में एक असीम सत्ता का आभास पाता है जिसको जानने या सुनने की अभिलाषा तथा जिज्ञासा उसे होती है। छायावादी कवि जिज्ञासा या अभिलाषा तक ही सीमित रह जाता है। किन्तु एक रहस्यवादी कवि सर्वात्मवाद में अपने विश्वासों को आरोपित करता है। छायावादी कवि की यह भी धारणा है कि सम्पूर्ण नैसर्गिक उपादान उसी अनन्त-अज्ञात परम सत्ता के

विभिन्न प्रकटित रूप हैं। किन्तु केवल उसे जानने की छायावादी जिज्ञासा के स्थान पर रहस्यवाद में आत्म-निवेदन, प्रेम, मिलन एवं विरह की भावना की अभिव्यंजना रहती है। महादेवी कभी उस अनन्त सत्ता में अपने को विलीन करने में झिझक का अनुभव करती हैं—

"मिलन-मन्दिर में उठा दूँ जो सुमुख से सजल गुण्ठन,
मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों तप्त सिकता में सलिल कण,
सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं !"

तो कभी वह उस अनन्त सत्ता से अपने ससीम अस्तित्व को अपने में मिला देने का आग्रह भी करती है—

"गए तब से कितने युग बीत, हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया सीख, तुम्हारा सा मनमोहन गान !
नहीं अब, गाया जाता देव ! थकी अँगुली, है ढीले तार,
विश्व-वीणा में अपनी आज मिला लो यह स्फुट झंकार !"

इतना ही नहीं। कवयित्री उस प्रिय से मिलने के लिए अभिसारिका का रूप ग्रहण करती हुई लिखती है, "शृंगार कर ले तू सजनि।" निराला ने तो उस अनन्त प्रिय से मिलने के लिए आकुल अभिसारिका का वर्णन भी निम्नलिखित पंक्तियों में किया है—

"मौन रही हार।
प्रिय-पथ पर चलती सबसे कहते शृंगार।
कण-कण कर-कंकण, किण-किण रव किंकिणी।
रणन-रणन नूपुर उर लाज लौट रंकिणी॥
शब्द सुना हो तो अब लौट कहाँ जाऊँ।
उन चरणों को छोड़ और शरण कहाँ पाऊँ॥
बजे सजे उर के इस सुर से सब तार।"

रहस्यवादियों ने उस अनन्त प्रिय के आगमन की बात भी की है। महादेवी ने कहा है—

"प्रिय मेरा निशीथ नीरवता में आता चुपचाप।
मेरे निमिषों से भी नीरव है उसके पद-चाप॥"

प्रसाद ने भी प्रिय के आगमन का संकेत किया है—

"पतझड़ था, झाड़ खड़े थे सूखी सी फुलवारी में।
किसलय तब कुसुम बिछा कर आए तुम इस क्यारी में॥"

अथवा—

"शशि-मुख पर घूँघट डाले अन्तर में दीप छिपाए,
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आए।"

रहस्यवादी कवियों ने उस अनन्त सत्ता से अपने मिलन की बात भी कही है।

उनका कहना है कि उनका प्रिय अचेतनावस्था में ही उनसे मिलने आता है और उनके चेतन होते-होते वह फिर विलुप्त हो जाता है। महादेवी ने कहा है—

"वह सपना बन-बन आता, जागृति में जाता लौट।
मेरे श्रवण आज बैठे हैं, इन पलकों की ओट।"

मिलन की ऐसी भावना से अनुप्राणित 'प्रसाद' की पंक्तियाँ हैं—

"मादकता से आए तुम, संज्ञा से चले गए थे।
हम व्याकुल पड़े बिलखते थे उतरे हुए नशे में॥"

निराला की नीचे उद्धृत कविता-पंक्तियों में भी कवि-हृदय की यही भावना व्यंजित हुई है—

"हुआ प्रात प्रियतम तुम जाओगे चले,
कैसी थी रात बन्धु थे लगे गले।
फूटा आलोक,
परिचय परिचय पर जग गया भेद शोक
छलते सब चले एक अन्य के चले।"

इस मिलनावस्था की अभिव्यंजना निराला ने निम्नलिखित पंक्तियों में की है—

"वहाँ कहाँ कोई अपना, सब सत्य नीलिमा में लयमान,
केवल मैं, केवल मैं, केवल मैं, केवल मैं ज्ञान।"

एक अंग्रेजी-कवि ने इस मिलन की अवस्था को ठीक निराला की भाँति ही व्यक्त करते हुए लिखा है—

"Four eyes met There were changes in two souls.
And now I cannot remember whether he is a man
I a woman,
Or he is a woman, and I a man. All I know is
There were two, love came, and there is one."

मिलन के साथ-साथ इन कवियों ने मिलन-स्थान का भी वर्णन किया है। निराला की पंक्तियाँ हैं—

"वहाँ नयनों में केवल प्रात, चन्द्र-ज्योत्स्ना ही केवल गात,
रेणु छाए ही रहते प्रात, मंद ही बहती सदा बयार।
हमें जाना इस जग के पार।"

इस प्रकार, उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि (छायावादी कवियों में जहाँ उस अज्ञात सत्ता के प्रति, जो जग के अणु परमाणु में व्यापित है, केवल जिज्ञासा, उत्कंठा एवं जिज्ञासा की ही भावना रहती है, वहाँ रहस्यवादी कवि उस सत्ता के प्रति आत्म-निवेदन करते हैं, उससे अपने मिलन, अपनी विरह आदि की बातें करते हैं।) हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक प्रोफेसर श्री शिवनन्दन प्रसाद ने बहुत ठीक ही कहा है कि 'छायावाद में अव्यक्त या परोक्ष सत्ता के प्रति जिज्ञासा होती है। रहस्यवाद में अव्यक्त या परोक्ष सत्ता

के प्रति प्रेम होता है। छायावाद में प्रकृति के ससीम रूपों में असीम की छाया देख कवि आश्चर्य-पुलकित रह जाता है। लेकिन रहस्यवाद में ससीम द्वारा प्रतिबिम्ब होनेवाले इस असीम के प्रति आकुल प्रणय-भावना की व्यंजना रहती है। ससीम आत्मा और असीम (निर्गुण, निराकार) परमात्मा के बीच प्रणय-सम्बन्ध की स्थापना ही रहस्यवाद है। यह प्रेम माधुर्य-भाव-भरे अथवा पति-पत्नी-सम्बन्ध से होता है। छायावाद में यह प्रेम नहीं होता, उसमें केवल कौतूहल या जिज्ञासा की भावना वर्तमान होती है।"[1] वास्तव में, छायावाद और रहस्यवाद दोनों भिन्न वस्तुयें हैं। छायावाद और रहस्यवाद में एक अन्य अन्तर यह है कि छायावाद जहाँ प्रकृति को चेतन मानता है, रहस्यवाद प्रकृति में चेतना के आगे ब्रह्म को ही छाया उसमें देखता है। सुधी समालोचक डॉ० सुधीन्द्र के शब्दों में "यदि कवि प्रकृति में (सर्व चेतनवाद के अनुसार) चेतनत्व और मानवत्व पाता है और इस चेतनत्व की प्रतीति से जब वह आत्मानुभूति का सम्बन्ध जोड़ता है तो 'छायावाद' की सृष्टि होती है, यहाँ कोई तीसरी सत्ता नहीं आती; परन्तु जब कवि प्रकृति के चेतनत्व या मानवत्व में किसी परम चेतन परम सुन्दर की छाया देखने लगता है या ऐसा न करके, प्रकृति के विविध रूप-व्यापारों के माध्यम से अपने और उस परोक्ष सत्ता के तादात्म्य की व्यंजना करने लगता है तो छायावाद की भूमि छूट जाती है और रहस्यवाद का आलोक-लोक आ जाता है।"[2] छायावादी कवि प्रकृति के रूप-सौन्दर्यों से आश्चर्यित-पुलकित होता है, किन्तु रहस्यवादी कवि की दृष्टि में तो प्रकृति के सारे तत्त्व उसे परोक्ष प्रियतम के प्रणय-सन्देश सुनाते प्रतीत होते हैं। तो स्पष्टतः रहस्यवाद जहाँ प्रणय-निवेदन है, छायावाद जिज्ञासा मात्र। और छायावाद एवं रहस्यवाद में दूसरा मौलिक अन्तर यह भी है कि रहस्यवाद में जहाँ संतोष की भावना पाते हैं (जैसे कबीर आदि में), छायावाद में असंतोष और अतृप्ति ही (जैसे महादेवी की कविताओं में) विद्यमान है। सुश्री महादेवी वर्मा ने भी छायावाद और रहस्यवाद का अंतर मानते हुए यही कहा है कि छायावाद जहाँ प्रकृति में चेतना का ज्ञान-मात्र है, रहस्यवाद प्रकृति में चेतना के प्रति प्रणय-निवेदन। और अंत में श्री विश्वनाथ सिंह के शब्दों को ही उद्धृत कर इस निबन्ध को हम समाप्त करते हैं, "यदि हम एक ही काव्य में दोनों काव्य-प्रवृत्तियों की समानताओं और विषमताओं को प्रस्तुत करना चाहें तो कह सकते हैं कि दोनों ही ने आत्मानुभूति-प्रकाशन का पथ प्रशस्त किया, पर एक का ध्येय लौकिक रहा, दूसरे का आध्यात्मिक।"

तो इस प्रकार ऊपर के विवेचन से छायावाद और रहस्यवाद की पारस्परिक समानताओं और असमानताओं को समझा जा सकता है।

— · —

१. कवि सुमित्रानन्दन पन्त और उनका प्रतिनिधि काव्य, पृ० २०।
२. हिन्दी-कविता में युगान्तर—पृष्ठ ३१३—डॉ० सुधीन्द्र।

छायावाद और प्रयोगवाद

प्रयोगवाद हिन्दी-कविता का नया स्वर है, हिन्दी-कविता की नई अँगड़ाई है। इस प्रकार की कविताओं के नमूने नित्य-प्रति पत्र-पत्रिकाओं में देखने को मिलते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रयोगवाद कोई वाद है नहीं। प्रत्येक वाद के पीछे एक सामयिक या असामयिक, सामाजिक अथवा असामाजिक, सबल अथवा निर्बल कोई ऐसा मूलभूत सिद्धान्त-समूह अवश्य होता है जिस पर दस आदमी मिलकर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा चुके हों। प्रयोगवाद में ऐसी मूलभूत सिद्धान्त-राशि का ही अभाव है जिसको लेकर एक वाद माना जा सके। प्रयोगवादी प्रत्येक कवि के अपने विचार हैं, अपनी राह है। सभी अलग-अलग प्रयोग कर रहे हैं, सभी ऐसे नूतन जीवन-मूल्यों की तलाश में हैं जिनसे नवयुग की समस्याओं का समाधान हो सके। तो इस तरह हम किसी भी युग की किसी भी कविता को प्रयोगवादी मान ले सकते हैं; क्योंकि प्रत्येक युग की कविता 'कुछ नवीन प्रयोग के ही कारण अपने आविर्भाव की घोषणा करती है'। किन्तु, जैसा कि हम जानते हैं, हिन्दी में कुछ विशिष्ट प्रकार की कविताओं के लिए ही इन दिनों प्रयोगवादी शब्द का प्रचलन हो गया है। किन्तु उन विशिष्ट प्रकार की कविताओं (जिन्हें 'प्रयोगवादी कविता' कहते हैं) का कोई पूर्व चिन्तित विशिष्ट सिद्धान्त-समूह नहीं है। और यदि है तो केवल यही कि सभी प्रयोगवादी कवियों का सिद्धान्त प्रयोग करना है, अन्वेषण करना है। प्रयोगवाद के सुज्ञेय नेता 'अज्ञेय' के ही शब्दों में "दावा केवल यही है कि ये सातों अन्वेषी हैं। काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बाँधता है। ... बल्कि उनके तो एकत्र होने का कारण ही यह है कि वे एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं, राहों के अन्वेषी।"[१] डॉ० नगेन्द्र के विचार में "इस वर्ग के कवियों का विश्वास है कि जीवन की तरह काव्य भी एक चिरगतिशील सत्य है जिसकी वास्तविक साधना शोध, अन्वेषण एवं प्रयोग है।"[२] इस प्रकार प्रयोगवादी कवियों की सामान्य मान्यता है वस्तु और शैली दोनों में प्रयोगशीलता। किन्तु, जैसा कि मैंने कहा, प्रयोग तो प्रत्येक युग में होता है, फिर प्रयोगवाद का नारा क्यों? प्रयोगवाद अपने में कोई नवीन वस्तु तो है नहीं कि उसके लिए इतना विचार-विमर्श हो। आश्चर्य की बात है, हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् आलोचकों ने उस पर ध्यान दिया ही क्यों? प्रयोगवाद पर आलोचना की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु बात यह है कि एक कौआ जब आकाश में उड़ता है तब हमारा ध्यान आकर्षित नहीं होता, किन्तु कई कौओं को एक साथ आकाश में उड़ते देख हमारी दृष्टि उधर चली ही जाती है। प्रयोगवाद के सम्बन्ध में भी कुछ वैसी ही बात है। हिन्दी के साहित्याकाश में जब एक साथ अनेक प्रयोगवादी कौए उड़े तो हम आलोचकों को

---

१. तार सप्तक की भूमिका—अज्ञेय।

२. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ—पृष्ठ ११४—डॉ० नगेन्द्र।

आँखें उधर खिंच ही गईं। किन्तु, जैसा कहा जा चुका है, ये केवल प्रयोग के कारण ही एक साथ हैं, एकत्र हैं; अन्यथा इनकी पूर्वचिन्तित-सर्वमान्य कोई अपनी विशिष्ट सिद्धान्त-राशि नहीं। इसीलिए श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने ठीक ही लिखा है कि "अतः कोई बात कहते समय वस्तु की दृष्टि से केवल किसी परिस्थिति-विशेष में उठे हुए किसी विचार को वाणी देते समय केवल उपमान-विधान में नवीनता लाने का, शब्दों का प्रयोग करते समय नवीन ढग अपनाने का प्रयत्न-मात्र 'प्रयोगवाद' रह गया।.. हाँ, प्रयोगवाद की परिभाषा करते समय प्रयोगवादी कविता का अनुसरण करके यह अवश्य कहा जा सकता है कि काव्य शैली सर्वथा नवीन प्रयोगों की सदा टोह में रहनेवाला वाद' ही प्रयोगवाद है।"[१]

हिन्दी में, आखिर, यह 'प्रयोगवाद' आया कैसे? आइये, प्रयोगवाद की प्रेरक परिस्थितियों और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों पर हम विचार करें। विद्वान् आलोचक प्रो० शिवनन्दन प्रसाद के शब्दों में "गत दो महायुद्धों के फलस्वरूप जो विश्वव्यापी ध्वंस और हाहाकार फैला उसका परिणाम यह हुआ कि पुरातन जीवन-मूल्यों की ओर से मनुष्य का विश्वास उठ-सा गया। हम जिन आदर्शों, संस्थाओं, विश्वासों आदि को लेकर जीवन-समस्याओं का समाधान ढूँढ़ते रहे थे, उनके आधार पर अब इन विश्व-विघातक महायुद्धों की विषमताओं का समाधान हम नहीं पा सके। हमें लगा कि हमारी जीवन-प्रणाली में, हमारे पुरातन मूल्य-मानों में अमूल परिवर्तन की अनिवार्य आवश्यकता है।"[२] इसीलिए जो कवि-गण नवीन जीवन-मूल्यों की तलाश में निकले, नव-युग की विषमताओं के समाधान की राह पाने के लिए नये प्रयोग करने लगे, वे प्रयोगवादी कहलाए।

हिन्दी में प्रयोगवाद के उद्भव के कारण कुछ और भी हैं। छायावाद की भावात्मक सौन्दर्य-प्रवृत्तियों, कोमल-मृदुल रूप-विलास एवं रोमानी कल्पनाओं के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई प्रयोगवाद के रूप में। इसके अलावा हिन्दी की प्रयोगवादी कविता-धारा को इलियट, ऐजरापाउंड जैसे पाश्चात्य विद्वानों से भी प्रेरणा मिली है।

दो विश्वविघातक महायुद्धों के परिणामस्वरूप रोमानी कल्पना एवं मात्र सौन्दर्य-विलास से कवियों का विश्वास उठ गया। सुन्दरताओं की लाश जब सड़कों पर सड़ने लगी तो कवि जुही की कली का सुरभि नहीं सूँघ सकता था। जीवन-संघर्ष और व्यस्तताओं के बीच कवियों को कला-विलास की भी फुर्सत नहीं मिली। स्वभावतः कविता की धारा मुड़ चली। हिन्दी में भी इस परिवर्तन की रेखा दिखाई पड़ी। छायावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। अब भावात्मक सौन्दर्य तथा सीमित काव्य-सामग्री एवं कला-विलास से आगे बढ़कर हिन्दी-कविता ने व्यावहारिक-सामाजिक जीवन और समकालीन समस्त्व-समस्याओं का भी स्पर्श किया। सुप्रसिद्ध समालोचक डॉ० नगेन्द्र के विचार में 'भाव-वस्तु में छायावाद की तरल-अमूर्त अनुभूतियों के स्थान पर एक ओर व्यावहारिक-सामाजिक जीवन की मूर्त अनुभूतियों की माँग हुई दूसरी ओर सुनिश्चित बौद्धिक धारणाओं का

१. हिन्दी साहित्य के प्रमुख वाद और उनके प्रवर्तक—पृष्ठ २११, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय।
२. कवि सुमित्रानन्दन पन्त और उनका प्रतिनिधि काव्य—पृष्ठ १३, शिवनन्दन प्रसाद।

है गी[illegible] वैसे बिल्कुल पाप;
क्या करूँ मगर लाचार हारकर
गीत बेचता हूँ।
जी हाँ, हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ! —भवानीप्रसाद मिश्र

किन्तु प्रयोगवादी कवितायें चाहे जो हों, उनमे गद्यात्मकता, शुष्कता का ही आधिक्य है। इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते है। विस्तार-भय से यहाँ कुछ एक पंक्तियाँ ही उद्धृत की जाती हैं—

वह मित्र का सुख
ज्यो अटल आत्मा हमारी बन गई साक्षात् निज सुख
वह मधुरतम हास
जैसे आत्म-परिचय सामने ही आ रहा है मूर्त होकर
आत्मा के मित्र मेरे ··· ···
इत्यादि—गजानन मुक्तिबोध

प्रकृति-वर्णन के क्षेत्र में भी प्रयोगवाद के प्रयोग ध्यातव्य हैं—

उदयाचल से किरन-धेनुएँ
हाँक ला रहा यह प्रभात का ग्वाला।
पूँछ उठाये चली आ रही
क्षितिज जंगलों के टोली,
दिखा रहे पथ, इस भूमि का
सारस सुना-सुना बोली। —नरेशकुमार मेहता

श्री रामदरश मिश्र की 'मौसम बदला' शीर्षक कविता में भी प्रकृति-चित्रण के प्रयोग हैं। प्रकृति-वर्णन के क्षेत्र में प्रयोगवाद का यह अभिनय प्रयोग भी दर्शनीय है—

सुरसा-सी यह रात की सर्दी आई है
लम्बी शैतान अंतड़ी-सी, रात मारवाड़ी पगड़ी-सी।
लम्बी, नेता के भाषण-सी, बम्बइया बरसावत को
सर्दी आई है। —चिरंजीत

—तो ये रहे प्रयोगवादी कविताओं के नमूने एवं प्रयोगवाद के कुछ अभिनव प्रयोग!!

आइये, उपर्युक्त विवेचन के आलोक में प्रयोगवाद और छायावाद का अब तुलनात्मक अध्ययन करें। हम आगे अब यह विचार करेंगे कि छायावाद और प्रयोगवाद मे क्या समानतायें हैं एवं दोनों मे कहाँ, क्या, और कैसे अन्तर है। जैसा कि कहा जा चुका है, हिन्दी-कविता में प्रयोगवाद का आविर्भाव ही छायावाद के विरोध के रूप में हुआ एवं प्रयोगवाद की प्रमुख प्रेरक शक्तियों में एक बहुत बड़ी शक्ति, छायावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी। अतएव प्रयोगवाद स्वभावतः छायावाद से अनेक बातों में भिन्न रहा।

छायावाद और प्रयोगवाद में असमानताएँ अधिक हैं, समानतायें कम हैं, प्राय: गौण हैं। फिर भी, आलोचना में दोनों पक्षों का विश्लेषण एवं विवेचन अनिवार्य है, किसी विशेष के साथ पक्षपात तो कदापि उचित एवं युक्तिसंगत नहीं।

छायावाद और प्रयोगवाद दोनों अपने-अपने युग की सामयिक परिस्थितियों की उपज हैं। जिस प्रकार छायावाद अपने युग की सामाजिक-साहित्यिक—आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों की उपज है, उसी प्रकार प्रयोगवाद भी। छायावाद के उद्भव के समय राजनीतिक परिस्थिति अत्यंत गंभीर थी। विश्व-युद्ध (मेरा अभिप्राय प्रथम विश्व-युद्ध से है) का भयानक वातावरण छा रहा था। कवियों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता न थी। प्रयोगवाद के समय भी महायुद्धों के भीषण परिणामों की गंभीर परिस्थिति रही। दोनों वाद मानसिक क्षोभ की उपज है। छायावाद के जन्म के समय भी आर्थिक दुरवस्था थी, प्रयोगवाद के उद्भव के समय तो आर्थिक स्थिति और भी खराब थी। किन्तु छायावाद ने जहाँ आर्थिक दुरवस्थाओं और राजनीति की कोलाहलमय जगती से प्राय: दूर भागकर कल्पनालोक में शरण ली, प्रयोगवाद ने सबका डटकर सामना किया; उसे विजय मिली अथवा पराजय, यह बात और है। छायावाद और प्रयोगवाद—दोनों के उद्भव के पूर्व की साहित्यिक परिस्थितियों में भी समानताएँ है। जिस प्रकार छायावाद के पूर्व द्विवेदी-युगीन कविता शुष्क आदर्शवाद, सुधारवाद और इतिवृत्तात्मकता आदि के नीरस बन्धनों में बँध गई थी और उन सबके विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई छायावाद के रूप में, उसी प्रकार प्रयोगवाद के पूर्व की काव्यधारा (जिसे छायावाद कहते है), भी भावात्मकता, रोमानी कल्पना, सूक्ष्म सौन्दर्य एवं रहस्यात्मकता तथा कला-विलास की सीमाओं में बहुत-कुछ संकुचित हो गई थी। प्रयोगवाद ने छायावाद की उन संकुचित सीमाओं का उल्लंघन किया, छायावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में वह उद्भूत हुआ। इस भाँति—छायावाद और प्रयोगवाद—दोनों ही अपने पूर्ववर्ती युग के विरुद्ध प्रतिक्रिया है।

छायावाद और प्रयोगवाद में दूसरी समानता वैयक्तिकता लेकर है। दोनों वादों की कविताओं में वैयक्तिकता का अत्यधिक आग्रह दिखाई पड़ता है। यद्यपि प्रयोगवाद ने वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास किया किन्तु अधिकतर उसका दृष्टिकोण आत्मनिष्ठ (वैयक्तिक) हो ही जाता है। वह वस्तु को वस्तुरूप में न देखकर, अपने मन का रंग चढ़ाकर उसका अभिव्यंजन करने लगता है। वास्तव में इन प्रयोगवादी कवियों के लिए वैयक्तिकता से बचना संभव नहीं है क्योंकि ये सभी प्राय: अंतर्मुखी हैं, अपने ही मन की निविड़ता में उलझे हुए है। वैयक्तिकता का यह विस्फोट भाव और शैली दोनों ही क्षेत्रों में पर्याप्त रूप में हुआ है। प्रयोगवाद ने न केवल नवीन विषय-वस्तु ली, वरन् साथ ही उसने अभिनव अभिव्यंजना-प्रणाली भी अपनाई। अभिव्यंजना-प्रणाली के अंतर्गत प्रयोगवाद का सर्वथा नूतन वैयक्तिक प्रयोग कहीं-कहीं अबूझ पहेली भी बन जाता है। प्रयोगवाद शब्द में नूतन अर्थ भरता है और इसके लिये विभिन्न क्षेत्रों से शब्दों के प्रयोग करता है। वह अपनी बात स्पष्ट करने के लिए नितान्त नूतन उपमानों की भी योजना करता है और नवीन

सामासिक शब्दावली की भी। अभिव्यंजना की इतनी वैयक्तिकता आरंभ में छायावाद में भी रही थी। छायावाद ने भी अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए नूतन उपमान, नवीन प्रतीक एवं लाक्षणिक पदावली अपनाई थी। प्रयोगवाद में भी छायावाद को ही तरह, अभिव्यंजना की वैयक्तिकता की प्रवृत्ति दिखाई दी। प्रवृत्ति दोनों वादों में एक ही है—और वह है वैयक्तिकता की प्रवृत्ति—किन्तु समय के अनुसार दोनों के प्रयोग भिन्न हुए हैं। उदाहरण के लिए जहाँ छायावाद ने नवीन सूक्ष्म उपमान दिए—

गूढ़ कल्पना-सी कवियों की अज्ञाता के विस्मय-सी,
ऋषियों के गंभीर हृदय-सी बच्चों के तुतले भय-सी
× × × ×
चिर अतीत की विस्तृत-स्मृति-सी नीरवता की-सी झंकार
आँखमिचौनी-सी असीम की, निर्जनता की-सी उद्गार—पंत

—तो प्रयोगवाद ने दूसरे नवीन स्थूल उपमान ढूँढे—

जीवन में लौटी मिठास है
गीत की आखिरी मीठी लकीर-सी
वैभव की वे शिला-लेख सी यादें आतीं
एक चाँदनी-भरी रात उस राजनगर को
रनिवासों की नंगी बाँहों-सी रंगीनी
यह रेशमी मिठास मिलन के प्रथम दिनों की—गिरिजाकुमार माथुर

इसी प्रकार और अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। जैसा कहा जा चुका है, लेकिन, प्रयोगवाद और छायावाद में असमानतायें अधिक हैं। भाषा और उपमाओं की चर्चा चल रही थी, पहले अभिव्यंजना-प्रणाली को ही लीजिए। हिन्दी-कविता को छायावाद की एक बहुत बड़ी देन यह रही कि छायावाद ने खड़ी बोली की खड़खड़ाहट को दूर कर उसे सर्वथा काव्योचित ललित एवं सुकोमल और सरस बना दिया। छायावाद की इन पंक्तियों में भाषा की कोमलता-मिठास और सरसता द्रष्टव्य है—

वह स्वप्न-जड़ित नत चितवन
छू लेती अग-जग का मन,
श्यामल, कोमल, चल चितवन
लहरा देती जग-जीवन !
× × × ×
वह सोई सरित—पुलिन पर
साँसों में स्तब्ध समीरण
केवल लघु-लघु लहरों पर
मिलता मृदु-मृदु उर स्पंदन—पंत

किन्तु प्रयोगवाद की भाषा उखड़-खाबड़ है, रूखड़ी है। यहाँ सुन्दर शब्द-योजना,

कोमलकांत पदावली एवं मृदुल-मंजुल पद-रचना की बिल्कुल चेष्टा नहीं। प्रयोगवाद की भाषा का एक ही नमूना काफी है—

कर सको घृणा—
    क्या इतनी
रखते हो अखंड तुम प्रेम
जितनी अखंड हो सके घृणा
    उतना प्रचंड
रखते क्या जीवन का व्रत नेम
प्रेम करोगे सतत ? कि जिससे
    उससे उठ ऊपर वह लो—गजानन मुक्तिबोध

अथवा, दूसरा उदाहरण देखना चाहते हैं तो देखें—

    निविडांधकार
को मूर्त रूप दे देनेवाली
एक अकिंचन, निष्प्रभ अनाहूत
    अज्ञात द्युति-किरण
आसन्न पतन, बिन जमी ओस की अंतिम
    ईषत्कण, स्निग्ध, कातर शीतलता—'अज्ञेय'

दूसरी बात यह है कि छायावाद की प्रवृत्ति जहाँ मधुर, सुकोमल और सलज्ज सौन्दर्य की ओर है, प्रयोगवाद की प्रवृत्ति परुष, अनगढ़ और भदेस सौन्दर्य की ओर। जैसे छायावाद की इन पंक्तियों में मधुर, सुकोमल और सलज्ज सौंदर्य देखिये—

बाल रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में
अचल रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुकवि के काव्य में
× × ×
लाज की मादक सुरा—सी लालिमा
फैल गालों में नवीन गुलाब-से
छलकती थी बाढ़-सी सौंदर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से सीप-से !—पंत

किन्तु प्रयोगवाद ने मेढ़क, मूत्र-सिंचित वृत्त में खड़े हुए गदहे, चप्पल और चा की प्याली में भी सौन्दर्य के दर्शन किए—

तू सुनता रहा मधुर नूपुर ध्वनि
यद्यपि बजती थी चप्पल—भारतभूषण
× × ×

यह सब एक विराट् व्यंग्य है,
मैं हूँ सच औ' चा की प्याली—माघवे

डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में, प्रयोगवाद ने अपनी इस सौन्दर्य-दृष्टि की सफाई में यह कहा कि "सौन्दर्य को केवल मधुर कोमल मे सीमित कर देना अत्यत संकुचित दृष्टि का परिचायक है। सौन्दर्य-चेतना एक व्यापक चेतना है और गत्यात्मक भी, जो परिस्थिति के अनुसार विकसित होती रहती है। जिस प्रकार मधुर-कोमल उसका एक रूप है, उसी प्रकार अनगढ और परुष भी। आज के जीवन में अनगढ़ और भदेस हमारे अधिक निकट है इसलिए उसकी चेतना हमारे लिए अधिक वास्तविक और स्वाभाविक है।"[१] बात यह है कि "राजनीति में हिंसा-अहिंसा, प्रजातन्त्रवाद, साम्यवाद, सर्वाधिकारवाद का, और अर्थनीति मे पूँजीवाद और समाजवाद का, दर्शन के क्षेत्र मे आदर्शवाद और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद आदि का, और मनोविज्ञान में चेतन और अवचेतन आदि का ऐसा कुहराम मचा हुआ है कि आज के मानव की चेतना एकात धूमिल और तमसाच्छन्न हो गई है। ऐसी अवस्था में किसी स्थिर रोमानी सौंदर्यबोध को ग्रहण कर लेना असंभव है। यदि ऐसा किया जाता है तो वह वास्तविक और हार्दिक नही है—वह केवल काल्पनिक अथवा भावगत है। छायावादी सौन्दर्यबोध के विरुद्ध इन कवियों का यही प्रबल आक्षेप है—और ये उसके प्रतिकार-रूप आज के आच्छन्न जीवन के अनुकूल संकुल सौंदर्यबोध को ही वास्तविक एवं हार्दिक मानकर चलते हैं।"[२]

छायावाद और प्रयोगवाद में एक अन्य बहुत बड़ा अन्तर रागात्मकता और बौद्धिकता को लेकर है। छायावाद की कविताओं में रागात्मकता है, भावुकता है, हृदय को प्रभावित करने की क्षमता है। प्रयोगवाद की रचनाओं में उन बातों का सर्वथा अभाव है। प्रयोगवादी कवितायें मस्तिष्क को छूती हैं, उनका 'एप्रोच' बौद्धिक (intellectual) है। छायावाद मे जहाँ तरल भावनायें है, प्रयोगवाद में बौद्धिकता का बोझीलापन। कविता में रागात्मकता होनी ही चाहिए। कविता वही है जो हृदय के तारों को झंकृत कर सके, रस-निष्पत्ति कविता की चरम सार्थकता है। प्रयोगवाद ने कविता के इसी प्राणतत्त्व की उपेक्षा की है, वह रागात्मकता के बजाय बौद्धिकता ही सब कुछ समझता है, रसनिष्पत्ति के बदले बौद्धिक प्रभाव को ही चरम मानता है। यही कारण है कि छायावाद का काव्य प्रयोगवाद के धरातल से कही ऊँचा है; प्रयोगवाद की रचनायें वास्तव में कविता कहलाने की योग्य है भी नहीं। प्रयोगवाद में रस का ही अभाव है। उसमें मर्म को स्पर्श करने की क्षमता नही। स्पष्टतः इस दृष्टि से छायावाद

---

१. आधुनिक हिन्दी-कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ ११२—डॉ० नगेन्द्र।
२. वही, पृष्ठ ११६।

का काव्य प्रयोगवाद में काफी उत्कृष्ट है। छायावाद की पंक्तियों में मर्मस्पर्शिता, रागात्मकता और काफी सरसता है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

मुस्करा दी थी क्या तुम प्राण !
मुस्करा दी थी आज विहान ?
आज गृह वन उपवन के पास
लोटता राशि – राशि हिम – हास
खिल उठी आँगन में अवदात
कुंद-कलियों की कोमल प्रात !
मुस्करा दी थी, बोलो, प्राण !
मुस्करा दी थी, तुम अनजान ?
आज छाया चहुँदिशि चुपचाप
मृदुल मुकुलों का मौनालाप;
रुपहली कलियों से कुछ लाल
लद गई पुलकित पीपल डाल;
और वह पिक की मर्म पुकार
प्रिय ! झर झर पड़ती साभार
लाज से गड़ी न जाओ प्राण !
मुस्करा दी थी आज विहान ?—पंत

प्रेम और शृंगार-वर्णन के क्षेत्र में भी छायावाद और प्रयोगवाद में काफी अन्तर है। जीवन-वास्तव और नवयुग के जीवन-मूल्यों की तलाश के नाम पर, प्रयोगों में काफी ग्राम्यता आ गई है। प्रयोगवाद के शृंगार और प्रेम-वर्णन में अश्लीलता कितनी हद तक है—

यह सावन की अनमोल रात
इस प्रेरित लोलित रति - गति में
जग झूम - झमकता विसुध गात
गोरी बाँहों में कस प्रिय को
कर दूँ चुम्बन से सुरास्नात

अथवा, दूसरा उदाहरण देखिए—

वह जो जा रही आँचल दबाये
कुएँ के पास
यौवन की बहारों को समेटे
कि जिसकी छातियाँ हैं
अभी उठती उभरती
कच्ची नासपातियाँ हैं

और काठ की कठोरता है जिनमें
अभी तक जिन पर
खरखराते और रुखड़े
कुदाली और हँसिया के ढेलेदार
हाथ नहीं पड़े ।

अथवा, कामुकता का यह विस्फोट भी ध्यातव्य है—

इन फीरोजी ओठों पर बरबाद मेरी जिन्दगी
तुम्हारे स्पर्श की बादल धुली कचनार नरमाई
तुम्हारे वक्ष की जादू भरी मदहोश गरमाई
तुम्हारी चितवनों में, नरगिसों की पाँति शरमाई
× × × ×
मुझे तो वासना का विष, हमेशा बन गया अमृत
बशर्ते वासना भी हो, तुम्हारे रूप से आबाद
मेरी जिन्दगी बरबाद !

किन्तु छायावाद का प्रेम और शृंगार-वर्णन, जैसा कि अन्यत्र भी कहा गया है, अत्यंत संयमित, मर्यादित और शिष्ट हुआ है। छायावाद का प्रेम और शृंगार-वर्णन अश्लीलता से कोसों दूर है। जैसे सुश्री वर्मा की ये पंक्तियाँ उदाहरण-स्वरूप उद्धृत की जाती हैं—

जो उजियाला देता हो—जल-जल अपनी ज्वाला में
अपना सुख बाँट दिया हो जिसने इस मधुशाला में
हँस हालाहल ढाला हो अपनी मधु-सी हाला में
मेरी साधों से निर्मित उन अधरों का प्याला हो !—महादेवी वर्मा

उद्धृत अवतरण की अंतिम दो पंक्तियों में चुम्बन की कैसी सुन्दर व्यंजना है ! आलिंगन की व्यंजना भी 'प्रसाद' जी की इन पंक्तियों में कितनी संयमित और सुन्दर हुई है—

देख न लूँ, इतना ही तो है इच्छा ? लो सिर झुका हुआ
कोमल किरन-उँगलियों से ढँक दोगे यह दृग खुला हुआ
फिर कह दोगे; पहचानो तो, मैं हूँ कौन, बताओ तो !
किन्तु उन्हीं अधरों से पहले उनकी हँसी दबाओ तो
सिहर भरे निज शिथिल मृदुल अंचल को अधरों से पकड़ो
बेला बीत चली है चंचल बाहुलता से आ जकड़ो !
—'प्रसाद'

तो निष्कर्षतः, छायावाद का काव्य, निश्चय ही, कई दृष्टियों से, प्रयोगवाद से उच्च कोटि का है। बात साफ है, प्रयोगवाद तो 'प्रयोग' कर रहा है; किन्तु कौन 'प्रयोग' बढ़-चढ़कर हो जाय, कोई क्या जाने !!

छाया-काव्य का पुन[illegible]

भय है, मेरे प्रस्तुत प्रबन्ध को ऊपर से आरोदि[illegible]
सारी पुस्तक को उपसंहार ही कहा जायगा। हिन्दी-कवि[illegible]
और प्रवृत्तियाँ, छायावाद की विषय-सीमा, रचनाविधान[illegible]
और रहस्यवाद, छायावाद का समाज-शास्त्रीय अध्यय[illegible] [illegible]
प्रणाली, छायावाद में वेदना और प्रेम-साधना, छायावाद [illegible]वाद, अभिजात-मनोवृत्ति का काव्य : छायावाद, छायावाद-काव्य में विचार-तत्त्व आदि निबन्धों में ही व्यक्त छायावाद की उन विशेषताओं की ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा जो छाया-काव्य के पुनर्मूल्यांकन के प्रसंग में विशेष महत्त्वपूर्ण है। यहाँ उन विशेषताओं की ओर संकेत ही किया जायगा, उनके उदाहरण और प्रमाण देकर मैं व्यर्थ की पुनरावृत्ति करना उचित नहीं मानता।

भाव और भाषा, विषय एवं अभिव्यंजना-प्रणाली—सभी दृष्टियों से हिन्दी-कविता को छायावाद की देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। मैं यहाँ केवल विचार-बीजों को प्रस्तुत कर रहा हूँ; उनके विश्लेषण एवं मेरे द्वारा छाया-काव्य के पुनर्मूल्यांकन को ठीक-ठीक समझने के लिए पुस्तक के सभी निबन्धों का अनुसरण आवश्यक है।

विषय की दृष्टि से छायावाद की प्रमुख विशेषतायें हैं—(१) आत्मनिष्ठ भावना का प्राधान्य, (२) कवि की उद्दाम वैयक्तिकता का अभिव्यंजन, (३) सर्ववादात्मक दृष्टिकोण, (४) प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टि, (५) सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना, (६) सौन्दर्य-दृष्टि का उन्मेष एवं प्रसार, (७) रहस्यवाद के भाव-लोक में जीवात्मा की महत्ता की प्रतिष्ठा, (८) शृंगार और प्रेम-भावना की संयमित-श्लील एवं शिष्ट अभिव्यक्ति, (९) नारी के प्रति व्यापक एवं उदात्त दृष्टिकोण, (१०) साम्यभावना का प्रसार, (११) जीवन के सुख-दुख से ऊपर उठकर इच्छा, बुद्धि और कर्म के सामंजस्य की भावना, (१२) काव्य के भाव, कल्पना और बुद्धि तीनों तत्त्वों का मधुर सामंजस्य, (१३) भावनाओं की सच्चाई और संवेदनशीलता, (१४) यथार्थोन्मुख आदर्शवादी दृष्टिकोण एवं (१५) प्रेम-प्रणय का उच्च आदर्श इत्यादि।

छायावाद की अभिव्यंजनागत विशेषताओं में प्रमुख है—(१) नवीन छन्द-योजना, (२) नवीन भाषा-शैली, (३) नूतन उपमान एवं नये प्रतीक आदि अभिनव अलंकार-योजना, (४) कोमल-मधुर और अत्यन्त सजी भाषा, (५) भाषा में लाक्षणिकता का आतिशय्य, (६) हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव-अभिव्यक्ति के लिए व्याकरणादि प्राचीन रूढ़ परम्पराओं का उचित उल्लंघन, (७) भाषा में चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता, संगीतात्मकता, गति एवं प्रभावोत्पादकता का अद्‌भुत समन्वय, (८) कल्पना का उत्कर्ष, (९) अभिव्यक्ति की अत्यन्त संयमित एवं सूक्ष्म प्रणाली, और (१०) गीति-काव्य की चरम परिणति।

...ायावाद की उपर्युक्त विशेषताओं की सम्यक् व्याख्या पुस्तक के पिछले निबन्धों ...स्तार की जा चुकी है। तो उन विशेषताओं के आलोक में जब हम छाया-काव्य का ...र्मूल्यांकन करते हैं तब हिन्दी-काव्येतिहास में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान असंदिग्ध हो उठता है। प्रो० क्षेम के शब्दों में "छायावाद की एक देन यह भी है कि उसने आधुनिक युग में विकसित हुए विविध विचार-सूत्रों एवं चिंतन-धाराओं को समाविष्ट कर लिया है। प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन, सर्व चेतनवाद, दुखवाद, आनन्दवाद, सौन्दर्यवाद, अरविन्दवाद—आदि कितनी ही प्रवृत्तियाँ छायावादी काव्य में यत्र-तत्र बिखरी हुई हैं।"[1] तो इन्हीं कई कारणों से प्रो० क्षेम ने लिखा है कि "छायावाद हिन्दी खड़ीबोली के विकास-इतिहास का एक गौरवमय अध्याय है, जिससे खड़ीबोली को कुमारिका को यौवन की प्रौढ़ता और जीवन की विविधता के उपयुक्त हाव-भाव की सूक्ष्म सांकेतिकता प्राप्त करने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। उसके हृदय (भाव) और बुद्धि (चिंतन) दोनों का अभूतपूर्व विकास हुआ।"[2] विद्वान् आलोचक डॉ० नगेन्द्र के मत से सहमत होते हुए मैं भी निवेदन करूँगा कि हिन्दी-कविता के इतिहास में अवश्य ही "छायावाद को अधिक-से-अधिक गौरव दिया जा सकता है। और सच ही, जिस कविता ने जीवन के सूक्ष्मतम मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा द्वारा नवीन सौन्दर्य-चेतना जगाकर—एक वृहत् समाज की अभिरुचि का परिष्कार किया; जिसने उसकी वस्तु-मात्र पर अटक जानेवाली दृष्टि पर धार रखकर—उसको इतना नुकीला बना दिया कि हृदय के गहनतम गह्वरों में प्रवेश कर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और तरल-से-तरल भाव-वीचियों को पकड़ सके; जिसने जीवन की कुण्ठाओं को अनन्त रंगवाले स्वप्नों में गुदगुदा दिया; जिसने भाषा को नवीन हाव-भाव, नवीन अश्रु-हास और नवीन विभ्रम कटाक्ष प्रदान किये; जिसने हमारी कला को असंख्य अनमोल छाया-चित्रों से जगमग कर दिया; और अंत में जिसने 'कामायनी' का समृद्ध रूपक, 'पल्लव' और 'युगांत' की कला, 'नीरजा' के अश्रु-नीले गीत, 'परिमल' और 'अनामिका' की अम्बर-चुम्बी उड़ान दी—उस कविता का गौरव अक्षय है!"[3] जिस युग में प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी का आविर्भाव हुआ, वह युग निश्चय ही, हिन्दी-कविता का स्वर्ण-युग कहा जाना चाहिए।

छायावाद के पुनर्मूल्यांकन के प्रसंग में प्रो० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का विचार भी उपयुक्त ही प्रतीत होता है कि "छायावाद-युग हमारे साहित्य का पूर्ण वैभव व प्रभविष्णुता का युग है। यह प्रश्न नहीं है कि, छायावादी कविता आज हमें कितना आगे बढ़ाएगी,... प्रश्न यह है कि यह स्वर्ण-काव्य, यह सौन्दर्य-कोष, अपने में 'आदान' के तत्त्व अधिक रखता है या 'प्रदान' की भी उसमें शक्ति है? कला की जो साधना, सौन्दर्य का जो उन्मेष, कल्पना का जो वैभव, नवीन नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का जो प्रयत्न हमें इस काव्य में मिलता है

---

१. छायावाद की काव्य-साधना—पृष्ठ २०८, प्रो० क्षेम।
२. वही, पृष्ठ ३२४।
३. आ० हिन्दी-कविता की मुख्य

वह अपने में कम नहीं है।"[1] और—"छायावाद अपनी तथा-कथित वैयक्तिक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देकर भी उच्चकोटि का काव्य बन सका। छन्द, भाषाशैली, संगीत, माधुर्य, कल्पना, प्रत्येक दृष्टि से उसने क्रान्ति का एक स्तर बनाया, सौन्दर्य की अनुपम मुद्राओं के चित्रण से उसने हमारा काव्य-उपवन (जो झाड़-झंखाड़ों व वासना के गंदे नालों से दूषित था) सजाया, यह सजावट कोरी सजावट न थी, उसने एक ओर मानवता के सौरभ से दिगंत को सुरभित किया, जीवमात्र के लिए करुणा का वरदान दिया। कण-कण में एक ही सत्ता का दर्शन कर हमें विश्व-मानववाद की ओर बढ़ाया और साम्प्रदायिक तत्त्वों को दबाया। कला के सूक्ष्म अंकन के साथ मनोवैज्ञानिक भित्ति दृढ़ की। मानव-वृत्तियों का बारीक चित्रण किया, जड़-चेतन का परस्पर सौहार्द दिखाकर आत्म-विस्तार का पथ खोल दिया। एक परिष्कृत जन-रुचि को जन्म दिया। भारत के श्रांत, क्लांत, पराधीन क्षणों में उसके व्रणों को उसने सहलाया। अतीत के गौरव से उसके प्राणों में स्पन्दन भरा और उसे आगे की क्रांति के लिए प्रस्तुत किया। छायावाद ने दिशाओं के तार खोलकर विराट् दृष्टिकोण लेकर नवीन युग का अभिनन्दन किया, अतः वह केवल साध्यावस्था का काव्य नहीं, न पलायन है, उसमें जीवन की अमिट प्यास, निराशा के भीतर से झलकती हुई शाश्वत आशा, मनुष्य के प्रति अमर अनुराग उत्पन्न करनेवाले तत्त्व उपस्थित हैं। यदि हम उन्हें न देखें तो उन कलाकारों का दोष नहीं। रही आक्षेपों की बात। वह प्रत्येक युग की अपनी सीमा होती है। छायावाद में भी ऐसे पतनोन्मुख तत्त्व मिलते हैं। परन्तु वही सब कुछ नहीं है। उसके अतिरिक्त कुछ और भी है। उस 'कुछ' को हमें पहचानना होगा, अन्यथा आगे की पीढ़ी हमारे कृतित्व की इस उपेक्षा को सहन न कर सकेगी। कला के क्षेत्र में तो हमें अभी उससे बराबर सीखते ही रहना है।"[2]

और जैसा कि मैं निवेदन कर चुका हूँ, छायावाद की उपर्युक्त विशेषताओं के गंभीरतापूर्वक अध्ययन एवं विश्लेषण के उपरांत ही छाया-काव्य का मूल्यांकन करना उचित है। पूर्वाग्रह अथवा छिद्रान्वेषण किसी भी काव्य के सच्चे मूल्यांकन का बाधक ही होता है, इसमें सन्देह की कोई गुंजायश नहीं।

---

१. हिन्दी साहित्य के प्रमुखवाद और उसके प्रवर्तक—पृष्ठ ३-४।

२. वही—पृष्ठ ६६-६७।

—: प्रो० विश्वंभरनाथ उपाध्याय

छायावाद जिन्दा है !!

क्या छायावाद मर गया ? प्रश्न का उत्तर मेरे लिये तो सहज है ; किन्तु वह उत्तर क्या आपको मान्य होगा ? कौन जाने !! ......

अगर आपसे कोई पूछे कि क्या भक्ति-काव्य मर गया, तो आप उत्तर क्या देंगे ? जिस काल मे भक्ति-काव्यों की प्रधानता थी वह काल भले ही समाप्त हो चुका हो, मगर भक्ति-काव्यो की अमरता के सम्बन्ध मे भला किसे सन्देह हो सकता है ! आज भी क्या भक्ति-काव्यो की रचना नही हो रही ? बीसवी शती के इस वैज्ञानिक युग मे भी श्री मैथिलीशरण गुप्त जैसे भक्त-कवि हमारे बीच विद्यमान हैं ! दरअसल, किसी साहित्यिक प्रवृत्ति की मृत्यु नही हो सकती । यह बात दूसरी है कि प्राधान्य कभी किसी साहित्यिक प्रवृत्ति का रहे, कभी किसी साहित्यिक प्रवृत्ति का ! तात्पर्य यह कि छायावाद की प्रवृत्ति भी आज तक जीवित है और आज से सैकड़ो वर्ष बाद भी जीवित रहेगी । अत्याधुनिक प्रयोगवादी कविताओं के पीछे भी छायावाद की ही तो आत्मा है। छायावाद ने हिन्दी-कविता को जो नई अभिव्यंजना-शक्ति दी, वह एक युग की ही नहीं, युग-युग की बन गई है । शैली की आत्मा में छायावाद सदैव जीवित रहेगा । प्रेम, प्रकृति, नारी, लोकमंगल और लोकरंजन सम्बन्धी अन्यान्य छायावादी कवितायें भी अपनी अन्तर्निहित शक्ति के कारण सदैव अमर रहेंगी ।

आइये, फिर भी, छाया-कुमारी की शव-परीक्षा की धृष्टता करनेवाले साहित्यिक डॉक्टरों की रिपोर्ट देखी जाय !

संयोग की ही बात कहिए, आरंभ से छायावाद को काफी लांछित होना पड़ा। छायावाद की कविता कुमारी उत्पन्न हो हुई थी कि उसकी अभिनव सुन्दरता, उसकी नवीन रूप-भंगिमा के कारण चारों ओर से 'अज्ञातकुलशील'[1] की आवाज़ उठी । छाया-कुमारी का नवीन व्यक्तित्व, उसकी नवीन वाणी तत्कालीन व्यक्तियों की समझ के बाहर थी । इस कारण काफी हंगामा हुआ और उचित समय पर छाया का उचित पालन-पोषण कहाँ तक होता, बल्कि उसे नष्ट-भ्रष्ट करने की ही भरपूर कोशिश की गई। पर उन विरोध-बवंडरों के बीच भी जो जी सकी, वास्तव में उसकी अमरता अक्षय है !

प्रगतिवाद को जहाँ जन्म के साथ ही ऐसे आलोचक मिले जो जन्मकुण्डली बना-बनाकर उसके चक्रवर्तित्व की घोषणा करने लगे, महादेवी जी के अनुसार, ठीक ही, छायावाद को, लेकिन, शैशव-काल कोई सहृदय आलोचक नही मिल सका । जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, लाला भगवानदीन, महावीरप्रसाद द्विवेदी और रामचंद्र शुक्ल जैसे विद्वान् आलोचकों ने भी छायावाद के विरुद्ध कोई कसर उठा न रखी । उस समय की पत्र-पत्रिकाओं मे छाया-

1. पढ़िए "मिट्टी की ओर"—(दिनकर) में 'इतिहास के दृष्टिकोण से' शीर्षक निबंध ।

वादी कवियों के कार्टून छपते थे, उनकी कविताओं की पैरोडी की जाती थी। प्रगतिवाद के द्वारा भी छायावाद लांछित ही किया गया। विचारकों द्वारा छायावाद सहानुभूति-पूर्वक कभी विचारित नहीं हुआ। इस प्रकार व्यर्थ की विरोधी आलोचनाओं की धूल से छायावाद अस्पष्ट और धुँधला ही हो उठा।

इधर आकर १९४० से उसकी मृत्यु के बाद उसके 'पोस्टमार्टम' में भी आलोचकों (?) ने काफी दिलचस्पी दिखाई। श्री इलाचंद्र जोशी ने 'विशाल भारत' में अपने एक निबंध में यह रिपोर्ट प्रकाशित की कि छायावाद मर गया। प्रो० नवलकिशोर गौड़ ने छायावाद की शव-परीक्षा की। और छायावाद के 'पोस्टमार्टम' की पूरी रिपोर्ट डॉक्टर देवराज ने भी हमारे सामने रखने की दया की। आइये, उनके विचारों के आलोक में शव छाया-कुमारी की ज़िन्दगी और साँसों को हम साफ-साफ देखें।

श्री इलाचंद्र जोशी ने अपने निबंध के आरंभ में लिखा था—"प्रस्तुत लेख का शीर्षक पढ़कर पाठकों को अवश्य ही कुछ आश्चर्य होगा। शीर्षक में भविष्यत् काल की क्रिया का प्रयोग न होकर भूतकालीन क्रिया व्यवहृत हुई है—"[1] और प्रो० नवलकिशोर गौड़ के निबंध की आरंभिक पंक्तियाँ हैं—"आलोचक के टेबुल पर आधुनिक हिन्दी-कविता की एक विशिष्ट काव्य-प्रवृत्ति की प्रतिमा पड़ी हुई है। इस प्रतिमा का बाह्य रूप-रंग आकर्षण से भरा है—अंग-प्रत्यंग में सौन्दर्य झलक रहा है। अधरों पर भावों की तरलता है और कपोलों पर उमंग की मादकता, पलकों पर अनुभूति का बोझीलापन और आँखों में अभिलाषाओं की अरुणिमा। किन्तु प्रतिमा निस्पंद है। क्षण भर के लिए आलोचक को भी संशय होता है कि यह निष्प्राणता है या आलस्य की शिथिलता।"[2] तो इस प्रकार संशय दोनों के हृदय में है। क्या छायावाद मर गया? 'हाँ' कहने के पहले दोनों आलोचक संकोच में जैसे कुछ पड़ जाते हैं। वास्तविकता यह है कि साहित्य के 'मार्केट' में छायावाद का 'लेबुल' लगाकर आज भले काव्य-रचना न होती हो, किन्तु छायावाद ने जो अपनी परम्परा स्थापित कर ली है वह तो 'नीरज', 'प्रभात' 'किशोर' आदि की कविताओं में आज भी विद्यमान है ही।

जोशीजी ने छायावाद की मृत्यु का कारण बताया उसकी स्त्रैणता। किन्तु समस्त छाया-काव्य पर यह आक्षेप कितना उचित है, हम अपने अभिज्ञ पाठकों पर ही छोड़ देते हैं। छायावाद के निन्दक-आलोचक के शब्दों में ही सुनिये—"हम जोशीजी के इस मंतव्य से सहमत नहीं कि छायावाद के पतन का कारण उसकी स्त्रैणता है। क्या निराला काव्य का स्त्रैण है? क्या 'कामायनी' वैसी है? हम नहीं समझते कि महादेवीजी के विरह-काव्य पर यह लांछन लगाया जा सकता है और पंत का सुन्दर-सुकुमार प्रकृति-प्रेम भी स्त्रैण नहीं कहा जा सकता।"[3]

१. अक्टूबर १९४०, विशाल भारत, 'छायावादी कविता का विनाश क्यों हुआ' शीर्षक निबंध।
२. साहित्यिक निबंधावली; पृष्ठ ११८; सं० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी और प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा।
३. छायावाद का पतन, पृष्ठ १०।

प्रो० नवलकिशोर गौड़ का मत है कि "छायावाद की अंतर्मुखी चेतना कुछ इतनी कुण्ठित थी कि बहिर्जगत् के प्रति वह सर्वथा निष्क्रिय रह गई। उसमें उद्वेग तो था, किन्तु प्रतिरोध और सक्रियता का नितांत अभाव था; अतृप्ति तो थी, किन्तु स्वस्थ सर्जनात्मक शक्ति की कमी थी।"[1] इसीलिए "इस शताब्दी की चौथी दशाब्दी तक आते आते जब राष्ट्रीय जागरण महान् जन-जागरण के रूप में परिणत होता हुआ दीख पड़ा, तब स्वभावतः इस जन-जागरण के विक्षुब्ध भैरव-नाद का निर्घोष करने में छायावाद की कोमल स्वर-तंत्रियाँ फटी बाँसुरी की तरह फड़फड़ाकर रह गईं।"[2] किन्तु, जैसा कि 'छायावाद का समाज-शास्त्रीय अध्ययन' शीर्षक अपने निबंध में मैं प्रमाणित कर चुका हूँ, गौड़जी का उपर्युक्त विचार सर्वथा भ्रामक है। इसी प्रसंग में मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि पंत के इस मत से भी मैं सहमत नहीं कि "छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी, नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्यबोध और नवीन विचारों का रस नहीं था।"[3] पाठक मेरे विचारों के लिए 'छायावाद का समाज-शास्त्रीय अध्ययन' शीर्षक निबंध के पृष्ठ उलटें। वास्तव में छायावाद पर पलायनवाद का आक्षेप नहीं किया जा सकता। छायावाद ने सब कुछ किया किन्तु साथ ही वह जन-जीवन की घाटियों में भी आया। उसने उपेक्षितों और दीन-दलितों की भी आवाज सुनी, तद्युगीन जीवन-वास्तव की समहत्त्व समस्याओं को भी साहित्य में साकार किया। फलतः हमारे उपर्युक्त आलोचक गलत हैं, ऐसा कहने में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं; और मर्मज्ञ विद्वान् डॉ० केसरीनारायण शुक्ल ने भी यह लिखने की भूल की है कि "अधिकांश छायावादी कविता वास्तविकता से मुँह चुराकर दूर भागती हुई जान पड़ी। उसका संगीत और उसकी मधुर-भावना और उसके रोचक प्रतीक पलायनवादी ही प्रतीत हुए।...... छायावाद ने सौन्दर्य की खोज तो की, लेकिन जीवन की समालोचना न की।......... छायावादी काव्य ने उन सामाजिक और राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय गतिविधि की ओर ध्यान न दिया जिनसे जीवन ही कुचला जा रहा था।......छायावादी काव्य सौन्दर्य की ही सीमा में घिरा रहा। उसने न सामाजिक तथा सांस्कृतिक रूढ़ियों की ओर संकेत किया और न शोषक और शोषित के बीच जगद्व्यापी संघर्ष का दिग्दर्शन कराया।"[4] किन्तु बात गलत है जैसा कि मैं कह चुका हूँ। छायावाद की मृत्यु के दोनों कारण, पलायनवाद और विषय क्षेत्र का अत्यंत संकुचित होना, भ्रामक हैं। तद्युगीन समाज एवं राष्ट्र की परिस्थितियाँ छायावाद में उपेक्षित नहीं। उस समय आर्थिक प्रश्न जितना भी उग्र था, सामाजिक विषमतायें जितनी भी भीषण थीं, रूढ़ियाँ और परंपरायें जितनी भी असंतोष-

१. साहित्यिक निबंधावली (सं० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, देवेन्द्रनाथ शर्मा) पृष्ठ १२१।
२. वही, पृष्ठ १२१।
३. आधुनिक कवि पंत (पर्यालोचन), पृष्ठ १७।
४. आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत—पृष्ठ १८६-७, केसरीनारायण शुक्ल।

जनक थी, छायाकाव्य में वे मुखरित हुई है अवश्य। अपने इतिहास के संशोधित और प्रवर्द्धित संस्करण मे स्वयं आचार्य शुक्ल ने यह लिखने की विवशता का अनुभव किया कि "हर्ष की बात है कि अब कई कवि उस संकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकलकर जगत् और जीवन के और-और मार्मिक पक्षों की ओर भी बढ़ते दिखाई पड़ रहे हैं।"[1] तो सारांश यह कि छायावाद की मृत्यु के ये जो कारण बताये गये हैं (पलायनवाद एवं गलत विषयों की अत्यंत संकुचित सीमा में छायावाद का घिरा रहना) ये गलत और भ्रामक हैं, इसमे तनिक भी सन्देह नहीं।

आइये अब डॉ० देवराज द्वारा बताये गये छायावाद की मृत्यु के कारणों पर हम विचार करें। डॉ० देवराज का सबसे पहला आक्षेप है शब्दमोह, चित्रमोह और कल्पना-मोह का। उनका कहना है कि छायावाद मे शब्दों का मोह है। छायावादी कवि श्रुति-मधुर और सुन्दर अनुप्रासवाले शब्दों के निरर्थक प्रयोग करते है। जैसे उन्हीं के द्वारा उद्धृत[2] एक उदाहरण मैं दे रहा हूँ—

तुम आओगी आशा में अपलक हैं दिशि के उडुगण
आओगी अभिलाषा से चंचल, चिर-नव जीवन-क्षण !

डॉ० देवराज का कथन है कि चिर-नव कोई अर्थ नहीं रखता। पंत की कविताओं मे कुछ पदों का अधिक प्रयोग होता है जैसे चिर, नव आदि।[3] किन्तु मेरा विचार है कि 'चिर-नव' निरर्थक नहीं। कवि को 'चिर-नव' से कोई मोह नही कि वह उसका प्रयोग करे ही। बात वास्तव में यह है कि प्रेयसी की प्रतीक्षा के प्रत्येक क्षण प्रेमी के लिए चिर (सदा) नव (नये) ही प्रतीत होते है। क्षण-क्षण प्राणों में नई आशाएँ, नई अभिलाषाएँ जगाती हैं और इसलिए उस स्थिति में जीवन का प्रत्येक क्षण ही सदैव (चिर) नया (नव)-सा मालूम पड़ता है। इसीलिये कवि ने 'चिर-नव' का प्रयोग किया है जो सार्थक एवं अनुभूति की सच्चाई का ही द्योतक है। ऐसी सीधी-सी बात यदि डॉक्टर देवराज नहीं समझ सकते तो आज की युनिवर्सिटी-शिक्षा का स्तर गिर गया ही मालूम पड़ता है। 'चिर-नव' का अर्थ 'नया-पुराना' ही तो उन्होंने नही ग्रहण किया था ? जो नया होगा, वह पुराना भी कैसे ? और जो पुराना होगा, वह नया कैसे हो सकता है ?—शायद यही अर्थ ग्रहण कर देवराजजी ने शब्दों का प्रयोग निरर्थक बताया ! किन्तु काव्य की अभि-व्यजना, साधारण भाषा से कुछ और होती है, काश, वे यह जान पाते !! इसी प्रकार उनका छायावाद पर चित्र-मोह और कल्पना-मोह का आक्षेप भी गलत है। उनकी उक्ति है कि "विभिन्न उपमाओं द्वारा लेखक किस विचार या विचारों को व्यक्त करना चाहता है, स्पष्ट नही है।" वे पंत की इन पंक्तियों का उदाहरण देते है—

---

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६५६, रामचंद्र शुक्ल।
२. छायावाद का पतन, पृष्ठ २६, डॉ० देवराज।
३. वही, पृष्ठ २८।

कौन कौन तुम परिहृत वसना
म्लान मना, भू पतिता - सी
वातहता विच्छिन्न लता - सी
रति - श्रान्ता व्रज - वनिता - सी
गूढ़ कल्पना - सी कवियों की
अज्ञाता के विस्मय - सी
ऋषियों के गंभीर हृदय - सी
बच्चों के तुतले भय - सी !

पता नहीं, क्या उन्हें समझ में नहीं आता ! देवराज की पंक्तियाँ हैं कि उद्धृत पंक्तियाँ असम्बद्ध हैं। "वस्तुत: उत्प्रेक्षाओं का अनुक्रम ऐसा शिथिल है कि यदि विभिन्न पद्यों को स्थानांतरित कर दिया जाय तो कविता को कोई क्षति नहीं पहुँचेगी। ए. सी. वार्ड ने लिखा है कि A first principle of good writing is progress.(Nineteen twenties, पृ० १०६) अर्थात् अच्छे लेख या रचना की पहली आवश्यकता है प्रगति, छायावादी रचनाओं में कल्पना-बाहुल्य के कारणों से इस प्रगति का अभाव है।"[1] और आगे वे कहते हैं कि "स्कूल के विद्यार्थी भी जानते है कि प्रत्येक लेख या निबंध पैराग्राफों में विभक्त होता है और प्रत्येक पैराग्राफ में एक केन्द्रगत विचार होता है।...इसी प्रकार विभिन्न पैराग्राफ समग्र निबंध के आशय या विषय की पुष्टि अथवा स्पष्टीकरण के लिए होते हैं। प्रत्येक श्रेष्ठ गीत या कविता में भी इसी प्रकार अनुक्रम या व्यवस्था होती है। छायावादी कविताओं में इस व्यवस्था का मिलना दुर्लभ है।"[2] इसीको देवराज ने केन्द्रापगामी व्यंजना-वृत्ति कहा है। किन्तु गीत लिखना और निबंध लिखना एक ही बात है क्या ? गीत क्या निबंध है ? छायावाद के विरोध में बद्धपरिकर हुए देवराज जैसे निन्दक यदि स्कूली विद्यार्थियों के लेख और साहित्यिक गीत लिखने में अन्तर न मानते हों तो उनकी बुद्धि पर विश्वास ही नहीं करना चाहिए। गीतों में भावात्मकता होती है, वहाँ भावों की वह आवृत्ति और पुनरावृत्ति भी हो सकती है जो स्कूली लेखों में अक्षम्य दोष बन जायगा। और फिर प्रश्न यह भी किया जा सकता है कि क्या सभी छायावादी कविताओं में केन्द्रापगामी व्यंजना-प्रवृत्ति है ? 'तुम कनक किरण के अंतराल में', 'आज रहने दो सब गृह-काज' और निराला एवं महादेवी के शत शत गीत क्या देवराजजी द्वारा बताये गये (छायावाद की मृत्यु के) उसी (केन्द्रापगामी व्यंजना-प्रवृत्ति के) लक्षण से आक्रांत है ? छायावाद की अधिकांश कविताओं में वह दोष नहीं है। फिर कुछ उदाहरण देकर वह दोष, जो असामान्य है, उसे छायावाद को सामान्य दुर्बलता नहीं घोषित किया जा सकता। 'कुछ' के आधार पर 'सब कुछ' कहना, यह कैसी भद्दी बात है !

---

१. छायावाद का पतन, पृष्ठ ३४—डॉ० देवराज।
२. छायावाद का पतन, पृष्ठ ३५—डॉ० देवराज।

छायावाद के पतन के और अन्य कारण, डॉ० देवराज के अनुसार, हैं—असामंजस्य (विचारगत और रागात्मक), अस्पष्टता, वास्तविकता पर बलात्कार, 'मूड' की कविता, एवं लोकसंवेदना का तिरस्कार। जैसा कि मैंने अन्यत्र भी निवेदन किया है, छायावाद ने लोक-जीवन का सर्वथा और सदैव तिरस्कार नहीं किया है। इसके लिए 'छायावाद का समाजशास्त्रीय अध्ययन' शीर्षक मेरा निबंध पठनीय है। जहाँ तक अस्पष्टता का प्रश्न है, छायावाद-काव्य अस्पष्ट बिलकुल नहीं है। जाने किसने इतना प्रचार कर दिया कि छायावाद में अस्पष्टता, क्लिष्टता और कठिनता है। वास्तव में छायावाद में कठिनता है नहीं। ठीक से पढ़ने और समझने की कोशिश किये बिना ही जिन लोगों ने ऐसा मान लेने का हठ ठान लिया है उन्हें क्या कहा जाय ! "और तमाशा तो यह है कि ऐसे लोगों में कुछ इस तरह के लोग भी हैं जिन्होंने अपनी तमाम उम्र उर्दू-साहित्य को पढ़ने में लगाई है और केवल हिन्दी वर्णमाला जानने के कारण यह उम्मीद करते हैं कि जो कुछ वे अक्षर और मात्रा जोड़कर पढ़ लेंगे वह सब उनकी समझ में आ जायगा। साहित्य का आनंद लेने के लिए भाषा के ज्ञान की आवश्यकता होती है। वह तो प्रारंभिक बात हुई। इसके पश्चात् साहित्य की वृत्ति पहिचाननी और उसके साथ संवेदना रखनी पड़ती है। तभी कोई साहित्य अपने रस की गाँठ खोलता है।"

लेकिन वैसे लोगों की बात जाने भी दीजिए। जब डॉक्टर देवराज जैसे विद्वान् कहते हैं कि छायावाद में अस्पष्टता है, तो आप क्या मानेंगे ? मेरा निवेदन है कि कुछ एक विद्वानों के न समझ में आने के चलते समस्त छाया-काव्य पर अस्पष्टता का दोषारोपण करना बिलकुल अनुचित होगा। छायाकाव्य की अस्पष्टता बहुत-कुछ आलोचकों की सहृदयता की न्यूनता के कारण है। वास्तव में छायावादी कविताओं पर लोगों ने सहानुभूतिपूर्वक विचार ही नहीं किया ! मेरा निवेदन है कि यदि आप एक बार छायावादी विचारधारा से सहानुभूति स्थापित कर लें, फिर तो आप देखेंगे कि अर्थ अपने आप ही पंक्तियों के ऊपर छलकता-सा प्रतीत होगा। छायावाद पर डॉ० देवराज-द्वारा किये गये आक्षेपों के उचित उत्तर के लिए पाठक चाहें तो श्री विश्वंभर 'मानव'-लिखित समीक्षाग्रंथ "सुमित्रानन्दन पंत" के ६८ से ८० पृष्ठ पढ़ सकते हैं। डॉ० देवराज ने एक बात और मार्के की कही है कि छायावाद के पतन का प्रधान कारण उसका कल्पनाधिक्य है।[1] छायावाद की कल्पना वास्तविकता से बहुत दूर और "इतनी अशक्त है कि छायावादी काव्य पढ़ते समय कभी-कभी सन्देह होता है कि—कवि को कुछ कहना भी है, उसने किसी बाह्य या आंतरिक वास्तविकता का विशद अनुभव भी किया है।"[2] यहाँ "कभी-कभी सन्देह होता है" पर ध्यान दीजिए। कभी-कभी सन्देह होने से समस्त काव्य पर आक्षेप उचित नहीं जँचता। संभव है, इतने विशाल छायावाद-काव्य-साहित्य में कभी कल्पना सच में अशक्त और विलक्षण हो गई हो, वास्तविकता पर वहाँ बलात्कार हुआ हो; किन्तु "कभी-कभी" ऐसा होने से

१. छायावाद का पतन, पृष्ठ (घ)—डॉ० देवराज।
२. वही, पृष्ठ ६९।

समग्र छाया-काव्य को हम बदनाम नहीं कर सकते। डॉ० देवराज की छायावाद को बदनाम करने की प्रवृत्ति यहीं साफ दीख जाती है जब वे मामूली-सी बात (जिसे वे छायावाद की कमजोरी, छायावाद का पतन का कारण मानते हैं) को लेकर (जो छायावाद काव्य में कभी कहीं मिल जाती है) समस्त छाया-काव्य पर कीचड़ उछालने की चेष्टा करने लगते हैं। उनका दूसरा आक्षेप है कि छायावाद में अनुभूति की सच्चाई का ही अभाव है। उसमें ध्वनिपूर्ण शब्दों एवं चित्र-विचित्र कल्पनाओं का आडंबर अधिक है; स्वस्थ, निष्कपट, सहज अनुभूति का अंश कम।[1] किन्तु छायावाद में अनुभूति की सच्चाई नहीं है, ऐसा मैं नहीं मानता। यह ठीक है कि छायावाद में कल्पना की रंगीनी है, सौंदर्य की कौतूहलमय प्यास भी, किन्तु छायावाद में अनुभूति की सच्चाई नहीं है, ऐसा कभी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि यदि ऐसी बात होती तो वह आज निष्प्राण प्रतीत होता। पर वास्तविकता यह है कि छायावादी कविताओं में न समझ में आने पर भी प्रभाव डालने की, अपने भावों में तन्मय कर लेने की ऐसी क्षमता है जो अनुभूति की सच्चाई के अभाव में कदापि संभव नहीं। कविता चोट खाये दिल से निकलती है और चोट खाये दिल को सहज ही प्रभावित करने की क्षमता रखती है। छायावादी कविता में भी जो अनुभूति की सच्चाई है, वह सहज ही दूसरों के अनुभूत हृदयों को प्रभावित करने में समर्थ है। यही कारण है कि 'आँसू', 'पल्लव' और निराला-महादेवी के अनेक गीत जन-जन के मन-प्राणों में बस सके। यही कारण है कि छाया-काव्य की अनेक कृतियाँ व्यक्ति-व्यक्ति के अधरों में बोल सकीं। तो मेरे विवेचन से यह स्पष्ट है कि छाया-काव्य में भी अनुभूति की वह सच्चाई है जिसमें मीरा की करुणा, सूर की तन्मयता एवं तुलसी की पावनता है।

इस प्रकार डॉ० देवराज द्वारा गिनाये गये छायावाद के पतन के कारण (उसकी मृत्यु के लक्षण) गलत प्रमाणित हैं। शायद डॉ० साहब यह भूल गये थे कि जिन कविताओं को पतन के कारणों के उदाहरण-रूप में उन्होंने उद्धृत किया, उनके अतिरिक्त भी अनेक कवितायें छाया-स्कूल में हैं। शब्द-मोह, चित्र-मोह अथवा कल्पना-मोह आदि कहकर छायावाद-काव्य को यों टाला नहीं जा सकता। तुलसी भी 'नाना' शब्द का बार-बार प्रयोग करते हैं, सूर भी 'सूर स्याम' शब्द का बार-बार प्रयोग करते हैं, किन्तु फिर भी वे महाकवि हैं, इसमें किसे सन्देह होगा? उसी प्रकार छाया-काव्य भी उच्चकोटि का है; कतिपय गौण दोषों को 'मैग्नीफाइ' कर उसे हीन-क्षीण बताना उसके साथ अन्याय करना है। "आलोचना का उद्देश्य साहित्य-सम्बन्धी सत्य का उद्घाटन है। ... इसलिए जो आलोचक सत्य को लक्ष्य बनाकर व्यापृत नहीं होता, अथवा जो सत्य को ढकने की चेष्टा करता है, वह जातीय साहित्य और संस्कृति को क्षति पहुँचाता ही है, साथ ही अपने को हास्यास्पद बनाने के बीज भी बोता है। असत्य का आश्रय लेकर बड़ी से बड़ी प्रतिभा अपने को छोटा

---

१. छायावाद का पतन, पृष्ठ १२०—डॉ० देवराज।

बना डालती है।"[1] स्वयं ऐसी बातें कहनेवाले देवराज जब छायावाद की आलोचना में कुछ और ही करने लगते हैं तो उन्हें क्या कहा जाय ! देवराज जैसे विद्वान् अच्छी आलोचना की स्वनिर्मित कसौटी पर ही खरे नहीं उतरते !! तो ठीक ही, श्री विश्वम्भर 'मानव' का कथन उचित प्रतीत होता है कि "डॉ० देवराज की भ्रांत धारणाओं और अधकचरे सिद्धान्तों से हमारी आधुनिक हिन्दी-कविता को बड़ी हानि पहुँचने की संभावना है। इस ग्रन्थ के द्वारा डॉ० देवराज ने जानबूझकर छायावादी काव्य के सौन्दर्य को ढँकने का प्रयत्न किया है। संभव है, छायावादी काव्य में छोटे-मोटे दोष कहीं हों, पर दोषों को आप विशेषतायें नहीं बता सकते—जैसा डॉ० देवराज ने किया है। यदि छायावादी कवियों से भूलें हुई हैं, और भूलें किससे नहीं होतीं, तो आप केवल उन भूलों के आधार पर सारे छायावादी काव्य को लांछित नहीं कर सकते।"[2]

प्रो० नवलकिशोर गौड़ का विचार है कि "जीवन के प्रति छायावाद का दृष्टिकोण वैज्ञानिक नहीं, वरन् भावात्मक रहा है। अतः कर्मकोलाहल के प्रति निरपेक्ष वृत्ति धारण करके वह निष्क्रिय बन गया। यही उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता है; और उसकी मृत्यु का कारण भी।"[3] किन्तु जीवन के प्रति किसी काव्य-प्रवृत्ति का वैज्ञानिक दृष्टिकोण न होना उसकी महान् दुर्बलता है, उसकी मृत्यु का सबसे बड़ा कारण भी, ऐसा हम नहीं मान सकेंगे। महादेवी वर्मा के ही शब्दों में उपर्युक्त आक्षेप का उत्तर सुनिये—"छायावाद का जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रहा यह निर्विवाद है, परन्तु कवि के लिए यह दृष्टिकोण कितना आवश्यक है, इस प्रश्न के कई उत्तर हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण जीवन का बौद्धिक मूल्य देता है, चित्र नहीं; और यदि देता भी है तो वे एक-एक मांसपेशी, शिरा, अस्थि आदि दिखाते हुए उस शरीरचित्र के समान रहते हैं जिसका उपयोग केवल शरीर-विज्ञान के लिए है। आज का बुद्धिवादी युग चाहता है कि कवि बिना अपनी भावना का रंग चढ़ाए यथार्थ का चित्र दे, परन्तु इस यथार्थ का कला में स्थान नहीं क्योंकि वह जीवन के किसी भी रूप से हमारा रागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकता।······ केवल भारतवर्ष के मानचित्र बाँटकर जिस प्रकार राष्ट्रीय भावना जागृत करना सम्भव नहीं है, केवल शतरंज के मुहरों के समान व्यक्तियों को हटा-बढ़ाकर जैसे जनभावना का विकास कठिन है, केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही जीवन की गहराई और विस्तार नाप लेना भी वैसा ही दुस्तर कार्य है।"[4] तो इस भाँति स्पष्ट है कि छायावाद-काव्य पर किये गये आक्षेप सर्वथा गौण एवं भ्रामक हैं। कई छोटे-मोटे दोष यों छायावाद में हैं, पर कुछ त्रुटियाँ यों महान्-से-महान् किस युग के काव्य में नहीं होतीं ? किन्तु उन्हें ही लेकर किसी सारे काव्य-साहित्य को बदनाम करना अनुचित नहीं तो और क्या कहा जायगा ?

१. छायावाद का पतन, पृष्ठ क (निवेदन)—डॉ० देवराज।
२. सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ ८७—विश्वम्भर 'मानव'।
३. साहित्यिक निबन्धावली—सं० देवेन्द्रनाथ शर्मा।
४. आधुनिक कवि—महादेवी वर्मा, पृष्ठ २२-२३।

अतः स्पष्ट ही, छायावाद की मृत्यु के बताये गये वे सभी लक्षण गलत हैं। वास्तव में छायावाद की मृत्यु हुई नहीं है। शैली के क्षेत्र में, ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान, मानवीकरण, नवीन छन्द-योजना, उपचार-वक्रता आदि छायावाद की विशेषताएँ आज भी प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के रूप में जीवित ही है। जिस वर्ष गौड़जी ने छायावाद की शव-परीक्षा की, उसी वर्ष प्रगतिवाद के अपने आलोचक डॉ० रामविलास शर्मा ने कहा—"अभी छायावाद का अंत नहीं हुआ है।" इस प्रकार प्रो० क्षेम के विचार से हम बहुत दूर तक सहमत हैं कि "क्या छायावाद मर गया? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि वह मर नहीं गया, विकसित होकर युगानुरूप होता जा रहा है।"[१] प्रगतिवादी साहित्य प्रायः प्रचारात्मक साहित्य है, राजनीति का दास है, इसीलिए छायावाद कला की दृष्टि से उससे कहीं महान् है। प्रगतिवाद में अनुभूति की सच्चाई नहीं है। 'अधिकांश में प्रगतिवादी साहित्य का निर्माण अभी तक उन्हीं व्यक्तियों के द्वारा हो रहा है जो उच्च मध्यवर्ग के हैं, और जिनका संबंध जनता के साथ भेड़िये और मेमने का-सा रहा है। वे किसानों और मजदूरों की बातें करते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे परीक्षा-भवन में हम जापान का इतिहास लिखते हैं।....इसलिए उनकी अनुभूति अनुभूत नहीं, पठित है, इनकी कविताओं में मस्तिष्क की ऐंठ है, हृत्तंत्री की झंकार नहीं।"[२] यही कारण है कि छायावादी कवितायें जहाँ अपनी अनुभूति की सच्चाई के बल पर आज भी प्रभावित करने में समर्थ हैं, आज भी जीवित हैं; प्रगतिवादी रचनायें अपने भद्देपन और प्रचारात्मक होने के कारण अत्यंत हास्यास्पद हो गई हैं। प्रगतिवाद की कई कमजोरियों के कारण भी छायावादी कविता सजीव और सशक्त बनी हुई है। प्रगतिवाद भौतिक जीवन को ही सब कुछ समझता है। आर्थिक प्रश्न ही उसका अंतिम लक्ष्य है। किन्तु, जैसा कि हम जानते हैं, रोटी ही जीवन में सब कुछ नहीं है। पेट की भूख के अलावे मनुष्य को मन की भी भूख लगा करती है। यही पर तो पशु और मानव में अन्तर है। आर्थिक प्रश्न के अतिरिक्त जीवन में और भी समस्यायें आती हैं। प्रेम, दया, सहानुभूति, प्रकृति-सौन्दर्य आदि भाव भी मानव-मन को आंदोलित करते हैं। छायावाद काव्य इसी दृष्टि से सम्पूर्ण है। वह प्रगतिवाद की भाँति केवल रोटी का ही राग नहीं आलापता रहा। और यही कारण है कि वह आज भी जीवित है।

जिस इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध छायावाद प्रतिक्रिया-रूप में उत्पन्न हुआ था, आज प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में जब दिखाई पड़ता है—

काली मिट्टी काले बादल का बेटा है
टक्कर पर टक्कर देता धक्के देता है
रोड़ों से वह बे-हारे लोहा लेता है
नंगे भूखे काले लोगों का नेता है

---

१. छायावाद की काव्य-साधना—पृष्ठ १३—प्रो० क्षेम।
२. छायावाद और प्रगतिवाद—पृष्ठ १२२—प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा।

आगे आगे आगे आगे सरांता है
सोये सोये मैदानों को परांता है
आओ आओ आओ अरांता है
जीतो जीतो जीतो जीतो बरांता है

तो सहज ही पाठक छायावाद को ओर आकृष्ट होकर चाहता है कि कह उठेः—

कोमल कुसुमों की मधुर रात !
शशि-शतदल का वह सुख विकास
जिसमें निर्मल हो रहा हास,
उसकी साँसों का मलय वात ! —'प्रसाद'

इस प्रकार, स्पष्टतः छायावाद आज भी जन-जन के मन-प्राणों में जीवित है, इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता !! मेरी स्थापना यही है कि छायावाद की मृत्यु की घोषणा हिंदी-आलोचकों के संकुचित दृष्टिकोण का ही बोलता हुआ प्रमाण है और इसके निरंकुश प्रचार ने छाया-काव्य का उचित मूल्यांकन नहीं होने दिया। प्रो० क्षेम के शब्दों में ठीक ही "उसे समझने एवं समझाने के लिए पूर्वाग्रह एवं दुराग्रह के स्थान पर विस्तृत सहृदयता, विशालतर सांस्कृतिक दृष्टि एवं गंभीर-चिन्तन की आवश्यकता है।"[1] श्री हीरालाल तिवारी ने ठीक ही माना है कि "प्रश्न उठता है—क्या छायावाद और रहस्यवाद—मर चुके हैं ? इसका उत्तर भी प्रश्न में ही है। क्या आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति मर्त्य है ? कोई वाद न तो जीता है, न मरता है। बीसवी शती के भौतिकवादी युग में भी निरालाजी अपनी 'अर्चना' में तल्लीन हैं, महादेवीजी वैदिक ऋचाओं का अनुवाद कर रही हैं........तब हम छायावाद....की मृत्यु की कल्पना कैसे कर सकते हैं ?"[2] और नरेन्द्र, नेपाली, शंभूनाथसिंह, हंसकुमार तिवारी, प्रदीप, गुलाब, नीरज,'किशोर', 'प्रभात' आदि की कविताओं में क्या छायावाद ही जीवित नहीं है ? महेन्द्र, नामवरसिंह, व्रजविलास, गिरिधरगोपाल, मुग्ध, अशांत, अखौरी व्रजनन्दन, सुरेन्द्र वर्मा, सत्येन्द्रकुमार आदि भी छायावादी परंपरा के ही तो कलाकार हैं। सारांश यह कि छायावाद की कविता आज भी जीवित है ही। आज भी जब छायावाद की कवितायें लिखी जा रही हैं तो फिर छायावाद का पतन अथवा उसकी मृत्यु कैसे मानी जा सकती है ? सुतरां, हम कदापि सहमत नहीं कि छायावाद मर गया। मेरा दावा यही है कि छायावाद आज भी जीवित है, और अपनी आंतरिक शक्तियों के कारण वह युग-युग तक अमर बना रहेगा। और सुप्रसिद्ध समालोचक डॉ० नगेन्द्र के अनुसार "सच ही, जिस कविता ने जीवन के सूक्ष्मतम मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा द्वारा नवीन सौंदर्य-चेतना जगाकर एक वृहत् समाज की अभिरुचि का परिष्कार किया; जिसने उसकी वस्तु-मात्र पर अटक जानेवाली दृष्टि पर धार रखकर उसको इतना नुकीला बना दिया कि हृदय के गहन-

---

१. छायावाद की काव्य-साधना, पृष्ठ २६२—प्रो० क्षेम।
२. हिन्दी-काव्य-दर्शन, पृष्ठ २१६—हीरालाल तिवारी।

छायावाद की विभूतियाँ

जिस प्रकार वर्ड्सवर्थ, शेली, बैरन और कीट्स अंग्रेजी रोमांटिक पुनर्जागरण-युग की विभूतियाँ हैं, उसी प्रकार प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी, छायावाद युग की अमर विभूतियाँ हैं। रोमांटिक पुनर्जागरण-युग की सारी उपलब्धियाँ जिस तरह वर्ड्सवर्थ, शेली, बैरन और कीट्स की कविताओं में सस्वर हो उठी है, उसी तरह छायावाद-युग की सारी उपलब्धियाँ प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की कविताओं में। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी को ही 'छायावाद का वृहत् चतुष्टय' की भी संज्ञा दी गई है। निश्चय ही छायावाद की इन चार अमर विभूतियों की प्रतिभा का आलोक शतियों तक हिन्दी कविता का पथ आलोकित करता रहेगा। इन लोगों ने अपनी उद्भुत प्रतिभा से जो अनुपम काव्य-ग्रंथ दिये, वे न केवल छायावाद के लिए, वरन् समस्त हिन्दी-कविता के लिए भी गौरव की वस्तुएँ हैं। भाव, भाषा, छन्द, अलंकार, रचना-विधान और जीवन-दर्शन आदि सभी क्षेत्रों में इन चारों कवियों ने अपनी महान् मौलिकता का पुनीत परिचय दिया। छायावाद की किसी कृति-विशेष को लेकर सुधी समीक्षक लोकमंगल और लोकरंजन में से चाहे किसी एक तत्त्व की दूसरे की अपेक्षा अधिक महत्ता मानने की विवशता का अनुभव करें : किन्तु समग्र रूप से विचार करने पर वे पायेंगे कि छायावाद के काव्य-साहित्य में एकांगिता सदैव बनी नहीं रह गई है। छायावाद एक युग की उपज था तो एक युग का प्रेरक भी। छायावाद-काव्य की केवल उन प्रवृत्तियों में नहीं था जो युग से प्रभावित होती हैं, बल्कि वह उनमें भी था जो युग को प्रभावित करती हैं। छायावाद की इन पंक्तियों में यदि तत्कालीन प्रभाव है—

> समरभूमि पर मानव शोणित से रंजित निर्भीक चरण धर
> अभिनंदित हो दिग् घोषित तोपों के गर्जन से प्रलयंकर
> शुभागमन नव वर्ष कर रहा, हालाडोला पर चढ़ दुर्धर,
> वृहद् विमानों के पखों से बरसाकर विष-वह्नि निरन्तर—पंत

तो दूसरी ओर छायावाद की इन पंक्तियों में युग को प्रभावित करने की सामर्थ्य भी—

> मुक्त करो नारी को मानव मुक्त करो नारी को
> युग-युग की निर्मम कारा से जननी, सखी, प्यारी को!—पंत

मूल-रूप में छायावाद का काव्य-साहित्य जीवन के राग और विराग का संघर्ष है। छायावाद की कविताओं में जीवन की कटुताओं से घबड़ाकर एक ओर पलायन-भावना (विराग) है—

> ले चले मुझे भुलावा देकर
> मेरे नाविक! धीरे - धीरे

तो दूसरी तरफ जीवन से अनुराग भी—

जग-जीवन में उल्लास मुझे—पंत

और—

अब जागो जीवन के प्रभात !
रजनी की लाज समेटो तो
कलरव से उठकर भेंटो तो
अरुणांचल में चल रही वात !—प्रसाद

छायावाद की कविता-कविता में राग और विराग का यही स्नेहालिंगन है, इसी राग और विराग का संयोग और सतुलन है। कहा जा सकता है, जीवन के राग ने रूपसौन्दर्य की ओर आकर्षित कर छायावाद को जहाँ सरस बनाया है, वहीं विराग ने आदर्श की ओर खींचकर उसे सुन्दरम् भी बनाया है। इसी संयोग से छायावाद का काव्य-साहित्य न तो अपनी सरसता से कहीं उच्छृंखल और अश्लील हुआ है और न अपनी स्वादर्श-साधना से शुष्क ही। राग और विराग के इसी सतुलन से उसकी सरसता निम्नकोटि की नहीं हो गई है और न उसकी साधना दुस्साध्य ही।

छायावाद के इन चारों कवियों ने प्रकृति के प्रति अपना प्रगाढ़ प्रेम प्रदर्शित किया है। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी—सभी की काव्य-कृतियों में प्रकृति काफी सजधज कर आई है। यही नहीं, इन छायावादी कवियों की कविताओं में प्रकृति के प्रति नूतन दृष्टिकोण भी मिलता है। प्रकृति-वर्णन अनेक रूपों में तो किया ही गया है; साथ ही छायावाद की प्रकृति सजीव सत्ता रखनेवाली सहानुभूतिशील सुकुमारी है। पंतजी को विशेषतः प्रकृति अत्यंत ही प्यारी है—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले ! तेरे बाल - जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?

—पल्लविनी : पंत

महादेवीजी ने तो उससे तादात्म्य ही स्थापित कर लिया है—

फैलते हैं सांध्य - नभ में भाव ही मेरे रंगीले;
तिमिर की दीपावली है रोम मेरे पुलक गीले !

—आधुनिक कवि : महादेवी

प्रकृति के प्रति कौतूहल-भावना, उसके प्रति एक रहस्यात्मक दृष्टि, और उसमें परमात्म तत्त्व की अनुभूति भी छायावादी कवियों की सामान्य विशेषता है। निराला की प्रकृति यथार्थ और रहस्यात्मक दोनों रूपों में सजकर आई है। संध्या - सुन्दरी का उनका चित्रण समस्त छायावादी प्रकृति-वर्णन में उल्लेखनीय है। कुछ पंक्तियाँ देखिये —

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या - सुन्दरी परी - सी

धीरे धीरे धीरे
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर —
किन्तु गंभीर, नहीं है उसमें हास-विलास—परिमल : 'निराला'

अँग्रेजी के रोमांटिक कवियों की तरह ही छायावाद के इन चारों कवियों ने भी अपनी निजी अनुभूतियों को अत्यधिक महत्ता दी। गुप्त, हरिऔध, तुलसी और सूर आदि ने पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर काव्य लिखे। किन्तु छायावाद के इन कवियों ने प्राचीन रूढ़ियों को तोड़कर नई परम्परा की नींव डाली। इनकी मान्यता थी कि राम-कृष्ण और सीता-राधिका की कहानी यदि काव्य बन सकती है तो हमारी निजी मार्मिक अनुभूतियाँ भी निश्चय काव्य के विषय की योग्य हैं। इसीलिए प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी के काव्यों में उनकी अपनी अनुभूतियाँ बड़ी ही स्पष्टता के साथ मुखरित हुई हैं। प्रसाद का 'आँसू', पन्त की 'ग्रंथि', निराला की 'सरोज-स्मृति' और महादेवी के अनेक गीत उपर्युक्त सत्य के उदाहरण हैं।

प्रेम-वर्णन में छायावाद के इन कवियों ने जिस शिष्टता, संयम और कौशल से काम लिया है वह भी हिन्दी-काव्येतिहास में विशेष स्थान पाने का अधिकारी है। बिहारी या अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह अमर्यादित और अश्लील शृंगार का वर्णन इन्होंने नहीं किया है। आलिंगन-चुम्बन और विलास के नग्न चित्र इन्होंने नहीं, दिये हैं। इन छायावादी कवियों का प्रेम-चित्रण सदैव संयमित, शिष्ट और मर्यादित हुआ है। प्रसाद जी की इन पंक्तियों में आलिंगन की व्यंजना कितने संयमित ढग से की गई है—

सिहर भरे निज शिथिल मृदुल अंचल को अधरों से पकड़ो
बेला बीत चली है चंचल बाहु-लता से आ जकड़ो !!—'प्रसाद' : लहर

महादेवी की इन पंक्तियों में चुम्बन की अनूठी व्यंजना भी ध्यातव्य है—

प्रिय जिसने दुख पाला हो
... ...
हँस हालाहल ढाला हो अपनी मधु-सी हाला में
मेरी साधों से निर्मित उन अधरों का प्याला हो !—'महादेवी' : नीरजा

छायावादी कवियों का यही प्रेम नारी, प्रकृति, देश और राष्ट्र से ऊपर उठकर समस्त विश्व का भी स्पर्श करता है। जैसे—

जग को ज्योतिर्मय कर दो !—'निराला' : परिमल

या,

प्रिय मुझे विश्व यह सचराचर। 'पन्त' : पल्लविनी

इतना ही नहीं, यह प्रेम इतना ऊपर उठ जाता है कि हम उसे अलौकिक कहने लग जाते हैं। 'आँसू' में व्यक्त इन पंक्तियों में कवि का प्रेम अलौकिक ही कहा जायगा—

हे जन्म-जन्म के जीवन-साथी संसृति के दुख में
पावन प्रभात हो जावे जागो आलस के सुख में।—'प्रसाद' : आँसू

और उसी अलौकिक की स्नेहमयी चितवन ने ही तो महादेवी को पीड़ा का उपहार दिया है—

साम्राज्य मुझे दे डाला उस चितवन ने पीड़ा का !—आधुनिक कवि : 'महादेवी'

प्रेम में रूप-सौन्दर्य का विशेष महत्त्व है। छायावाद के इन कवियों में भी सौन्दर्य-भावना अद्भुत रूप में विद्यमान है। प्रकृति से लेकर पासी के बच्चों तक में इन लोगों ने सौन्दर्य के दर्शन किये हैं।

सुन्दर लगती नग्न देह मोहती नयन-मन
मानव के बालक हैं ये पासी के बच्चे
रोम रोम मानव, साँचे में ढाले सच्चे !—आधुनिक कवि : 'पन्त'

किन्तु मात्र शारीरिक सौन्दर्य पर ये मुग्ध नहीं। इनके हृदय ने सौन्दर्य को तब तक नहीं अपनाया है जब तक वह पवित्र भी न हो। उनकी दृष्टि में सौन्दर्य के साथ पवित्रता भी अनिवार्य है। इसीलिए पन्त की पंक्तियाँ हैं—

एक कलिका में अखिल वसन्त, धरा पर थी तुम स्वर्ग पुनीत !—पल्लविनी : 'पन्त'

और रूप-वर्णन के साथ 'प्रसाद' जी की दृष्टि भी पवित्रता की ओर रही है—

चंचला स्नान कर आवे चंद्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी !—आँसू : 'प्रसाद'

छायावाद के इस गौरवमय काव्य के रस-मंदिर का द्वार खोलने का श्रेय कविवर श्री जयशंकर प्रसाद को है। प्रसाद जी इस नई धारा की कविता के प्रवर्तक थे। वे छायावाद के ऐसे कवि थे जैसे कभी हुए ही नहीं, न हैं, होने तो चाहिए ही : कौन चाहेगा ऐसे कवि उत्पन्न न हों ? प्रसादजी की सबसे बड़ी विशेषता है कि हिन्दी-कविता में प्रथम-प्रथम उन्होंने ही नई अभिव्यंजना की शक्ति भरी थी। हिन्दी-कविता को उनकी यह देन सदैव अमर रहेगी। प्रसाद को आधुनिक युग के चार महाकवियों में मान सकते हैं। इनकी समस्त साहित्य-रचनाओं में कविता और दर्शन का अनुपम सामंजस्य है। अंग्रेज-कवि W. B. Yeats के समान इनकी काव्य-कृतियों में भी दर्शन का अत्यधिक समावेश है। जिस प्रकार William Blake के संबंध में कहा जाता है कि भौतिक संसार से ऊपर उठा हुआ कवि था और He uses a symbolism of his own invention, a secret language, be wildering to the reader.[१] वही बात प्रसाद के विषय में भी सत्य है। प्रसादजी की भाषा Congreve की ही तरह अलंकृत थी जिसे Dobree के शब्दों में Delicate drawing room poetry कह सकते हैं। प्रसाद का लौकिक प्रेम घनानन्द, रसखान, तुलसी, कीट्स या रोज्जेटी के समान अलौकिक में परिणत हो गया है। और शेक्सपियर से प्रसाद की समानता इस दृष्टि से है कि वे भी शेक्सपियर की ही तरह Be cheerful sir ! के आनन्द-दर्शन में विश्वास करते थे। 'कामायनी' अवश्य ही आधुनिक हिन्दी-कविता की सर्वोत्तम उपलब्धि है। उसके समकक्ष स्थान पाने

१. A short History of English Literature—B. I for Evans, Pages 43.

की अधिकारिणी बहुत कम ही कवितायें होंगी। निराला को छोड़कर आधुनिक युग के किसी भी कवि ने अपने पाठकों के लिए शायद ही उतना दिया जितना प्रसाद ने। गेटे के समान प्रसाद भी बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार थे। कल्पना की उत्कृष्टता, भाव-सघनता और दार्शनिकता में भी दोनों कवि एक समान हैं। दोनों की साहित्य कृतियों में अतृप्त लालसा और असफल प्रेम की पीड़ा अभिव्यजित है। दोनों की करुण अनुभूतियाँ कविताओं के तारों में बज उठी हैं। एक की वेदना Sorrows of werther में अभिव्यक्त है तो दूसरे की 'आँसू' में। दोनों में प्रेम की वेदना, पीड़ांतक प्यास, अतृप्त आशा और गहरी अन्तर्व्यथा है। और फिर इनकी परिणति होती है आध्यात्मिक आलोक में, जो नई प्रेरणा बनकर जीवन के नवीन अध्याय के स्वर्णिम पृष्ठ उलटती है। 'कामायनी' में अमर कवि का अमर सन्देश है।

प्रसाद के बाद छायावाद की अमर विभूतियों में पंत का ही नाम लिया जा सकता है। अंग्रेज कवि शेली की तरह उनकी कविता में भी spontaneous overflow from the heart है और संगीत, प्रकृति-प्रेम, अक्षय माधुर्य एवं अतृप्त तृष्णा और उमंग भरी भावना भी। दोनों कवियों में स्वातंत्र्य भावना और शोषितों के प्रति अनुराग भी एक सदृश है। इतना ही नहीं, दोनों के व्यक्तित्व का भी निर्माण समान तत्वों से ही हुआ है। घुंघराले बाल, आसवसिक्त आँखें, कोमल क्लांत शरीर, विहँसता मुखमंडल, स्वर और चाल में अजीब माधुर्य आदि सारी की सारी बातें पंत में शेली की ही तरह हैं। गीतात्मकता भी पंत में शेली से कम नहीं। तो श्री नन्ददुलारे वाजपेयी के इस विचार से हम निश्चय ही सहमत नहीं हो सकेंगे कि 'हिन्दी का शेली हिन्दी में आता ही आता रह गया।'[1] गीतों में जिस संक्षिप्तता, तीव्रता, सरसता, भाव की एकता, सरलता और संगीत की अपेक्षा है पंत के गीतों में भी अवश्य ही पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध हैं। पंत में अन्य छायावादियों की अपेक्षा अधिक कौतूहल-भावना है—

कौन तुम रूपसि कौन ?
× × ×
कौन-कौन तुम परिहत वसना
म्लान-मना भू पतिता-सी ?
× × ×
शांत सरोवर का उर
किस इच्छा से लहराकर
हो उठता चंचल चंचल ?

भाषा की दृष्टि से पंत में लाक्षणिकता, कोमलता, चित्रमयता और अप्रस्तुत-विधान आदि विशेषतायें प्रचुर परिमाण में भरी पाई जाती हैं। उपमा में तो कवि ने काफी कमाल दिखाया है। उपमा देने लगते हैं तो जैसे उपमाओं की झड़ी लग जाती है—

१. हिन्दी-साहित्य—नन्ददुलारे वाजपेयी।

गूढ़ कल्पना-सी कवियों की अज्ञाता के विस्मय-सी
ऋषियों के गंभीर हृदय-सी बच्चों के तुतले भय-सी !

× × ×

चिर अतीत की विस्मृत स्मृति-सी नीरवता की सी झंकार
आँखमिचौनी-सी असीम की निर्जनता की-सी उद्‌गार !

'निराला' में जॉन डन की तरह व्यंग्य, प्रेम और दर्शन की त्रिविध प्रवृत्तियाँ हम पाते हैं। मैथ्यू अर्नल्ड और जॉन मिल्टन के समान ही निराला काफी विद्वान् और शास्त्रज्ञ भी हैं। अँग्रेज-कवि बैरन के सदृश उनकी कविताओं से अधिक उनके व्यक्तित्व की ही चर्चा आलोचकों द्वारा अधिक हुई है। और जैसा कि बैरन के संबंध में कहा गया है Apart from his verse Byron had already a reputation as a mad cap and romantically sinister personality[1]—निराला के काव्य-जीवन की भी वही आरंभिक गाथा है। यद्यपि साहित्यिक आलोचना में कवि नहीं, कविता का विवेचन अभीष्ट हैं; फिर भी निराला के प्रसंग में उनकी कविता से पहले उनके कवि का ही महत्त्व अधिक हो जाता है। कारण स्पष्ट है कि दूसरे छायावादी कवियों से निराला ने अपने व्यक्तित्व को सबसे बढ़कर प्रमुखता दी है। उन्होंने 'मैं' शैली अपनाई और उन्हें अपने पर अगाध विश्वास था। कबीर की ही तरह अक्खड़ व्यक्तित्व का यह कवि यदि किसी अच्छे समाज में पैदा होता तो शायद विशेष प्रशंसित होता। निराला की कृतियों में कविता और संगीत एक दूसरे से चिर-स्नेहालिंगन में बँधे हैं। छन्द के क्षेत्र में पहली-पहली बार क्रांति और क्रांति को सफल बनाने का श्रेय हम निराला को ही दे सकते हैं। प्रास के रजत पाश और छन्द के बन्ध को तोड़कर निराला ने ही मुक्त छन्द की नींव डाली।

'नीहार', 'नीरजा' आदि की कवयित्री की कविताएँ उसके अतृप्त प्रेम के आँसुओं से सजल-स्नात हैं। कवियों के सम्पर्क और कविता के किसी भी वातावरण से दूर पलकर इस कवयित्री ने जो गीत लिखे, वे उसके सजल हृदय की सच्ची अभिव्यक्ति ही हैं। कई दृष्टियों से महादेवी की तुलना अंग्रेज कवयित्री सी० जी० रोज्जेटी से की जाती है। दोनों अज्ञात प्रियतम की बाट जोहती हुई उदास और उन्मन कवयित्रियाँ हैं, दोनों में मर्मान्तक वेदना, विफल प्रेम, आंतरिक पीड़ा, मधुर आत्मसमर्पण और अमल-धवल पावनता है। उनके मन-प्राणों में किसी के प्रेम की दुनिया बस गई है, किसी के प्रति प्यार अब जीवन का भार बन गया है। भाषा और चित्रों पर उनका अद्‌भुत अधिकार है, और छायावाद को अधिक से अधिक मार्मिक बनाने का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है। उनकी रचनायें केवल काव्य-कौशल के ही सुन्दर उदाहरण नहीं, वरन् साथ ही वे अज्ञात प्रिय के प्रति उनके प्रगाढ़ और पवित्र प्रेम की भी उज्ज्वल प्रमाण हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में "गीत लिखने में जैसी

1. A Short History of English Literature—B. I for Evans, Pages 52.

सफलता महादेवी को मिली और किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भाव-भंगी। जगह-जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी भाव-व्यंजना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।"[१]

कोमलता छायावाद की इन चार विभूतियों में सबसे अधिक पंत की कविताओं में मिलती है। किन्तु विद्वान् आलोचक श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के मत से सहमत होते हुए हम कह सकते हैं कि "प्रसाद ने जिस छायावाद को चलाया, पंत ने 'पल्लव' की प्रतिभा द्वारा उसे एक स्वच्छ (और मैं 'सुकुमार' भी जोड़ देना चाहूँगा।) शरीर दिया, किन्तु उसे जिस विदग्धता की अपेक्षा थी, वह मिली महादेवी की कविताओं से।"[२] प्रसाद में प्रेम का आदर्श है, महादेवी में प्रेम की साधना। महादेवी का गीत-प्रति-गीत किसी अज्ञात के प्रति आराधना है। अज्ञात की इस आराधना में आराधिका की करुणा ने करुणाकर की आरती उतारी है। प्रसाद में भावना की तीव्रता है, पंत में कला की। महादेवी की काव्य-कला साधना के समीप है। निराला में तीनों से पृथक् विलक्षण चिन्तन और भारवि-सा अर्थ-गांभीर्य है। निराला की भाषा-शैली की सामासिकता, गुम्फित पदावली, क्लिष्टता और दार्शनिकता कुल मिलाकर सभी उन्हें केशवदास के समान बना देती है। वे छायावाद-युग के कठिन काव्य के प्रेत माने जाते हैं। फिर भी काव्य और दर्शन का अद्भुत सामंजस्य, कला-कौशल आदि के कारण वे शीर्ष स्थान के अधिकारी हैं।

तो निष्कर्षतः हम कह सकते है कि हिन्दी-काव्येतिहास के जिस युग में प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी का आगमन हुआ, वह अवश्य ही हिन्दी-कविता का स्वर्ण-युग है। छायावाद के ये चार कवि, निस्सन्देह, केवल छायावाद-युग की ही नहीं, वरन् हिन्दी-कविता के समस्त आधुनिक काल की अमर विभूतियाँ है। इन्होंने ठीक ही हिन्दी-कविता-कुमारी को "यौवन की प्रौढ़ता और जीवन की विविधता के उपयुक्त हाव-भाव की सूक्ष्म सांकेतिकता के अनुकूल अभिव्यक्ति प्राप्त करने का स्वर्ण अवसर दिया।........उसकी देह और मन दोनों की शोभा बढ़ाई।"[३] और आलोचक-प्रवर श्री इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में "इस प्रकार छायावादी कविता के ये चार उज्ज्वल नक्षत्र है जिनके प्रकाश में अन्य कवियों ने अपनी काव्य-साधना के पथ को पार किया है। ये चार ही अपनी नवीन अभिव्यंजना, नवीन भाषाशैली, और नवीन कला-कौशल के कारण शीर्ष स्थान पाने के अधिकारी हैं।"

———

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ७२०।
२. संचारिणी—पृष्ठ २०७, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी।
३. छायावाद की काव्य-साधना—प्रो० क्षेम।

छायावाद के प्रवर्त्तक-कवि "प्रसाद"

'हंस' के आत्म-कथा विशेषांक के लिए 'प्रसाद' जी ने अपनी एक कविता ही दी थी। किन्तु उसमे भी प्रसादजी ने आत्मपरिचय नही दिया है, आत्मपरिचय छिपाया ही है। कुछ पंक्तियां देखिये—

मधुप गुनगुनाकर कह जाता, कौन कहानी यह अपनी
मुरझाकर गिर रही पत्तियां, देखो, कितनी आज घनी
इस गभीर अनन्त नीलिमा मे, असख्य जीवन-इतिहास—
यह लो करते ही रहते है, अपना व्यग्य-मलिन-उपहास
तब भी कहते हो कह डालूं, दुर्बलता अपनी-बीती
तुम सुनकर सुख पाओगे, देखोगे यह गागर रीती !

... ...

उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊं, मधुर चाँदनी रातों की
अरे खिलखिलाकर हँसते, होनेवाली उन बातों की
मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया ?
आलिगन आते आते मुसक्या कर जो भाग गया !

... ...

छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथायें आज कहूँ !
क्या यह अच्छा नही कि औरों की सुनता मैं मौन रहूं ?
सुनकर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आत्मकथा ?
अभी समय भी नही—थकी सोई है मेरी मौन व्यथा !

—बात यह थी कि प्रसाद जी आत्म-प्रचार से सर्वथा दूर थे। वे किसी भी सभा-सोसाइटी में भाग नही लेते थे। किन्तु इसका तात्पर्य यह नही कि वे अभिमानी थे। वास्तव में वे इतने संकोचशील, इतने लजीले स्वभाव के व्यक्ति थे कि प्राय: अपने घर या दूकान पर ही बैठकर अपने मित्रो से बातचीत करते थे। उनमें बड़ी शिष्टता और शालीनता थी। वह सभी प्रकार की साहित्यिक गुटबंदियों से दूर निरन्तर अपनी काव्य-साधना में लीन रहते। प्रसाद के व्यक्तित्व के इस दिव्य रूप से अभिभूत होकर श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने ठीक ही लिखा है कि "बाहर से उनका व्यक्तित्व देखकर कोई उनकी मुस्कान से मुग्ध होता, कोई उनकी व्यवहार-पटुता या मैत्री से मोहित होता। किन्तु उनके इस दिव्य किन्तु मोहक बाह्य के भीतर जाकर अपनी ही कृति में आनन्द माननेवाले कीर्ति की लिप्सा न रखनेवाले, भली-बुरी समीक्षाओं से समान रूप में तटस्थ रहनेवाले, निष्कपट तथा दिव्यतर प्रसाद जी

को बहुत कम लोगों ने देखा।''[1] प्रसाद का जीवन एक साधक के समान था। सभा-समितियों से वे इस तरह दूर भागते थे जैसे वहाँ जाने से ही उनकी साधना नष्ट हो जायगी। फिर भी, प्रसाद की प्रतिभा से हमारे साहित्य का प्रत्येक क्षेत्र गौरवान्वित और पवित्र हुआ है। सुप्रसिद्ध समालोचक श्री रामनाथ 'सुमन' के शब्दों में ''प्रसाद जी निस्सन्देह हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ बौद्धिक प्रतिभा थे। उनके जीवन के इस केन्द्रीय सत्य को यह देखकर ही हम समझ सकते है कि प्रचार के इस युग में, जब साहित्यिकता भी अखबारों के सहारे ही रास्ता तै करती है, वह तूफानों और प्रलोभनों के बीच किस प्रकार अचल रह सके थे।......हिन्दी में और भी महान् लेखक हुए हैं और है, पर आत्मप्रचार से इस प्रकार दूर भागनेवाला मुझे कोई दूसरा न दिखाई दिया। प्रसाद जी का-सा व्यक्तित्व बहुत ही कम लेखकों को नसीब होता है, हिन्दी में तो शायद ही किसी को हो। रूप, रंग, स्वास्थ्य, विद्या सब उनके पास थी और जीवन के मध्यकाल में पैसा भी था। वह अपने लेखों या पुस्तकों से कुछ पारिश्रमिक न लेते थे, इसलिए प्रकाशकों एवं संपादकों द्वारा उनकी रचनाओं का प्रचार हो सकता था।''[2] तो क्या कारण था कि प्रसाद जी 'छोटी-सी कुटिया' मे 'एकांत सृजन' करते रहे? क्यों वे मौन रहे? 'वह कौन-सी चीज थी जो नाम की, यश की, प्रचार की मेनकाओं के अगणित प्रलोभनों के बीच उन्हें स्थिर रख सकी?' मेरी सम्मति में इसका कारण यह था कि प्रसाद का काव्य-प्रासाद उनके अपने स्वाभाविक जीवन का काव्यात्मक अभिव्यंजन है। प्रसाद जी ने कभी अपने काव्य का उद्देश्य यश-प्राप्त करना नहीं बताया था। उन्होंने कवितायें केवल इसलिये लिखीं कि उन्हें अपने जीवन की मार्मिक अनुभूतियों को वाणी देनी थी, उन्हें अपने जीवन का शृंगार करना था। अतएव उनकी कृतियों की 'साहित्य के मार्केट' में क्या कीमत होगी, वे इसकी चिंता नहीं करते थे। प्रसाद की प्रतिभा इतनी महान् थी कि उसे किसी के प्रोत्साहन और प्रशंसा की आवश्यकता ही नहीं हुई। श्री रामनाथ 'सुमन' के मत से सहमत होते हुए मैं कहूँगा कि ठीक ही, ''इसीलिए इतनी निस्पृहता से, बिना किसी बदले के, वह हमारे साहित्य की सेवा कर सके थे। उनकी साहित्य-साधना के लिए किसी बाहरी उत्तेजक द्रव्य—Stimulent—की जरूरत न थी।''[3] प्रसाद कवि की महत्ता का यही रहस्य है। प्रसाद की काव्य-कला, जीवन-दर्शन, उनके सारे साहित्य की यही कुंजी है। उनके साहित्य को किसी भी भौतिक-वादी या उपयोगितावादी तुलाओं पर तौलना अनुचित और अन्याय होगा। प्रसाद की काव्यधारा का अत्यन्त ही स्वच्छन्द और निर्बाध विकास हुआ है। और उस युग की महान् शक्तियाँ भी प्रसाद के जिस साहित्य को नहीं दबा सकीं वह अपनी महत्ता का आप प्रमाण है। प्रसाद की साधना सच्चे कलाकार की साधना थी।

---

१. जयशंकर प्रसाद : नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ १६।
२. कवि प्रसाद की काव्य-साधना—श्री रामनाथ 'सुमन', पृष्ठ ३२७-८।
३. वही, पृष्ठ ३२६।

छायावाद के प्रवर्तक-कवि "प्रसाद"

'हंस' के आत्म-कथा विशेषांक के लिए 'प्रसाद' जी ने अपनी एक कविता ही दी थी। किन्तु उसमें भी प्रसादजी ने आत्मपरिचय नही दिया है, आत्मपरिचय छिपाया ही है। कुछ पंक्तियां देखिये—

मधुप गुनगुनाकर कह जाता, कौन कहानी यह अपनी
मुरझाकर गिर रही पत्तियां, देखो, कितनी आज घनी
इस गभीर अनन्त नीलिमा मे, असख्य जीवन-इतिहास—
यह लो करते ही रहते है, अपना व्यग्य मलिन-उपहास
तब भी कहते हो कह डालूं, दुर्बलता अपनी-बीती
तुम सुनकर सुख पाओगे, देखोगे यह गागर रीती !
... ...
उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ, मधुर चाँदनी रातों की
अरे खिलखिलाकर हँसते, होनेवाली उन बातों की
मिला कहाँ वह सुख जिसका मै स्वप्न देखकर जाग गया ?
आलिगन आते आते मुसक्या कर जो भाग गया !
... ...
छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथायें आज कहूँ !
क्या यह अच्छा नही कि औरों की सुनता मै मौन रहूँ ?
सुनकर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आत्मकथा ?
अभी समय भी नही—थकी सोई है मेरी मौन व्यथा !

—बात यह थी कि प्रसाद जी आत्म-प्रचार से सर्वथा दूर थे। वे किसी भी सभा-सोसाइटी में भाग नही लेते थे। किन्तु इसका तात्पर्य यह नही कि वे अभिमानी थे। वास्तव मे वे इतने संकोचशील, इतने लजीले स्वभाव के व्यक्ति थे कि प्रायः अपने घर या दूकान पर ही बैठकर अपने मित्रों से बातचीत करते थे। उनमें बड़ी शिष्टता और शालीनता थी। वह सभी प्रकार की साहित्यिक गुटबंदियों से दूर निरन्तर अपनी काव्य-साधना में लीन रहते। प्रसाद के व्यक्तित्व के इस दिव्य रूप से अभिभूत होकर श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने ठीक ही लिखा है कि "बाहर से उनका व्यक्तित्व देखकर कोई उनकी मुस्कान से मुग्ध होता, कोई उनकी व्यवहार-पटुता या मैत्री से मोहित होता। किन्तु उनके इस दिव्य किन्तु मोहक बाह्य के भीतर जाकर अपनी ही कृति मे आनन्द माननेवाले कीर्ति की लिप्सा न रखनेवाले, भली-बुरी समीक्षाओं से समान रूप में तटस्थ रहनेवाले, निश्छल तथा दिव्यतर प्रसाद जी

को बहुत कम लोगों ने देखा।''[1] प्रसाद का जीवन एक साधक के समान था। सभा-समितियों से वे इस तरह दूर भागते थे जैसे वहाँ जाने से ही उनकी साधना नष्ट हो जायगी। फिर भी, प्रसाद की प्रतिभा से हमारे साहित्य का प्रत्येक क्षेत्र गौरवान्वित और पवित्र हुआ है। सुप्रसिद्ध समालोचक श्री रामनाथ 'सुमन' के शब्दों में "प्रसाद जी निस्सन्देह हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ बौद्धिक प्रतिभा थे। उनके जीवन के इस केन्द्रीय सत्य को यह देखकर ही हम समझ सकते हैं कि प्रचार के इस युग में, जब साहित्यिकता भी अखबारों के सहारे ही रास्ता तै करती है, वह तूफानों और प्रलोभनों के बीच किस प्रकार अचल रह सके थे।......हिन्दी में और भी महान् लेखक हुए हैं और हैं, पर आत्मप्रचार से इस प्रकार दूर भागनेवाला मुझे कोई दूसरा न दिखाई दिया। प्रसाद जी का-सा व्यक्तित्व बहुत ही कम लेखकों को नसीब होता है, हिन्दी में तो शायद ही किसी को हो। रूप, रंग, स्वास्थ्य, विद्या सब उनके पास थी और जीवन के मध्यकाल में पैसा भी था। वह अपने लेखों या पुस्तकों से कुछ पारिश्रमिक न लेते थे, इसलिए प्रकाशकों एवं संपादकों द्वारा उनकी रचनाओं का प्रचार हो सकता था।''[2] तो क्या कारण था कि प्रसाद जी 'छोटी-सी कुटिया' में 'एकांत सृजन' करते रहे? क्यों वे मौन रहे? 'वह कौन-सी चीज थी जो नाम की, यश की, प्रचार की मेनकाओं के अगणित प्रलोभनों के बीच उन्हें स्थिर रख सकी?' मेरी सम्मति में इसका कारण यह था कि प्रसाद का काव्य-प्रासाद उनके अपने स्वाभाविक जीवन का काव्यात्मक अभिव्यंजन है। प्रसाद जी ने कभी अपने काव्य का उद्देश्य यश-प्राप्त करना नहीं बताया था। उन्होंने कवितायें केवल इसलिये लिखीं कि उन्हें अपने जीवन की मार्मिक अनुभूतियों को वाणी देनी थी, उन्हें अपने जीवन का शृंगार करना था। अतएव उनकी कृतियों की 'साहित्य के मार्केट' में क्या कीमत होगी, वे इसकी चिंता नहीं करते थे। प्रसाद की प्रतिभा इतनी महान् थी कि उसे किसी के प्रोत्साहन और प्रशंसा की आवश्यकता ही नहीं हुई। श्री रामनाथ 'सुमन' के मत से सहमत होते हुए मैं कहूँगा कि ठीक ही, "इसीलिए इतनी निस्पृहता से, बिना किसी बदले के, वह हमारे साहित्य की सेवा कर सके थे। उनकी साहित्य-साधना के लिए किसी बाहरी उत्तेजक द्रव्य—Stimulent—की जरूरत न थी।''[3] प्रसाद कवि की महत्ता का यही रहस्य है। प्रसाद की काव्य-कला, जीवन-दर्शन, उनके सारे साहित्य की यही कुंजी है। उनके साहित्य को किसी भी भौतिकवादी या उपयोगितावादी तुलाओं पर तौलना अनुचित और अन्याय होगा। प्रसाद की काव्यधारा का अत्यन्त ही स्वच्छन्द और निर्बाध विकास हुआ है। और उस युग की महान् शक्तियाँ भी प्रसाद के जिस साहित्य को नहीं दबा सकीं वह अपनी महत्ता का आप प्रमाण है। प्रसाद की साधना सच्चे कलाकार की साधना थी।

---

१. जयशंकर प्रसाद : नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ १६।
२. कवि प्रसाद की काव्य-साधना—श्री रामनाथ 'सुमन', पृष्ठ ३२७-८।
३. वही, पृष्ठ ३२६।

'प्रेम-पथिक' की ब्रजभाषा की कविता का रूप, जो सन् १६०५ का है, उसमें भी छायावाद के तत्त्व विद्यमान हैं। प्रेम का उच्च आध्यात्मिक चित्रण जो छायावाद की अपनी विशेषता है, वहां भी आप पाते हैं। इस प्रकार बहुत पहले, लगभग १६०० से ही, प्रसाद जी छायावाद को अपनी कविताओं में प्रत्याशित कर रहे थे। प्रसाद ने मानो इस नई को anticipate किया था। आइये, प्रसाद की काव्य-कृतियों और उनकी प्रमुख विशेषताओं का अब हम विवेचन करें। हमारा विचार है कि हिन्दी के अन्य किसी भी कवि ने प्रसाद जी की तरह अपनी कला-कुशल उंगलियों से इतने सुन्दर, इतने उत्कृष्ट और चिर-नवीन काव्य-कुसुम चुनकर कविता-कुमारी को शायद ही अर्पित किये! प्रसाद की कृतियां न केवल मौलिक हैं, अपितु महान् भी।

यह आश्चर्यपूर्ण तथ्य है कि खड़ीबोली हिन्दी-कविता का इतना महान् कवि प्रथम-प्रथम ब्रजभाषा की कलियों के साथ आया। कवि की ऐसी रचनायें 'चित्राधार' में संगृहीत हैं। कृतियों के विकास-क्रम की दृष्टि से प्रसाद के काव्य-जीवन को पाँच भागों में हम बाँट सकते हैं। 'चित्राधार'-काल कवि के काव्य-जीवन का भारतेन्दु-प्रभावित युग है। इस समय कवि की अभिव्यक्ति का माध्यम ब्रजभाषा रहा। इसलिए किशोर कवि की इस समय की कवितायें ब्रजभाषा की परंपराओं से सर्वदा मुक्त नहीं हो सकी हैं। फिर भी, परंपरा का अंत और नवीन धारा का प्रोद्भास तो यहाँ भी द्योतित है ही। 'नीरव प्रेम' की इन पंक्तियों में छायावाद की प्रेम-वेदना और विरह-साधना का आभास मिलता है—

> प्रथम भाषण ज्यों अधरान में
> रहत है, तउ गूंजत प्रान में।
> × × ×
> कछु कहो नहिं पै कहि जात हो।
> कछु लहो नहिं पै लहि जात हो॥

और इसके बाद दूसरा युग है द्विवेदी-प्रभावित काल, सन् १९१० से १९१४ ई० तक। इस समय की प्रमुख रचनायें हैं—'कानन-कुसुम', 'करुणालय' और 'महाराणा का महत्त्व'। कवि-प्रसाद का यह समय द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियों से प्रभावित है। 'कानन-कुसुम' १६१२ ई० में प्रकाशित प्रबंधात्मक और मुक्तक कविताओं का संग्रह है। इसमें छन्द, भाषा, अभिव्यक्ति द्विवेदी-युगीन भार से सब-कुछ संयोजित हैं। संस्कृत-काव्यों से जिस तरह द्विवेदी-युगीन कलाकार प्रभावित थे, 'चित्राधार' की 'वन-मिलन', 'अयोध्या-उद्धार', 'उर्वशी' आदि रचनायें भी क्रमशः संस्कृत की 'शकुन्तला', 'रघुवंश' और 'विक्रमोर्वशी' से प्रभावित हुई हैं। इस काल में कवि ने प्रकृति में चरम सत्ता का आभास भी पाया है। प्रकृति में सर्वत्र उसे कोई अज्ञात अनन्त चेतना दिखाई देती है। 'करुणालय' गीति-नाट्य है। 'महाराणा का महत्त्व' एक प्रबंधकाव्य है। 'महाराणा के महत्त्व' में कथा सुगठित है और नारी-सौन्दर्य का सुन्दर चित्रांकन हुआ है।

इसके उपरांत कवि की प्रथम विशिष्ट रचना 'प्रेम-पथिक' है। श्री रामनाथ 'सुमन'

कवि प्रसाद का जन्म, सुँघनी साहु के नाम के विख्यात, काशी के एक प्रतिष्ठित, धनी और उदार परिवार में हुआ था। भारतेन्दु की इस नगरी में उत्पन्न होनेवाला यह कलाकार भारतेन्दु से भी कहीं प्रतिभाशाली था। बचपन से ही करुणा, वैभव और कवि-समाज के वातावरण में पलकर प्रसाद की प्रतिभा भी साहित्य की ओर बढ़ी। पन्द्रह वर्ष की अवस्था से ये कवितायें लिखने लगे। इनकी कविता पहले-पहल 'भारतेन्दु' में छपी। किन्तु प्रसाद की महान् प्रतिभा 'इन्दु' के प्रकाश मे ही दिखाई दी।

'इन्दु' का प्रकाशन हिन्दी-कविता के इतिहास में एक युगांतरकारी घटना है। 'इन्दु' के आलोक में 'प्रसाद' की महान् प्रतिभा तो दिखाई ही दी, साथ ही 'इन्दु' ने हिन्दी-कविता की नई धारा का पथ भी प्रकाशित किया। 'इन्दु' अपने समय की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका थी। 'सरस्वती' से भी उसका स्टैंण्डर्ड कहीं ऊँचा था। हिन्दी-कविता के विकास को ठीक-ठीक समझने के लिए, अतएव, 'इन्दु' की फाइलों को उलटना अत्यावश्यक है। हिन्दी-साहित्य प्रायः सभी इतिहास-लेखकों ने यहीं पर भूल की है। उनकी ओर से क्षमा-याचना भी क्षम्य के औचित्य के अनुकूल नहीं। हिन्दी-कविता की एक नई धारा—छायावाद—को लाने और गति देने का श्रेय 'इन्दु' को ही प्राप्त है। कवि प्रसाद की आरम्भिक छायावादी कवितायें 'इन्दु' के ही स्वर्णिम पृष्ठ हैं। 'प्रसाद' की कविता 'सरस्वती' में नहीं छपी थी, और इसीलिए शुक्लजी ने छायावाद के प्रवर्त्तन का अनुचित श्रेय श्रीधर पाठक और श्री मुकुटधर पाण्डेय को देने की भूल की। वस्तुतः प्रसाद ही छायावाद के प्रवर्त्तक-कवि थे। पद्माकर की यह कविता, जिसमें सहज छायात्मकता है, सदैव उनके ओठों पर रहती—

प्रलय पयोनिधि लों लहरैं उठन लागीं लहरा लग्यो त्यों होन पौन पुरवैया को।
भीर भरी झाँझरी बिलोकि मँझधार परी धीरता धरात पद्माकर खिवैया को॥
कहाँ वार कहाँ पार सूझत न ओरछोर कोऊ न दिखात है रखैया मेरी नैया को।
बहन न पैहे घेरि घाट ही लगैहे ऐसो अमित भरोसो मोहिं मेरे रघुरैया को॥

सन् १९१३-१४ के लगभग प्रसाद जी की अनेक छायावादी कवितायें 'इन्दु' में प्रकाशित हो चुकी थीं। इसके पहले भी प्रसाद की रचनाओं में छायावाद का पूर्वाभास आप पायेंगे। आरंभ में प्रसाद की रचनायें ब्रजभाषा मे मिलती हैं। ब्रजभाषा में लिखी प्रसाद की कविताओं में छायावाद की विशेषतायें पर्याप्त परिमाण मे उपलब्ध हैं। उनमें छन्दों की नवीनता है, अभिव्यंजना का छायावादी चमत्कार भी। शीर्षक भी छायावादी ढंग के हैं, जैसे 'सन्ध्या-तारा', 'नीरव प्रेम', 'प्रभात-कुसुम' आदि। छायावाद की जिज्ञासा-मूलक रहस्य-भावना भी इन पंक्तियों में देखे जाने योग्य है—

कहो तुम कौन लख्यो शुभ रूप
गह्यो इतनी प्रतिभा गुअनूप
पड्यो सुग पै कहु कौन प्रकाश
इतौ तुम माँहि लखात विकाश।

'प्रेम-पथिक' की ब्रजभाषा की कविता का रूप, जो सन् १६०५ का है, उसमें भी छायावाद के तत्त्व विद्यमान हैं। प्रेम का उच्च आध्यात्मिक चित्रण जो छायावाद की अपनी विशेषता है, वहां भी आप पाते है। इस प्रकार बहुत पहले, लगभग १६०० से ही, प्रसाद जी छायावाद को अपनी कविताओं में प्रत्याशित कर रहे थे। प्रसाद ने मानो इस नई को anticipate किया था। आइये, प्रसाद की काव्य-कृतियों और उनकी प्रमुख विशेषताओं का अब हम विवेचन करें। हमारा विचार है कि हिन्दी के अन्य किसी भी कवि ने प्रसाद जी की तरह अपनी कला-कुशल उँगलियों से इतने सुन्दर, इतने उत्कृष्ट और चिर-नवीन काव्य-कुसुम चुनकर कविता-कुमारी को शायद ही अर्पित किये ! प्रसाद की कृतियाँ न केवल मौलिक हैं, अपितु महान् भी।

यह आश्चर्यपूर्ण तथ्य है कि खड़ीबोली हिन्दी-कविता का इतना महान् कवि प्रथम-प्रथम ब्रजभाषा की कलियों के साथ आया। कवि की ऐसी रचनायें 'चित्राधार' में संगृहीत हैं। कृतियों के विकास-क्रम की दृष्टि से प्रसाद के काव्य-जीवन को पाँच भागों में हम बाँट सकते हैं। 'चित्राधार'-काल कवि के काव्य-जीवन का भारतेन्दु-प्रभावित युग है। इस समय कवि की अभिव्यक्ति का माध्यम ब्रजभाषा रहा। इसलिए किशोर कवि की इस समय की कवितायें ब्रजभाषा की परंपराओं से सर्वदा मुक्त नहीं हो सकी हैं। फिर भी, परंपरा का अंत और नवीन धारा का प्रोद्भास तो यहाँ भी द्योतित है ही। 'नीरव प्रेम' की इन पंक्तियों में छायावाद की प्रेम-वेदना और विरह-साधना का आभास मिलता है—

प्रथम भाषण ज्यों अधरान में
रहत है, तउ गूंजत प्रान में।
× × ×
कछु कहो नहिं पै कहि जात हो।
कछु लहो नहिं पै लहि जात हो ॥

और इसके बाद दूसरा युग है द्विवेदी-प्रभावित काल, सन् १९१० से १९१४ ई० तक। इस समय की प्रमुख रचनायें हैं—'कानन-कुसुम', 'करुणालय' और 'महाराणा का महत्त्व'। कवि-प्रसाद का यह समय द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियों से प्रभावित है। 'कानन-कुसुम' १६१२ ई० में प्रकाशित प्रबंधात्मक और मुक्तक कविताओं का संग्रह है। इसमें छन्द, भाषा, अभिव्यक्ति द्विवेदी-युगीन भार से सब-कुछ संयोजित है। संस्कृत-काव्यों से जिस तरह द्विवेदी-युगीन कलाकार प्रभावित थे, 'चित्राधार' की 'वन-मिलन', 'अयोध्या-उद्धार', 'उर्वशी' आदि रचनायें भी क्रमशः संस्कृत की 'शकुन्तला', 'रघुवंश' और 'विक्रमोर्वशी' से प्रभावित हुई हैं। इस काल में कवि ने प्रकृति में चरम सत्ता का आभास भी पाया है। प्रकृति में सर्वत्र उसे कोई अज्ञात अनन्त चेतना दिखाई देती है। 'करुणालय' गीति-नाट्य है। 'महाराणा का महत्त्व' एक प्रबंधकाव्य है। 'महाराणा के महत्त्व' में कथा सुगठित है और नारी-सौन्दर्य का सुन्दर चित्रांकन हुआ है।

इसके उपरांत कवि की प्रथम विशिष्ट रचना 'प्रेम-पथिक' है। श्री रामनाथ 'सुमन'

के शब्दों में यह 'प्रेम-पथिक' "आधुनिक हिन्दी-काव्य-संसार में पवित्र प्रेमानुभव का संदेश लानेवाला पहला देवदूत है।" प्रेम-पथिक में कहानी कल्पित है। इसमें द्विवेदी-युग की प्रतिक्रिया और स्वच्छन्दतावाद के दर्शन होते हैं। 'प्रेम-पथिक' के द्वारा कवि ने स्वच्छन्दतावादी धारा का प्रवर्तन किया। इसके छंद में भी नवीनता है। कवि ने ३० मात्राओं के अतुकान्त छन्द का प्रयोग किया है। पंक्तियाँ परस्पर स्वतंत्र नहीं हैं। इसकी पंक्तियाँ चल पंक्तियाँ Run-on lines हैं। जैसे—

"चलो, मिलें सौन्दर्य-प्रेमनिधि में"— तब वहाँ चमेली ने—
"जहाँ अखण्ड शांति रहती है—वहाँ सदा स्वच्छन्द रहें!"

प्रथम-प्रथम इसी पुस्तक में अमूर्त प्रतीक और लाक्षणिक प्रयोग के भी दर्शन होते हैं। छायावाद की प्रकृति का रूप-सौन्दर्य भी यहाँ पूर्वाभासित है—

ताराओं की माला-कवरी में लटकाये चन्द्रमुखी
रजनी अपने शानिराज्य-आसन पर आकर बैठ गई
तेजमयी तापसी कुटी से, निकल कुंज में आ बैठी
चन्द्रशालिनी रजनी थी चुपचाप देखती दोनों को ...

और छायावादी भाषा भी द्रष्टव्य है—

चिढ़ जाता था वसंत का कोकिल भी सुनकर वह बोली
सिहर उठा करता था मलयज इन श्वासों के सौरभ से!

सन् १९१४ से १९२० तक का समय कवि प्रसाद के काव्य-जीवन का तृतीय युग है। इस समय की कवितायें पूर्णतः छायावादी-रहस्यवादी है। 'प्रेम-पथिक' में कवि की प्रेम-भावना जिस अध्यात्म की ओर उन्मुख हुई, वह इस काल में आकर 'झरना' से निकलती हुई 'आँसू' की पंक्तियों में अपनी पराकाष्ठा को पहुँच जाती है। 'झरना' की रचनायें स्फुट मुक्तक कवितायें हैं जिसमें छायावाद के पूर्ण दर्शन होते हैं। प्रकृति में किसी चरम चेतना का अनुभव कर कवि की जिज्ञासा पूछ बैठती है—

कौन प्रकृति के करुण काव्य-सा, वृक्षपत्र की मधु-छाया में
लिखा हुआ-सा अचल पड़ा है, अमृत-सदृश नश्वर काया में?

और भी कुछ पंक्तियाँ देखिए—

बरसते हों तारे के फूल छिपे तुम नील पटी में कौन
उड़ती है सौरभ की धूल, कोकिला कैसे सहती मौन!

'झरना' में प्रसाद जी की काव्य-कला काफी निखर गई है। परिष्कृत भाषा-शैली, सुकुमार कल्पना और भाव-प्रवणता इस समय की रचनाओं की अन्यतम विशेषतायें हैं। 'झरना' में कवि की भाव-लहरियों का सुन्दर नर्तन अनुरंजित है। यहाँ यौवन, आशा, निराशा, पीड़ा, हर्ष, उल्लास है। निष्कर्षतः यह प्रसाद के काव्य-जीवन का निश्चय ही 'टर्निङ्ग पोआमेंट' है।

इसके बाद कवि के जीवन में भावना-युग (सन् १९२० से १९२८ तक) आता है।

कवि ने अपनी नई राह बना ली थी, अब वह हठ-भावना से उस पर तीव्र गति के साथ बढ़ चलता है। यहाँ आकर कवि मानव-जीवन का गायक हो गया है। प्रेम और विलास की छाया मे अध्यात्म का स्पर्श कवि की अपनी अनुपम विशेषता है। मेरे उपर्युक्त विचार का साकार प्रमाण कवि के 'आँसू' हैं। 'आँसू' 'प्रसाद' के काव्य-जीवन के १९२० से १९२८, जिसे मैंने भावना-युग बताया, उस काल की प्रतिनिधि रचना है। मेरा तो विश्वास है कि 'आँसू' प्रसाद की सारी कृतियों में सबसे अधिक प्रभावोत्पादक, सबसे उत्कृष्ट एवं लोकप्रिय भी है। छायावाद-काव्य को इसने एक विशेष व्यक्तित्व दिया। इसमें रंजनकारिणी कल्पना, भावनाओं की अत्यंत सुकुमार योजना, अभिव्यंजना की विचित्रता, प्रेम-वेदना की दिव्य अनुभूति और फिर सुख-दुख के संगम दर्शन होते है। 'आँसू' की शैली मे वक्रता के कारण कुछ आलोचकों को उसमें अध्यात्म की छाया दिखाई दी। क्या सचमुच 'आँसू' आध्यात्मिक काव्य है? मेरी सम्मति में 'आँसू' न तो पूर्णत: आध्यात्मिक है, न पूर्णत: लौकिक ही। यहाँ लौकिक प्रेम ही इतना ऊँचा उठ गया है कि उसमें दिव्यता, उसमें अध्यात्म हम पाने लगते है। संभव है, कवि के जीवन मे वास्तव में कोई प्रेम-घटना घटी हो। संभव है, 'आँसू' उसी घटना की अभिव्यक्ति हो। तो क्या इस घटना के लौकिक संस्पर्श से 'आँसू' की कविता निकृष्ट है? हम ऐसा कभी नही मान सकेंगे। प्रसाद विलास और उत्तान शृंगार के गायक नही। वे पुनीत सौन्दर्य और उदात्त प्रेम के कुशल कवि हैं। आधुनिक कवियों में प्रसाद का स्थान सदैव ऊँचा रहेगा। 'आँसू' आधुनिक हिन्दी-कविता का सर्वोत्कृष्ट प्रेम-विरह-काव्य है। यह प्रेम-विरह-मूलक काव्य अपने युग में नितांत नूतन काव्य था। डॉ० रघुबीर के शब्दों में " 'आँसू' हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि है और उस कवि की एक अमर कृति है। प्रसाद के इस अमर काव्य के एक-एक पद पर सुन्दर भाव-चित्र बन सकते हैं।" लोकप्रियता तो इस पुस्तक की इतनी बढ़ी कि हजारों कवियों ने उसके अनुकरण का विफल प्रयास किया। "उन भलेमानसों को इतनी-सी बात ध्यान में न आई कि आँखों में तेल और मिर्चे डालने से वे 'आँसू' नहो निकाल सकते जो कलेजे के किसी कोने में खुरच लग जाने से, स्वयं टप-टप, नरगिस की कलियों-से चू पड़ते हैं।"[1] कवि के सुन्दर-सुकुमार सपने जब टूट जाते हैं तो उसका हृदय 'आँसू' में हाहाकार कर उठता है। इसमें कवि के जीवन की आत्माभिव्यक्ति अत्यंत संयमित रूप में बड़ी ही कुशलता के साथ हुई है। निश्चय, यह कवि की प्रतिनिधि रचना है। जब सुन्दर सपने टूट जाते है, कवि की वेदना गरज उठती है—

इस करुणा कलित हृदय में अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों मे वेदना असीम गरजती?

किसी के प्रति प्रेम के रंग से उसका हृदय अनुरंजित है। यह प्रेम का रंग अब छुड़ाये नहीं छूटता। वह तो आँसुओं से धुल-धुलकर दिन-प्रतिदिन और निखर रहा है—

---

१. कवि प्रसाद की काव्य-साधना—श्री रामनाथ 'सुमन', पृ० ४५।

अब छुटता नहीं छुड़ाये रँग गया हृदय है ऐसा
आँसू से धुला निखरता यह रंग अनोखा कैसा ?

कवि के हृदय में असीम वेदना है। फिर भी उसे अपनी आहों पर विश्वास है—

इस शिथिल आह से खिचकर तुम आओगे—आओगे
इस बढ़ी व्यथा को मेरी रो-रोकर अपनाओगे !

अंत में कवि दुख-सुख और विरह-मिलन के सामान्य क्रम को स्वीकार करता हुआ कहता है—

मानव-जीवन-वेदी पर परिणय हो विरह-मिलन का
सुख-दुख दोनो नाचेंगे है खेल आँख का, मन का !!

'लहर' 'आंसू' के पश्चात् की रचना है। इसमें कवि की कई प्रकार की गीतात्मक रचनायें संगृहीत हैं। कुछ कथात्मक कवितायें भी हैं। जैसे—'अशोक की चिता', 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'प्रलय की छाया'। इन सभी रचनाओं का स्रोत ऐतिहासिक है। कुल मिलाकर 'लहर' के प्रसाद छायावादी से रहस्यवादी बन जाते हैं। आत्मा और ब्रह्म की लुकाछिपी को कवि ने अत्यंत ही कलात्मक अभिव्यक्ति दी है—

निज अलकों के अंधकार में तुम कैसे छिप आओगे
इतना सजग कुतूहल ! ठहरो यह न कभी बन पाओगे
आह, चूम लूं, जिन चरणों को चांप-चांप कर उन्हें नहीं
दुख दो इतना, अरे अरुणिमा-ऊषा-सी वह उधर बही
वसुधा चरणचिह्न-सी बनकर यहीं पड़ी रह जावेगी

× × ×

'लहर' से 'कामायनी' तक सन् १९२८ से १९३७ तक का काव्य-जीवन कवि प्रसाद का चिंतन-काल है। इस समय कवि की भावनाओं का आवेग कम हो जाता है। इस समय कवि की जीवन-साधना पूरी हो जाती है, उसकी काव्य-कला अपनी चरम पराकाष्ठा को पहुँच जाती है। सौन्दर्य और शृंगार की चंचल सरिता चिंतन-सागर में निमज्जित हुई दिखाई देती है। इस काल की रचनाओं में दार्शनिक गांभीर्य प्रमुख हो उठता है। 'लहर' की अनेक पंक्तियाँ प्रस्तुत कथन की प्रमाण हैं। अब प्रेम के सत्य तक कवि पहुँच चुका है—

पागल रे ! वह मिलता है कब उसको तो देते ही हैं सब
आँसू के कन-कन से गिन कर यह विश्व लिये है ऋण उधार
तू क्यों फिर उठता है पुकार ! मुझको न मिला रे कभी प्यार !

'लहर' में विविधता के भी दर्शन होते हैं। कुछ कविताओं में अध्यात्म है, कुछ में प्रकृति-चित्रण। कहीं पलायनवाद की भावना भी है—

ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक ! धीरे-धीरे

तो कहीं जीवन-वास्तव के प्रति अनुराग का स्वर भी—

अब जागो जीवन के प्रभात ! रजनी की लाज समेटो तो
कलरव से उठकर भेंटो तो अरुणांचल में चल रही वात !

कवि कविता-लहरों से अनुरोध करता है कि वह पंकज-वन में (सुख-विलास के स्वप्निल वातावरण में) भूल न जाय, वह सूनेपन के जीवन की ओर भी आये, जीवन के पुलिन के विरस अधर भी चूमे—

तू भूल न री, पंकज-वन में
जीवन के इस सूनेपन में
ओ प्यार पुलक से भरी ढुलक
आ, चूम, पुलिन के विरस अधर !

इस पुस्तक में प्रकृति के सुन्दर चित्र भी बड़े आकर्षक बन पड़े है। मैं केवल एक चित्र देकर इस प्रसंग को समाप्त करना चाहूँगा। देखिये कोमल कुसुमों की मधुर रात—

शशि शतदल का वह सुख-विकास
जिसमें निर्मल हो रहा हास,
उसकी सांसों का मलय वात
कोमल कुसुमों की मधुर रात !
वह लाज भरी कलियाँ अनन्त
परिमल-घूंघट ढँक रहा दन्त
कँप-कँप चुप-चुप कर रही बात
कोमल कुसुमों की मधुर रात !

'आँसू'-काल की जवानी स्मृतियाँ भी इस रचना में कहीं-कहीं बोल उठी हैं—

आह रे वह अधीर यौवन !

अथवा—

तुम्हारी आँखों का बचपन !
खेलता था जब अल्हड़ खेल
अजिर के उर में भरा कुलेल
हारता था, हँस-हँसकर मन
आह रे ! वह व्यतीत जीवन !

यौवन के वे सुनहले दिन भुलाये नहीं भूलते—

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे !

इसके अलावा 'लहर' में प्रथम-प्रथम बार प्रसाद का कवि अपने भावों के छायालोक से आगे बढ़कर जग-जीवन के अन्य पक्षों की ओर भी उन्मुख हुआ है। वह बुद्ध-भगवान् के प्रति अपनी श्रद्धा-भावना प्रकट करता है, कतिपय ऐतिहासिक कथाओं का अपनी कल्पना की कला से शृंगार करता है।

और अब 'प्रसाद' के काव्य-जीवन की चरम उपलब्धि (greatest achieve-

ment) है 'कामायनी' ! 'कामायनी' प्रसाद की श्रेष्ठतम कृति है जिसमें मानव-मन की वृत्तियों को प्रतीकात्मक ढंग से अभिव्यक्ति दी गई है। कवि ने जीवन की सारी समस्याओं का समाधान इच्छा, कर्म और ज्ञान के समन्वय में बतलाया है। इनका एक दूसरे से न मिलना ही जीवन की सारी उलझनों की जड़ है। ज्ञान अलग है, कर्म अलग, तो जीवन की इच्छा कैसे पूरी हो सकती है ?

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है इच्छा क्यों पूरी हो मन की
एक दूसरे से मिल न सकें यह विडम्बना है जीवन की !

'कामायनी' में कवि अपने उत्कर्ष पर है। वह जीवन के रहस्य को समझ गया है, जीवन के चरम सत्य का उसने साक्षात्कार कर लिया है। इसलिए श्री रामनाथ 'सुमन' के शब्दों में ठीक ही "कामायनी में कवि प्रसाद के काव्य की पूर्णता है। उनके काव्य का आदर्श यहाँ पूर्ण हो गया है। उनका काव्य कुतूहल के साथ आरम्भ हुआ था। उसके बाद की कविताओं में एक जिज्ञासा हमें दिखाई देती है। यह जिज्ञासा ही क्रमशः पुष्ट, विकसित और संस्कृत होती गई है। जिज्ञासा से प्रीति होती है। यह प्रीति प्रकृति को लेकर उठी और दिन-दिन मानवी होती गई है। प्रकृति में भी मानवी स्पर्श और मानव-सापेक्ष्यता का अनुभव है। इस प्रकृति और मनुष्य के सम्बन्ध से ही एक ओर प्रेम संस्कृत हो गया है, दूसरी ओर सौन्दर्य की चेतना बढ़ती गई है। यह शुद्ध एवं चेतन सौन्दर्यबोध ही, जिसे दूसरे शब्दों में आनन्द की अनुभूति कहेंगे, कलाकार अथवा कवि का इष्ट है। यह सम्पूर्ण मानवता का इष्ट है। प्रकृति-दर्शन में जो मानव-सापेक्ष्यता रही है वही विकसित और पूर्णतर होती गई है और उसी के कारण अंत में कवि सम्पूर्ण प्रकृति के साथ पूर्णतः सामंजस्य स्थापित कर सका है और सब कुछ आत्म-रूप ही हो गया है। जो मानवता एक दिन अपनी क्षुद्रता में संकुचित और आबद्ध थी, संसार में रहकर ही विशाल और विश्वरूप हो गई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि प्रसाद का सम्पूर्ण काव्य एक स्वस्थ चेतना की चरम एवं व्यापक अनुभूति को लेकर विकसित हुआ है और 'कामायनी' में आकर यह काव्य की धारा समुद्र में मिलनेवाली नदी की भाँति अपनी ही विराट् परिणति में समाप्त हो गई है।"[1]

'कामायनी' छायावाद की प्रौढ़तम रचना है। इसमें भाव, विचार, भाषा, अभिव्यक्ति सभी अपने चरम उत्कर्ष पर हैं। इलाचन्द्र जोशी ने ठीक ही लिखा है कि " 'कामायनी' विश्वकाव्य कहे जाने की विशिष्टता रखती है।......यदि प्रसाद जी की 'कामायनी' का अविकल प्रतिरूप उन्नीसवीं शताब्दी के योरोप में प्रकाशित होता तो वे विश्व साहित्य के शीर्ष-स्थानीय कलाकारों में निर्विवाद रूप से स्थान पा जाते।.....प्रसाद जी इस काव्य में प्रारम्भ से अन्त तक सर्वत्र अपने उन्नततम तथा चरम रूप में व्यक्त हुए हैं।"

'कामायनी' में प्रकृति के बड़े ही सुन्दर सजीव चित्र भरे पड़े हैं। कवि का प्रभात-चित्रण अत्यन्त उत्कृष्ट है—

उषा सुनहले तीर बरसती जयलक्ष्मी-सी उदित हुई

---

१. कवि प्रसाद की काव्यसाधना—रामनाथ 'सुमन', पृष्ठ १०१-१०२।

नारी का रूप-वर्णन भी बड़ा सुन्दर हुआ है—

नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।

'कामायनी' का काव्य-सौन्दर्य इतनी ही बातों में सीमित नहीं। कला की दृष्टि से भी 'कामायनी' की उत्कृष्टता सिद्ध है। अलंकारों का सुन्दर और सहज स्वाभाविक उपयोग कविता की उत्कृष्टता का वर्द्धक तत्त्व है। उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के सहज-स्वाभाविक उपयोग का उदाहरण इन पंक्तियों में दृष्टिगत है—

माधवी निशा मे अलसाई अलकों में लुकते तारा-सी;
क्या हो सूने मरु अंचल में अन्तः सलिला की धारा-सी ?
× × ×
उठती है किरणों के ऊपर—कोमल किसलय की छाजन-सी;
स्वर का मधु निःस्वन रन्ध्रों में—जैसे कुछ दूर बजे वंशी !!

भाषा सदैव कवि के भावों की सहगामिनी रही है। जहाँ भावों की मार्मिकता है, भाषा कोमल और सुमधुर हो उठी है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

जहाँ मरु ज्वाला धधकती चातकी कन को तरसती
उन्हीं जीवन-घाटियों की मैं सरस बरसात रे मन !
× × ×
चिर निराश नीरधर से प्रतिच्छायित अश्रु-सर से
मधुप मुखर मरंद मुकुलित मैं सजल जलजात रे मन !

वास्तव में गीत लिखने में प्रसाद बड़े सफल रहे हैं। और मुख्यतः उनके गीत यौवन और प्रेम के गीत हैं। प्रस्तुत गीत की पंक्तियों में सलज्ज सौन्दर्य का यौवन देखिए—

तुम कनक-किरन के अंतराल में
लुक छिपकर चलते हो क्यों ?
नत मस्तक गर्व वहन करते
यौवन के घन रसकण ढरते
हे लाज भरे सौन्दर्य ! बता दो
मौन बने रहते हो क्यों ?
बेला विभ्रम की बीत चली
रजनीगंधा की कली खिली
अब सांध्य मलय आकुलित दुकूल—
कलित हो यों छिपते हो क्यों ?

प्रसाद के गीतों में प्रेम, करुणा और रहस्यात्मकता भी है। प्रकृति-सौन्दर्य के भी उनके अनेक गीत काफी कलात्मक हुए हैं। एक उदाहरण अलम् है—

बीती विभावरी जाग री
अम्बर-पनघट में डुबो रही ताराघट ऊषा नागरी

खगकुल कुलकुल सा बोल रहा किसलय का अंचल डोल रहा
लो यह लतिका भी भर लाई मधु-मुकुल नवल-रस गागरी !
अधरों में राग अमन्द पिये अलकों में मलयज बन्द किये—
तू अब तक सोई है आली आँखों में भरे विहाग री !!

सामान्यत: कवि प्रसाद की काव्यगत विशेषताओं को हम इसी प्रकार निरूपित कर सकते हैं। उन्होंने हिन्दी-कविता-कुमारी को नवीन सौन्दर्य से अलकृत किया : रूढ़ परंपराओ के बन्धनो को तोड़कर नई कविता (छायावाद) को जन्म दिया। वे आधुनिक हिन्दी-कविता के जनक थे। उन्होंने साथ ही हिन्दी कविता-कुमारी की देह और आत्मा की शोभा बढ़ाई। अर्थात्, उन्होंने कविता की अभिव्यंजना-शैली और कविता के भाव-लोक दोनों का उन्नयन किया। कवि प्रसाद की कविताओं मे प्रेम और यौवन के जितने चित्र आये हैं सभी संयमित मर्यादित होते हुए भी अस्वाभाविक नही। मानव-सौन्दर्य के अंकन में मनोवैज्ञानिकता की सूक्ष्म पकड़ भी प्रसाद की प्रतिभा की अपनी विशेषता है। प्रमाण-स्वरूप गर्भिणी नारी का यह चित्र दिया जाता है—

केतकी गर्भ-सा पीला मुँह आँखों मे आलस भरा स्नेह
कुछ कृशता नई लजीली थी कम्पित लतिका-सी लिये देह !—कामायनी

रहस्यात्मकता प्रसाद की अन्यतम विशेषता है, यह हम कह चुके हैं। अलंकार, भाषा आदि कलात्मक उत्कर्ष पर भी विचार किया जा चुका है। रस की दृष्टि से प्रसाद की कवितायें प्राय: शृंगार से ओत प्रोत हैं। प्रधानता शृंगार की ही है, यों अन्य रसों के उदाहरण भी असंभव नही। 'आँसू' पूरी पुस्तक तो वियोग-शृंगार की ही है।

इसके अतिरिक्त, प्रसाद की दूसरी विशेषता है देश-भक्ति। डॉ० प्रेमशङ्कर के मत से मैं सहमत हूँ कि "अपने राजनीतिक जीवन मे प्रसाद पूर्ण देशभक्त थे। उन्होंने स्वयं राजनीति में सक्रिय भाग नहीं लिया, किन्तु अपने विचारो मे वे पूर्णतया देश-प्रेमी थे।"[1] उनके कई गीतों से उनकी देश-प्रेम की भावना का पता चलता है। 'लहर' की ऐतिहासिक रचनाओं मे राष्ट्र-प्रेम की ही प्रच्छन्न भावना है। नाटकों मे तो कवि ने अपने देश के इतिहास के स्वर्ण-पृष्ठों को उलटा ही है। भारतीय इतिहास के गौरवमय अध्याय से अपने नाटकों की कथावस्तु लेकर कवि ने जैसे देश के ऐश्वर्यशाली अतीत की याद दिलाकर नवीन चेतना का संचार किया है। 'हिमालय के आँगन मे उसे प्रथम किरणों का दे उपहार' और 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' आदि ऐसी ही रचनायें हैं। साथ ही कवि ने नव-जागरण का सन्देश देकर मन-प्राणो मे नई गति भरने की कोशिश की है। कवि का प्रेरणा-गीत है—

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पन्थ है बढ़े चलो, बढ़े चलो

---

१. प्रसाद का काव्य—डॉ० प्रेमशङ्कर।

और भी—

विचलित हो अचल न मौन रहे निष्ठुर शृंगार उतरता हो
क्रन्दन कम्पन न पुकार बने, निज साहस पर निर्भरता हो
अपनी ज्वाला को आप पिए, नव-नील-कण्ठ की छाप लिए
विश्राम शान्ति को शाप दिए, ऊपर-ऊँचे सब झेल चलें !

किन्तु रहस्यात्मकता, देशभक्ति—इन सबों को छोड़कर प्रसाद जी की सबसे बड़ी विशेषता है, मेरी समझ में, उनकी कविताओं का मानवीय भूमि पर प्रतिष्ठित होना। कवि प्रसाद का काव्य-प्रासाद मानवीय भावों की नींव पर ही खड़ा है। यदि आप नींव को देखेंगे तभी प्रासाद का भी मूल्यांकन कर सकेंगे। 'चित्राधार' से 'कामायनी' तक प्रसाद जी की सभी रचनाओं में सर्वत्र मानव-भावनायें ही मुखरित हैं। प्रत्येक रचनाओं में जीवन ही विविध वातावरण में परिवर्तित-विकसित होकर बोला है। संक्षिप्त: प्रसाद करुणा, प्रेम, वेदना, आशा-उल्लास, स्मृति, आदि मानवीय भावों के ही कवि हैं।

किन्तु ऊपर के इस विवेचन से यह नहीं समझना चाहिए कि प्रसाद में कुछ भी त्रुटियाँ न थी। कवि प्रसाद की भी अपनी सीमायें हैं ; किन्तु शशि में कालिमा की तरह : कुल मिलाकर प्रसाद की प्रतिभा का शशि अत्यन्त आकर्षक, सुन्दर और आह्लादक ही है। विद्वान् आलोचक श्री नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार ठीक ही "वे जितने हैं और जो कुछ हैं, हमें उतने ही से प्रयोजन है। उतने गुणों में भी वे महान् और युग-प्रवर्तक सिद्ध हैं।"[1] प्रसाद का मानवता को इच्छा, ज्ञान और कर्म के समन्वय का सन्देश सदैव अनुप्राणित करता रहेगा। निश्चय, प्रसाद के साहित्य का स्थान, मानवता के पथ-प्रदर्शक के रूप में ऊँचा है। वह इतना ऊँचा है कि दूसरा कोई शायद उसका अनुकरण भी नहीं कर सकता। इसलिए—

So long as men can breathe or eyes can see
So long lives this, and this gives life to thee

---

१. हिन्दी-साहित्य ; बीसवीं शताब्दी—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

"पंत" : कृतियाँ और कला-कौशल

हिन्दी के छायावादी कवियों में पंत ही सबसे पहले और सबसे अधिक लोकप्रिय हुए, ऐसा कहा जा सकता है। छायावादी कवियों में पंत की कविताओं को ही प्रथम-प्रथम मान्यता मिली। उस समय के विद्वान् आलोचक श्री शुकदेवबिहारी मिश्र ने तो यहाँ तक कहा था कि "मैं हिन्दी में केवल नवरत्नों को ही महाकवि मानता आया हूँ, किन्तु पल्लव को पढ़कर मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि यह बालक भी महाकवि है।" वास्तव में पंत जी ने हिन्दी-कविता की देह और आत्मा—दोनों की शोभा बढ़ाई। इसलिए पंत के काव्य से ही हिन्दी-कविता की इस नई धारा (छायावाद) की स्थापना होती है। पंत जी की कविताओं ने छायावाद के विकास में काफी बल दिया। खड़ी बोली को कोमल और अत्यंत मधुर बनाने का श्रेय भी पंत जी को ही प्राप्त है। उनकी भाषा तो इतनी मधुर और कोमल हो गई है कि आज ब्रजभाषा होती तो वह भी ईर्ष्या करती। आधुनिक हिन्दी-कविता के इतिहास में यह सबसे आश्चर्यजनक घटना है। आइये, पंत की काव्य-कृतियों पर हम संक्षेप में विचार करें।

पंत जी जन्मजात कवि हैं, कवि छोड़कर वे और कुछ हो ही नहीं सकते थे। प्रकृति के सौन्दर्य से प्रेरित होकर उन्होंने कविता लिखनी आरंभ कर दी थी। उनकी रचनाओं का आरंभ सन् १९१८ से माना जा सकता है। उनके सुचारु काव्य-संग्रह हैं— 'वीणा', 'ग्रंथि', 'उच्छ्वास', 'आँसू', 'पल्लव', 'गुंजन', 'ज्योत्स्ना', 'युगांत', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्णकिरण', स्वर्णधूलि' 'युगपथ' और 'रजत शिखर'। 'वीणा' कवि की पहली भोली रचना है। इस समय वह रवीन्द्र, कालिदास और अंग्रेजी रोमांटिक कवियों से विशेष प्रभावित है। किन्तु 'वीणा' की ही कविताओं से कवि पंत की काव्यकला का सुन्दर परिचय मिलता है। 'वीणा' के कवि की काव्यकला अपरिपक्व होती हुई भी सुरुचिपूर्ण अवश्य है। कोमलता तो इतनी है कि अपने लिए भी कवि स्त्रीलिंग क्रियाओं का प्रयोग करता है—

('वीणा'-काल से ही कवि प्रकृति की ओर भी आकृष्ट है। वह प्रकृति को विस्मय-विमुग्ध आँखों से देखता है। प्रकृति ही उसे सब कुछ मालूम पड़ती है। 'बच्चन' के शब्दों में ठीक ही "वह प्रकृति के साथ इतना रम गया है कि उसे बालाओं की आनन छवि और काले कुटिल कुंतलों में कोई आकर्षण नहीं दिखाई देता। उसे बालाओं के बाल-जाल से द्रुमों की छाया अधिक अच्छी लगती है, उनके भ्रू-भगों से इन्द्रधनुष के रंगों में अधिक कटाक्ष दिखाई देता है, उनके प्रिय स्वर से कोयल के बोल अधिक कोमल लगते हैं और उनके अधरामृत से किसलयदल पर सुधा-रश्मि से उतरा हुआ जल अधिक मीठा मालूम होता है।"[1])

('वीणा' के उपरांत 'ग्रन्थि' है असफल प्रेम की। प्रसाद जी 'आँसू' में हैं, पन्त 'ग्रंथि' में। कवि पन्त की प्रेम-वेदना 'ग्रंथि' की पंक्तियों में कथासिक्त स्वरों में मुखर हो उठी है। प्रेम, सौन्दर्य, आशा, वेदना आदि विविध भावों की बड़ी ही सुन्दर व्यंजना इस काव्य में हम पाते हैं।) 'ग्रंथि' का रचनाकाल सन् १९२० है। इस ग्रन्थि-काल में आकर कवि नारी के रूप-सौन्दर्य पर हृदय हार बैठा है। उसने स्वयं स्वीकार किया है—

लाज की मादक सुरा-सी लालिमा फैल गालों में नवीन गुलाब-से
छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की अधखुले सस्मित गढ़ों में सीप-से
इन गढ़ों में, रूप के आवर्त्त से घूम फिर कर नाव से किसके नयन
हैं नहीं डूबे भटककर अटककर भार से दबकर तरुण सौन्दर्य के!

किन्तु प्रेम की असफलता, प्रेम की वेदना में संवेदनशील कवि का हृदय हाहाकार कर उठता है। और तब सौन्दर्य-प्रेमी कवि की सौन्दर्य के प्रति घोर उपेक्षा-भावना देखिए—

छि: सरल सौन्दर्य ! तुम सचमुच बड़े
निठुर औ' नादान हो ! सुकुमार यों
पलक-दल में, तारकों में, अधर में
खेलकर तुम कर रहे हो हास क्या,
जानते हो क्या ? सुकोमल गाल पर
कृश अँगुलियों पर, कटी कटि पर छिपे
तुम मिचौनी खेलकर कितना गहन
घाव करते हो सुमन-से हृदय में !

'ग्रंथि' के बाद 'उच्छ्वास' और 'आँसू' पन्त की प्रेम-कवितायें हैं। 'पल्लव' पन्त की पहली प्रौढ़ रचना है। इसमें प्रस्फुटित यौवन की अनुभवी आँखें प्रौढ़ भाषा के सुमधुर-कोमल तारों में बोल उठी हैं। 'पल्लव' की रचनाओं में सुख-सुषमा, हास-विलास और चतुर्दिक उमंग-उल्लास है। अब कवि ने प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कर लिया है। प्रकृति की रूप-राशि में वह अपने ही भावों का सौन्दर्य देखने लग जाता है। जैसे—

इस तरह मेरे चितेरे हृदय की
बाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी !

---

१. पल्लविनी (एक दृष्टिकोण; पृष्ठ १८)—श्री सुमित्रानन्दन पन्त।

यों 'पल्लव' के पन्त मुख्यतः प्रकृति के ही पुजारी हैं, किन्तु साथ ही नारी के प्रेमी भी —

तुम्हारे रोम-रोम से नारि !
मुझे है स्नेह अपार

'पल्लव'-काल आते-आते कवि अध्यात्म की ओर भी आकृष्ट हो चला है। कहना चाहिये प्रकृति में कवि को रहस्यमय सत्ता का आभास होने लगा है। वह प्रकृति मे किसी चेतन-सत्ता का अस्तित्व देखने लग जाता है। कोई है जो उसे नक्षत्रों से, लहरों से निमंत्रण देता है। यहाँ कवि की स्वाभाविक रहस्य-भावना के दर्शन होते हैं। प्रकृति में कवि आध्यात्मिक संकेत पाता है जैसे एक उदाहरण देखिए—

देख वसुधा का यौवन-भार
गूंज उठता है जब मधुमास
विधुर-उर के-से मृदु उद्‌गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन !

अथवा—

न जाने कौन, अये द्युतिमान !
जान मुझको अबोध-अज्ञान
सुझाते हो तुम पथ अनजान
फूंक देते छिद्रों मे गान
अहे सुख-दुख के सहचर मौन
नहीं कह सकती तुम हो कौन !

'गुंजन' मे आकर कवि का स्वर बहुत बदल जाता है। अब वह जीवन-वास्तव की ओर पग रखता है। लेकिन कहना चाहिए 'गुंजन' की इस नई प्रवृत्ति का पूर्वाभास 'पल्लव' के ही 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है। 'परिवर्तन' में पन्त जी ने जीवन के विविध चित्र प्रस्तुत किये हैं और उनको कवि-कल्पना को जीवन-वास्तव की कोमल, कठोर, मधुर, करुण, भयंकर आदि कई धाराओं के रूप में चलना पड़ा है। प्रथम तो कवि परिवर्तन के हाहाकार से क्षुब्ध हो उठता है—

यही तो है असार संसार, सृजन, सिंचन, संहार !

फिर वह चिंतन करने लगता है, किन्तु सुख-दुख, उत्थान-पतन, हर्ष-विषाद, सुषमा-शुष्कता की समस्याओं का हल इस व्यक्त जगत् में संभव नहीं, इस समस्या की पूर्ति उस पार ही हो सकेगी —

आज का दुख, कल का आह्लाद
और कल का सुख, आज विषाद
समस्या, स्वप्न, गूढ़ संसार
पूर्ति जिसकी उस पार

'गुंजन' में कवि को जग-जीवन के विस्तृत क्षेत्र में बढ़ते हुए पाते हैं। कवि की दृष्टि में जीवन का उद्देश्य है सौन्दर्य-चयन। जैसे—

धूलि की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय गान
कुटिल काँटे हैं कहीं कठोर
जटिल तरुजाल हैं किसी ओर
सुमनदल चुन-चुनकर निशि भोर
खोजना है अजान वह छोर

कवि तो सौन्दर्य को ही जीवन की चरम-साधना तक कहता है—

अकेली सुन्दरता कल्याणि सकल ऐश्वर्यों की सन्धान!

किन्तु सुन्दर-असुन्दर, हर्ष-विषाद, दुख-सुख दोनों के साथ कवि सामंजस्य कर लेता है—

सुख-दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन
फिर घन में ओझल हो शशि
फिर शशि से ओझल हो घन!

'गुंजन' में कवि की कला-शैली भी संयत, परिष्कृत और गंभीर हो गई है। यहाँ उपमाओं की झड़ी नहीं और न तो लाक्षणिक वैचित्र्य का अतिशय प्रदर्शन ही है। अब पंत मानव-जीवन के कवि के रूप में उपस्थित होते हैं। वे प्रकृति की सुन्दरता और पावनता से स्वयं भी सुन्दर और पुनीत बनने की अभिलाषा प्रकट करते हैं। इसीलिए 'गुंजन' में साधना है, तप की भावना है:—

तप रे मधुर-मधुर मन!

और अपने से बाहर जाकर जग-जीवन को देखने-समझने की कामना है

देखूँ सबके उर की डाली!

अथवा—

जग-जीवन की ज्वाला में गल
स्थापित कर जग में अपनापन!

अब कवि पंत के काव्य-जीवन में प्रकृति और मानव का समान स्थान है। नहीं, कहना चाहिए कवि की दृष्टि में अब तो मानव ही प्रकृति से बढ़कर है—

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर
मानव तुम सबसे सुन्दरतम
निर्मित सबकी तिल-सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम!

कुल मिलाकर 'गुंजन' में कवि पंत की पूर्ण प्रौढ़ता का प्रारंभ है। कवि में भावना और चिन्तन—दोनों का सामंजस्य अब हम पाते हैं। इसीलिए 'गुंजन' की कवितायें एक ओर मस्तिष्क को संतुष्ट करती हैं तो दूसरी ओर हृदय को तृप्त भी।

ये 'पल्लव' और 'गुंजन'—श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में ठीक ही "कवि पंत के भावाकाश के दो प्रतिनिधि है—दोनों ही मे कवि ने इस संसार से ऊपर उठकर जीवन के गीत गाए हैं; किन्तु दोनों मे वृहत् अन्तर है। 'पल्लव' में इन्द्रधनुष की रंगीन आभा है, 'गुंजन' में चाँदनी की उज्ज्वलता भी। एक मे भावप्रवण हृदय का नयन-चित्र है, दूसरे में विश्वप्राणी का यत्किञ्चित् कथित संगीत भी। 'पल्लव' के चित्र आँखों मे सौंदर्य-सृष्टि करते हैं, 'गुंजन' के जीवन गीत समाज को सजग करने का प्रयत्न करते है। पंत के यौवन ने 'पल्लव' मे प्रकृति-सुलभ सौंदर्य को प्रधानता दी है, 'गुंजन' मे यत्र-तत्र कवि की प्रौढ़ता ने यौवन के चंचल पदों के विदा होने पर, लोक-जीवन की गूढ़ समस्या को समझना चाहा है।"[1] 'ज्योत्स्ना' कवि पंत की अगली रचना है। यह सन् १९३३ मे लिखी गई थी। यों यह नाटक है, पर इसमे अनेक मधुर गीतों के कारण इसे हम काव्य भी मान सकते है। इसमे जीवन तथा युग-परिवर्तन की धारा को कवि ने सामाजिक रूप देने का प्रयास किया है। इसमे आकर कवि का दृष्टिकोण ही बदल गया है। कवि अब कला के लिए कला को महत्वपूर्ण नहीं मानना चाहता। वह विश्वास करता है कि कला सत्य नहीं, जीवन ही सत्य है। और उसी के शब्दों मे "सर्वोच्च कलाकार वह है जो कला के कृत्रिम पट में जीवन की निर्जीव प्रतिकृतियों का निर्माण करने के बदले अस्थिमांस की इन सजीव प्रतिमाओं में अपने हृदय से सत्य की साँसें भरता है, उन्हें सम्पूर्णता का सौंदर्य प्रदान करता है, उनके हृदय-प्रदीप को जीवन के प्रेम से दीप्त कर देता है।"[2] इस भाँति छायावादी पंत साम्यवादी बन बैठते है। अब वे मानव-मानव के हितों और अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। वे दीन-दलितों को प्रेरणा भी देते हैं—

> निर्भय हो निर्भय मानव
> निर्भीक विचर पृथ्वी पर
> विचलित मत हो विघ्नों से
> निज आत्मा पर रह निर्भर !

'ज्योत्स्ना' के संबंध मे श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की राय है कि यह "पंतजी के जीवन-संबंधी विचारों की कुंजी है, आधुनिक जगत के विविध विचारों की पैमाइश है। उसमें पंत का आत्मचिंतन और लोकनिरीक्षण निहित है। उसके गद्य के गुरुगहन वाद्य में गीतों की झंकार और चित्रों का जमघट है।"[3]

'युगांत' से पंत की कविता बिल्कुल धरती पर उतर आती है। अब स्पष्टत: छायावादी पंत के काव्य-जीवन के एक युग का अंत और दूसरे युग का आरंभ होता है। कवि अब मानव-जीवन को सुन्दर बनाने के लिये सक्रिय प्रयास करता है। पहले तो प्राचीन रूढ़ियों को नष्ट-भ्रष्ट होना ही चाहिए—

---

१. संचारिणी, पृष्ठ १४१, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी।
२. ज्योत्स्ना, सुमित्रानन्दन पंत
३. संचारिणी, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृष्ठ १४१

आ गया है। य की बहुल समस्यायें उसकी लेखनी का स्पर्श पा मुखर हो उठी हैं। कहीं कवि ने पूंजीवाद का विरोध किया है, कहीं साम्यवाद का नारा लगाया है, कहीं नारी स्वातंत्र्य की आवाज उठाई है। कवि ने गांधीवाद से भी कई बातें ली हैं। इस प्रकार पंतजी किसी भी बंद घेरे से निकलकर जगत् की विस्तृत अर्थभूमि पर स्वाभाविक स्वच्छन्दता के साथ आगे बढ़ते गए हैं। प्रकृति में कवि का कदम बहुत आगे आ चुका है। अब तो—

सुन्दर लगती नग्न देह मोहती नयन-मन
मानव के बालक हैं ये पासी के बच्चे
रोम रोम मानव, सांचे में ढाले सच्चे

यहीं से पंत की कल्पनाशीलता, उनकी अतिशय भावुकता कम हो जाती है। अब भावों की जगह विचार प्रधान हो उठे हैं।

'ग्राम्या' में सन् १९३९-४० की लिखी कविताएं संगृहीत की गई हैं। 'ग्राम्या' में कवि गाँवों की ओर गया है। भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। कवि भारतीय ग्रामीण जीवन के अनेक चित्र प्रस्तुत करता है। इन सभी के पीछे उसका भयानक असंतोष ही मुखरित है। कवि स्पष्ट कहता है—

यह तो मानव-लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित
यह भारत का ग्राम, सभ्यता-संस्कृति से निर्वासित
झाड़-फूस के विवर, यही क्या जीवन-शिल्पी के घर
कीड़ों-से रेंगते कौन ये, बुद्धि-प्राण नारी-नर?
अकथनीय क्षुद्रता-विवशता भरी यहाँ के जग में,
गृह-गृह में कलह, खेत में कलह, कलह है जग में!

ग्राम-युवती के यौवन के असमय ही नष्ट हो जाने का भी कवि को कम दुख नहीं—

Good रे दो दिन का उसका यौवन
सपना छिन का
दुखों में घिस
दुर्दिन में पिस
जर्जर हो जाता उसका तन!
ढह जाता असमय यौवन-धन!

और फिर ग्राम-वासिनी भारत-माता की कितनी करुण अवस्था है—

तीस कोटि संतान नग्न तन
अर्ध क्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन
मूढ़, असभ्य, अशिक्षित निर्धन
नत मस्तक
तरु-तलनिवासिनी!!

'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' में पंत के आधुनिकतम रूप के दर्शन होते हैं। १९३९-४० के पंत और इनके पहले के पंत में काफी अन्तर आ गया है। स्वर्णकाल के १९४६-४७ के पंत भी १९३९-४० से काफी बदल गए हैं। अब पंत का चिंतनशील कवि विवेकशील हो जाता है। कहना चाहिए अब पंत जी दर्शन के कवि बन जाते हैं। भौतिक जीवन की विषमताओं का हल न पाकर फिर से कवि आत्मा की शक्ति पर विश्वास करने लगता है। 'युगवाणी' में जो कवि बहिर्मुखी था, अब स्वर्णकाल में फिर से अंतर्मुखी हो उठता है। आज के कवि पंत मनीषी हैं, उन्हें संस्कृति और दर्शन में गम्भीर आस्था है। 'स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्णधूलि' में इसी मनन-दर्शन की प्रधानता है। इस स्वर्णकाल में वे श्री अरविन्द से विशेष प्रभावित हैं और अब तो अवश्य ही 'पंत' मनन और दर्शन के 'रजत शिखर' पर पहुँच गए हैं और वास्तव में पंत जी का कवि-मानस इतना ऊँचा उठ गया है कि वे अब छायावाद को ही नहीं, समस्त हिन्दी-कविता की अमर विभूति बन जाते हैं।

तो यह है पंत की कविता की विचार-धारा; पंत जी के काव्य का विकास क्रम और यही पंत के कविता की विषय-सीमा भी है और उनका भाव-जगत् भी। इस प्रकार स्पष्टतः हम देखते हैं कि विचारों की परिवर्तनशीलता पंत की अपनी विशेषता है। छायावाद के अन्य कवि जहाँ के-तहाँ रह गए, पंत सदैव विकासशील रहे। पंत की रचनाओं में क्रमिक विकास हुआ है। विद्वान् आलोचक डॉ० रामखेलावन पाण्डेय ने इसे पंत की दुर्बलता माना है। उनका विचार है कि पंत का अपना व्यक्तित्व ही नहीं है, वे दुर्बल चरित्र के व्यक्ति हैं जो कभी किसी से प्रभावित होते हैं, कभी किसी से। इस संबंध में मेरा निवेदन यह है कि किसी कवि की भावधारा के विकास-क्रम को दुर्बलता न मानकर उसे विशेषता ही माननी चाहिए। विचारों में परिवर्त्तन और भावधारा में विकास उस कवि की जागरूकता, उसकी सजग चिंतन-शक्ति की ही द्योतक है। किसी विशेष-वाद-सीमा में बँध जाना कौन-सी बुद्धिमानी है? गलत बात को भी हठ कर पकड़े रहने में सबल चरित्र का भला कैसा औचित्य होगा? कवि पंत की भावधारा की परिवर्तनशीलता में भावों की उच्छृंखलता और चरित्र की दुर्बलता नहीं, चिंतन, मनन और दर्शन का क्रमिक विकास है। कवि पंत ने अपने सीमित अहं को छोड़कर व्यापक मानवता के विस्तृत क्षितिज को छूने का सक्रिय प्रयास किया है। इसी कारण, पंत के काव्य-जीवन में अनेक मोड़ आए हैं, अन्य छायावादियों के विपरीत पंत की प्रतिभा गत्यात्मक रही है। वे प्रगतिवादी नहीं, चिर प्रगतिशील कवि बन गए हैं।

तो यह पंत जी की कृतियों के सम्बन्ध में! आइये, अब उनके काव्य-कौशल के चमत्कार देखें।

पंत जी की कला-शैली में छायावाद का काव्य-कौशल अपनी समस्त उपलब्धियों के चरम उत्कर्ष पर है। पंत जी की भाषा में मधुरता-कोमलता के साथ ही लाक्षणिकता, चित्रमयता और अद्भुत संगीतात्मकता भी है। इन पंक्तियों में कितनी कोमलता और माधुर्य है—

तुम्हारी आँखों का आकाश, सरल आँखों का नीलाकाश
खो गया मेरा राग अनजान, मृगेक्षिणी ! मेरा राग अनजान !

अथवा—

वह बेला की फूली वन जिसमें न नाल, दल, कुड्मल
केवल विकास चिर निर्मल जिसमें डूबे दश-दिशि दल !
वह सोई हरित-पुलिन पर साँसों में स्तब्ध समीरण
केवल लघु-लघु लहरों पर मिलता मृदु-मृदु उर-स्पन्दन

चित्र प्रस्तुत कर देने की भी अद्भुत सामर्थ्य पंत की पंक्तियों में विद्यमान है; जैसे—

जग के दुख दैन्य शयन पर वह रुग्णा जीवन बाला
रे कब से जाग रही वह आँसू की नीरव माला !
पीली पड़ दुर्बल कोमल कृश देह लता कुम्हलाई
विवसना लाज में लिपटी साँसों में शून्य समाई !

किन्तु पंत की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है अतिशय लाक्षणिक वैचित्र्य। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे—

(१) दीप के बचे विकास !
(२) गूँज उठता है जब मधुमास !
(३) सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल तड़प बन जाते हैं गुंजार !
(४) हृदय के सुरभित सांस !

यहाँ तो पंक्ति की पंक्ति लक्षणा में ही बातें कर रही हैं—

अपरिचित चितवन में था प्रात सुधामय साँसों में उपचार
तुम्हारी छाया में आधार सुखद चेष्टाओं में आकार !
करुण भौंहों में था आकाश हास में शैशव का संसार
तुम्हारी आँखों में कर वास प्रेम ने पाया था आकार !
× × ×
उषा का था उर में आवास मुकुल का मुख में मृदुल विकास,
चाँदनी का स्वभाव में भास विचारों में बच्चों के साँस !

छन्द और अलंकारों की दिशा में भी पंत ने नवीन क्रांति की प्रतिष्ठा की। —ये पंक्तियाँ—ही देखिए—

खुल गये छन्द के बन्ध प्राण के रजत पाश
अब गीत मुक्त और युगवाणी बहती अभास !

—पंत जी के छन्द और अलंकार के प्रति अभिनव दृष्टिकोण की ही परिचायक हैं। पंत जी ने जहाँ पुराने छन्दों में कुछ परिवर्त्तन किये और नये छन्द अपनाये, साथ ही साथ अँग्रेजी ढंग पर उन्होंने चतुर्दशपदियाँ (Sonnets) भी लिखीं। पंत ने मात्रिक छन्दों को छोड़कर ताल-वृत्त या मुक्त छन्द में भी कवितायें कीं। मुक्त छन्द का बहुत ही सुन्दर उदाहरण 'जीव-प्रसू' शीर्षक कविता है—

ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु-नीलिमा-गहन-गगन ?
अनिमेष, अचितवन, काल-नयन ?
निःस्पन्द, शून्य, निर्जन, निःस्वन ?
देखो भू को !
जीव-प्रसू को !

× × ×

जिस पर अंकित
सुर-मुनि-वंदित
मानव-पद-तल
देखो भू को
स्वर्गिक भू को
मानव-पुण्य-प्रसू को !

अलंकारों में उपमा पंत जी को बहुत प्यारी है। जब उपमा देने लगते हैं तो उपमाओं की झड़ी-सी लग जाती है—

कौन, कौन, तुम परिहत वसना म्लान-मना भू पतिता-सी
वातहता विच्छिन्न लता-सी रति-श्रांता व्रज-वनिता-सी

× × ×

गूढ़ कल्पना-सी कवियों की अज्ञाता के विस्मय सी
ऋषियों के गंभीर हृदय-सी बच्चों के तुतले भय-सी !

किन्तु पंत की उपमाओं के संबंध में यह ध्यातव्य है कि उन्होंने सर्वथा मौलिक और सूक्ष्म उपमानों को ढूँढा है। उदाहरणार्थ आँखों के लिए उपमान ढूँढ़ने में कवि पंत की दृष्टि केवल मृग-मीन-मधुकर तक ही सीमित नहीं रह जाती, वरन् आकाश तक भी दौड़ लगाती है—

तुम्हारी आँखों का आकाश, सरल आँखों का नीलाकाश
खो गया मेरा खग अनजान, मृगेक्षिणि ! इनमें खग अनजान

अन्य अलंकारों में वृत्यानुप्रास, विरोधाभास, उत्प्रेक्षा, रूपक, सन्देह, असंगति, परिकर, परिसंख्या आदि अनेक अलंकार पंत की कविताओं में आए हैं। कुछ रूपक अलंकार के उदाहरण देखिए—

(१) सोई थी तू स्वप्न-नीड़ में
(२) प्रखर प्रेम के बाण !
(३) करुणानत निज कर-पल्लव से

अँग्रेजी के भी मानवीकरण, ध्वन्यार्थव्यंजना, विशेषण-विपर्यय आदि अलंकारों के प्रयोग पंत की कविताओं में मिलते है। इन पंक्तियों में ध्वन्यार्थव्यंजना, जिसे अँग्रेजी में Onomatopoeia कहते है, के कुछ उदाहरण देखे जाने योग्य हैं—

सिहर उठे पुलकित हो द्रुमदल, सुप्त समीरण हुआ अधीर !

× × ×

गिरि का गौरव गाकर झर-झर, मद मे नस-नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों से सुन्दर, झरते है झाग भरे निर्झर !

× × ×

मृदु मंद-मंद, मंथर-मंथर, लघु तरणि हंसिनी-सी सुन्दर
तिर रही खोल पालों के पर !

विरोधाभास अलंकार की योजना इन पंक्तियो में है—

गिरा हो जाती है सनयन, नयन करते नीरव भाषण
श्रवण तक आ जाता है मन, स्वयं मन करता बात श्रवण
अश्रुओं मे रहता है हास, हास मे अश्रुकणो का भास
श्वास में छिपा हुआ उच्छ्वास, और उच्छ्वासों ही में श्वास !

उल्लेख अलंकार भी इन पंक्तियो में देखा जा सकता है—

कपालों में उर के मृदु भाव, श्रवण नयनों मे प्रिय वर्ताव
सरल संकेतो में संकोच, मृदुल अधरो में मधुर दुराव !

इस पंक्तियो में सन्देह नामक अलंकार है—

विरह है अथवा यह वरदान !

विभावना का भी एक उदाहरण देखिए—

चपलता ने इस विकंपित पुलक से
हठ किया मानो प्रणय-संबंध था

अंग्रेजी के Transferred Epithet का एक उदाहरण नीचे लिखी पंक्तियों में है—

(१) कौन मादक कर मुझे है छू रहा

× × ×

(२) स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार

× × ×

पंत जी के कुछ बिलकुल मौलिक उपमान देखिए—

धीरे धीरे संशय-से उठ, बढ़ आकाश-से शीघ्र अछोर
नभ के उर मे उमड़ मोह-से, फैल लालसा-से निशि भोर

इसके अतिरिक्त वीप्सा, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुत प्रशंसा आदि अनेक और अलंकार भी पंत की कविताओं में विपुल राशि में विद्यमान हैं।

जैसा कि श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है "कल्पना की कला तो एकमात्र पंत की ही चीज़ रही है, इसलिए पंत जहाँ कल्पक है वहाँ वे चूड़ान्त कवि है, किन्तु जहाँ वे रियलिस्ट होना चाहते हैं वहाँ उनका कवि नहीं रह जाता।"[१] कल्पना भी पंत की

१. संचारिणी—पृ० २१०—श्री शांतिप्रिय द्विवेदी

प्रारंभिक कविताओं को जान रही है। 'बादल', 'छाया', 'चाँदनी' शीर्षक कविताओं में कल्पना की उड़ान अपनी चरम सीमा को पहुँच गई है। श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का भी विचार है कि "हिन्दी के क्षेत्र में पंत जी की कल्पनाशक्ति अजेय, उसका नवनवोन्मेष अप्रतिम है। कल्पना ही पंत जी की कविता की विशेषता, प्रमुख आकर्षण का रहस्य है।"[१]

पंत को शब्दों की अंतरात्मा की भी बड़ी सूक्ष्म पहिचान है। उनके प्रत्येक शब्द बड़े चुने-सजे और व्यंजनापूर्ण होते है। किसी भी शब्द को इधर से उधर नही किया जा सकता। इन पंक्तियों में प्रत्येक शब्द इसी बड़े कौशल से प्रयुक्त हुए ह—

पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश
पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़
अवलोक रहा है बार-बार
नीचे जल में निज महाकार
—जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण-सा फैला है विशाल।

नन्ददास की ही तरह पंत जी भी शब्दों की अंतरात्मा के ज्ञान और व्यवहार में काफी प्रवीण हैं। इसीलिए पंत जी की कला की प्रशंसा करते हुए प० शिवाधर पाण्डेय ने उनके विषय मे ठीक ही लिखा था कि 'भाषा को वह भावों से बजाता है। संगीत को उँगलियों पर नचाता है। शब्दों को सूँघ-सूँघकर मनमाना मधु चूसता है।"[२]

इस प्रकार पंत का काव्य-कौशल भावों की स्वच्छता, भाषा की कोमलता और माधुरी, कल्पना की रमणीयता, शब्दों की सुन्दर सजावट आदि कई तत्त्वों के सम्मिश्रण की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। इतना परिष्कृत काव्य-कौशल विरले ही कवियों में आप पायेंगे। सुतरां डॉ० नगेन्द्र के ही शब्दों में हम यही कहेंगे कि "कलाकार के रूप में पंत जी पर जो कुछ कहा जाए थोड़ा ही है। उनकी रंगीन कला इतनी कोमल है कि विश्लेषण करते ही वह तितली के पंखों की तरह बिखर जाती है और आलोचक को अपनी कृति पर पश्चाताप करने की ही अधिक संभावना रहती है।"[३] तो पंत जी की समस्त कृतियों और काव्य-कौशल का यही निष्कर्ष है—

'क्रीड़ा, कौतूहल, कोमलता, मोद, मधुरिमा, हास, विलास
लीला, विस्मय, अस्फुटता, भय, स्नेह, पुलक, सुख, सरल हुलास'

और साथ ही पंत की कृतियों और काव्य-कौशल के संबंध में मैं यह भी जोड़ देना चाहूँगा कि—

Earth is nothing to show more fair
Dull would he be of soul who could pass by
A sight so touching in its majesty!

---

१. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—नन्ददुलारे वाजपेयी
२. सरस्वती (पत्रिका) १९२२ फरवरी अंक।
३. सुमित्रानन्दन पंत—डॉ० नगेन्द्र।

'निराला' की काव्य-साधना

'निराला' वास्तव मे निराला है। हिन्दी कविता के इतिहास में उनका नाम, उनका व्यक्तित्व, उनका स्थान, उनका साहित्य सब कुछ निराला है। रीतिकालीन घोर शृंगारिकता और द्विवेदीयुगीन जड़ता के आगे हिन्दी कविता को नई भूमि पर लाने का श्रेय बहुत कुछ 'निराला' को ही दिया जा सकता है। छायावाद के दूसरे सभी कवियों मे 'निराला' सबसे अधिक क्रांतिकारी रहे हैं। 'जिस देश मे कविता का काम देव प्रशंसा, चाटुकारिता या नायक-नायिका की चुहलें रहा हो उसके आगे 'निराला' ने एक नया आदर्श रखा।'[1] निराला ने पुरानी कविता की जड़-जर्जर परम्पराओं को तोड़कर एक नई परम्परा की नींव डाली। छन्द, विषय, भाषा—सभी दृष्टियों से हिन्दी कविता मे नई क्रांति लाई। किन्तु जैसा कि इतिहास प्रमाण है, नई-नई बातें कहनेवालों—करनेवालों का पहले-पहल विरोध होता ही है। उस समय के लोगों ने निराला का भी विरोध किया। निराला की कविताओं की पैरोडी की जाती थी। व्यंग्य, उपदेश और कार्टून आदि सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का भी उपयोग किया गया। "आलोचक कहते थे तुम्हें भाषा नहीं लिखने आता, छन्दों का ज्ञान नहीं, भाव उधार लिये हुए हैं, शब्द निरर्थक। निराला ने कहा, पहले तुम्हारे साहित्य की ही बानगी देखी जाए। 'मतवाला' की 'चाबुक' में यही युद्ध शुरू हुआ।" निराला के विरुद्ध जोरदार आवाजें उठीं। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, रूपनारायण पाण्डेय, स्वयं श्री द्विवेदी जी और अनेक वयोवृद्ध विद्वानों ने निराला की कटु आलोचना की, उन पर व्यंग्य-प्रहार किये। इतना ही नहीं, नवीनों ने भी 'निराला' के विरोध मे कुछ कसर नहीं उठा रखी। 'वास्तव में जितने बड़े बवंडर का सामना निराला को करना पड़ा, हिन्दी कविता के इतिहास में उसकी मिसाल नहीं है।'[2] निराला को सभी छायावादी कवियों में सबसे अधिक लांछित होना पड़ा। नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों मे ठीक ही "किसी कवि को लेकर इतना बवंडर नहीं उठा था। उन वज्र प्रहारों से दूसरा साहित्यिक पिस जाता, परन्तु निराला मे इतना सामर्थ्य था कि उन्होंने अपने विरोधियों का अखाड़े में उतर कर सामना किया।"[3] इतने विरोधों के बीच भी निराला अडिग रहे। उन्होंने बड़े साहस के साथ काव्य की परम्परागत रुढ़ियों और नये पुराने बन्धनों को तोड़ा और एक नवीन आदर्श की नींव डाली। पुरानी कविता के गौरव के बहाने हिन्दी कविता का नूतन विकास न हो, उन्हें यह रुचिकर नहीं था। उन्होंने कहा—'पुराना साहित्य हिन्दी का बहुत अच्छा था, पर नया और भी अच्छा होगा, इस दृष्टि से उसकी साधना की जाएगी।' और वास्तव में 'उनके लिए साहित्य साधना थी और उस युग में

---

१. नन्ददुलारे वाजपेयी—हिन्दी साहित्य : बीसवीं शती

२. वही

३. वही

साहित्य की साधना कहने वालों पर लोग हँसते थे ।"[1] अपने विरोधियों का मुकाबला करने के लिए निराला भी डटे हुए थे । निराला ने अपने विरुद्ध भ्रांतियों का साहस के साथ सामना किया और छायावाद की प्रतिष्ठा में निस्सन्देह उनका महत्त्वपूर्ण योग है। आलोचकों का मुँह बंद करने के लिए निराला ने भी कठोर व्यंग्य वाण छोड़े। अपने आलोचनात्मक निबन्धों में उन्होंने अपने विरोधियों को दो टूक जवाब दिए। 'मुक्त छन्दों की जितनी ही पैरोडी की गई निराला ने उससे ज्यादा बार उसे सुनाकर जनता को मुग्ध किया। किसी भी छायावादी कवि ने और विदेश के किसी भी रोमांटिक कवि ने इतने आत्मविश्वास से जनता का सामना नहीं किया जितना निराला ने।'[2] बिहार के लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यिक श्री शिवपूजन सहाय को निराला के उज्ज्वल भविष्य में अगाध विश्वास था। रामनाथ 'सुमन', नन्ददुलारे बाजपेयी, विनोदशंकर व्यास निराला के समर्थकों में से थे। पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी में आपस में भी बहुत ही घनिष्ठ मित्रता रही। महादेवी जी तो निराला को अपना भाई ही मानती है। निराला को पंत से अपार प्रेम है। जब छायावाद का विरोध होता था, पंत की रचनाओं से ही उदाहरण देकर निराला अपने पक्ष का समर्थन करते थे। वास्तव में, प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी में जैसा प्रेम-संबंध रहा, वह शायद ही किसी भी युग के चार महाकवियों में इतना रहा हो। इस प्रकार निरंतर संघर्षों के बीच भी निराला की काव्य-साधना चलती रही और कवि ने कभी आत्म-विश्वास नहीं खोया। निराला का जीवन, सच में इस बात का प्रमाण है कि सच्ची प्रतिभा किसी की प्रशंसा के बल पर नहीं खड़ी होती। सच्ची प्रतिभा सदैव नई राह खोजती है, खोजती ही नहीं, बनाती भी है। पर्याप्त प्रतिकूल परिस्थितियों और विविध विपरीत वातावरणों का सामना करती हुई जो प्रतिभा अपनी साधना के बल पर आज शीर्ष स्थान पाने की अधिकारिणी है उसे हम महान, असाधारण, अप्रतिभ नहीं तो और क्या कहेंगे? निराला की प्रतिभा क्या वैसी ही नहीं है? सुश्री महादेवी वर्मा के शब्दों में ठीक ही कहा जा सकता है कि 'अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों से निराला जी ने कभी हार नहीं मानी जिसे सहज बनाने के लिए हम समझौता कहते हैं। स्वभाव में ही उन्हें वह निश्छल वीरता मिली है जो अपने बचाव के प्रयत्न को भी कायरता की संज्ञा देती है। उनकी वीरता राजनीतिक कुशलता नहीं: वह तो साहित्य की एक निष्ठता का पदार्थ है।...जो अपने पथ की सभी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष बाधाओं को चुनौती देता हुआ, सभी आघातों को हृदय पर झेलता हुआ लक्ष्य तक पहुँचता है उसी को युग-स्रष्टा साहित्यकार कह सकते है।" निराला जी ऐसे ही युग-स्रष्टा साहित्यकार है। मैंने कहा था, मनुष्य की नासमझी की हद नहीं है। प्रायः सभी युगों में मनुष्य ने नई बातें कहने वाली महान प्रतिभाओं का सदैव विरोध किया है। निराला अपने युग की महान प्रतिभा हैं, अतएव स्वभावतः उन्हें अपने युग का अभिशाप झेलना पड़ा तो कुछ आश्चर्य नहीं। वास्तव में निराला का सारा जीवन संघर्षमय रहा है।

---

१. वही

२. निराला—पृष्ठ ७१—डॉ० रामविलास शर्मा

गेटे ने कहा कि A great crisis uplifts a man और निराला की तो सारी-सारी जिन्दगी की ही यही कहानी है। श्री गंगाप्रसाद पाण्डे के शब्दों में ठीक ही संघर्षों ने निराला में एक प्रकार की ऐसी अटूट दृढ़ता भर दी है कि जो उन्हें सहज ही इस युग की महान प्रतिभा का प्रतिनिधित्व देने में समर्थ है।

ऐसे महान कवि के व्यक्तित्व की कुछ और बातें भी ध्यातव्य हैं। हिन्दी का यह युग-स्रष्टा साहित्यकार बड़ा ही विचित्र व्यक्तित्व लिए है। उनमें विरोधी तत्वों की भी सामंजस्यपूर्ण संधि है। विशाल शरीर सहज ही किसी को आतंकित कर सकता है, हृदय की सरलता शीघ्र ही दूसरों को अपना बना सकती है। उदारता, दानशीलता, गंभीरता और कठोर अध्यवसाय आदि के तत्वों से ही इनके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। संघर्ष से विकास, निराला के निराले व्यक्तित्व की कुंजी है। कबीर जैसा निर्भीक और उद्दण्ड व्यक्तित्व काफी युगों के बाद हिन्दी साहित्य में निराला के रूप में दिखाई पड़ा। उनका व्यक्तित्व पौरुष से ओत-प्रोत है। उनमें आधुनिकता का ढोंग और संकोच नहीं है और न प्राचीनता का अंधानुकरण और परंपराओं की रूढ़ियों में अंधविश्वास। निराला में प्राचीनता और नवीनता का, कवि और शूर का, अद्भुत समन्वय है। वास्तव में, यदि मुझे अंग्रेजी शब्दों में कहने की इजाजत दी जाये तो निराला Hero as a poet हैं। इन पंक्तियों में कवि का वीर दर्शनीय है—

> एक बार बस और नाच तू श्यामा
> सामान सभी तैयार
> कितने ही हैं असुर
> चाहिये कितने तुमको हार ?
> कर मेखला मुंड-मालाओं के बन मन-अभिराम
> एक बार बस और नाच श्यामा !

वास्तव में हिन्दी साहित्य में पहले-पहल इतने विरोधों को पार करता हुआ इतना समर्थशाली व्यक्तित्व निराला के रूप में दीख पड़ा। सशक्त व्यक्तित्व के स्वरूप निराला शारीरिकता में भी अन्यतम हैं। छः फीट से अधिक ही लम्बे, भरा-पूरा शरीर, गेहुँआ रंग, लाल-लाल आंखें, लम्बे-बिखरे केश-जाल, शैशव-सा सरल और जवानी-सा अलमस्त स्वभाव-सब कुछ मिलाकर निराला का व्यक्तित्व तृप्तिकर नहीं तो चकितकर अवश्य है। उसमें काफी गहरा आत्मविश्वास है, फिर भी आत्माभिमान नहीं। लेकिन आत्म-अपमान से उत्तेजित होने पर किसी प्रकार की चुनौती से वे पीछे भी नहीं हट सकते। साहित्य में भी निराला ने यही चुनौती का स्वर दिया। नेपोलियन की तरह कुछ भी असंभव वे नहीं माना करते। यही निराला का निरालापन है। जीवन की सारी व्यापकता, विश्व-मानव की पूरी मानवता उनके व्यक्तित्व में साकार हो उठी है।" उनमें दार्शनिक की खोज, संदेहवादी की संशयशीलता, भक्तप्रेमी की आत्मविह्वलता, क्रांति की क्रूरता और तीव्रता, शूर-वीर की तेजस्विता और जीवन के उत्ताप की पीड़ा एक साथ ही घुलमिल गई है। यही कारण है कि निराला ने धरती पर के दीनों, पीड़ितों, उपेक्षितों और शोषितों

से लेकर चराचर प्रकृति और उसके आदिस्रष्टा तक के गीत गाए हैं।...... छायावादी होते हुए भी वे प्रगतिवादी भी हैं और प्रगतिवादी होते हुए भी आध्यात्मिक।"[१] इस प्रकार हम कह सकते है कि वास्तव मे निराला समस्त जीवन के कवि हैं, पूरी मानवता के साहित्यकार हैं। उनका व्यक्तित्व ऐसा निराला है कि भारतीय भाषाओं में वैसा उदाहरण नही मिल सकता।

कवि निराला का जन्म ऊषाकिरणों के साथ-साथ सन् १८९६ ई० में वसंत पंचमी के दिन, महिषादल, बंगाल मे हुआ था। ओज-तेजमय मुखमण्डल के अनुरूप ही नामकरण हुआ 'सूर्यकांत'। इनके पिता पं० रामसहाय त्रिपाठी भी गढ़ाकोला, जिला उन्नाव के रहनेवाले थे, किन्तु धनोपार्जन के लिए मेदिनीपुर जिले के महिषादल नाम की जमींदारी में नौकरी करते थे। प्रथम पत्नी की दिवंगता होने पर उन्होंने दूसरी शादी की और इसी महिला ने निराला जैसे असाधारण प्रतिभावान् व्यक्तित्व को जन्म दिया। किन्तु बचपन में ही निराला ने अपनी माँ को खो दिया। माँ के दुलार-प्यार से हमारा युग-प्रवर्तक कलाकार वंचित रहा। वास्तव में निराला की सारी जिन्दगी ही कष्टों और कठिनाइयों के पालने में पली है। शिशु के लिए माँ के प्यार से वंचित होने से बढ़कर और क्या विपत्ति हो सकती है? किन्तु आगे आनेवाली भयानक कठिनाइयों का तो यह आरम्भ ही था। पढ़ाई-लिखाई बंगला-स्कूल में शुरू हुई, फिर हाई-स्कूल में चलती रही। किन्तु साथ ही, कुश्ती लड़ना, हिन्दी सीखना, संगीत, घुड़दौड़ आदि भी उनके विषय रहे। दसवी क्लास तक कविता भी करने की लत हो गई। वैचित्र्य आरंभ से ही निराला की पहिचान रहा। एक साथ ही पहलवान, दार्शनिक और कवि का यह सामंजस्य अन्यत्र दुर्लभ ही है। जो रामायण का गायन करता है, पढ़ने में भी और लड़ने में भी किसी से पराजित नहीं होता, जीवन में कभी जिसने किसी विपत्ति से हार नही मानी, जो सभी प्रहारों का सामना करता हुआ आगे बढ़ पाया, उसके असाधारण व्यक्तित्व का क्या कहना! कान्यकुब्जों की प्रथा के अनुसार निराला का विवाह १३ वर्ष की अल्पावस्था में ही हो गया। उनकी पत्नी मनोहरादेवी संगीत में निपुण काफी विदुषी महिला थीं। किन्तु निराला का यौवन पतझर बन गया। मनोहरादेवी कवि की जीवन-संगिनी नहीं बनी रह सकीं। पत्नी की यह असमय-मृत्यु कवि के जीवन पर दूसरा प्रहार थी। पत्नी की मृत्यु के शीघ्र ही पश्चात् पिता का भी स्वर्गवास हुआ। कवि पर अपनी दो संतान और घर-परिवार का आर्थिक भार आ पड़ा जिसे सँभालने के लिए वह पहले से बिल्कुल तैयार नहीं था। उन्होंने महिषादल राज्य में नौकरी कर ली। किन्तु कवि-सुलभ स्वभाव के कारण नौकरी छोड़ दी और आर्थिक दृष्टि से जीवन दुखमय हो चला। अब तक देश के साहित्यकारों से उनका सम्पर्क हो चला था। द्विवेदी जी इनकी प्रतिभा से प्रभावित हुए। बाद में उन्हीं के प्रयास से वे 'समन्वय' के सम्पादक हुए। 'पंचवटी', 'परिमल' इसी काल की कृतियाँ है। इसके बाद वे सेठ महादेव प्रसाद जी द्वारा प्रकाशित 'मतवाला' में

---

१. महाप्राण—निराला : गंगाप्रसाद, पाण्डेय, पृष्ठ १३६—७.

काम करने लगे और सेठ जी ही निराला को काफी प्रकाश में लाये। इन दो पत्रिकाओं ने कवि के साहित्यिक जीवन के निर्माण में काफी सहायता दी। किन्तु 'मतवाला' और 'निराला' का सम्पर्क भी स्थिर न रह सका और कवि को विज्ञापन, अनुवाद आदि लिख कर जीविका चलानी पड़ी। फिर भी, आश्चर्य है, घोर आर्थिक संकटों के बीच भी कवि अपनी साहित्यिक प्रौढ़ता के स्तर से स्खलित नहीं हुआ। कवि की मनोहरादेवी की स्मृति-स्वरूप प्राण-सम प्रिय पुत्री सरोज जब स्वर्ग सिधार गई तो कवि का हृदय हाहाकार कर उठा—

दुख ही जीवन की कथा रही क्या कहूँ आज, जो नहीं कही

फिर भी, कवि ने जिन्दगी से हार नहीं मानी। सन् '३५ में ही सरोज की मृत्यु हुई, कवि संघर्षों का सामना करते हुए भी साहित्य-साधना से विमुख नहीं हुआ। युग-स्रष्टा साहित्यकार की ऐसी ही साधना होती है!

निराला एक बहुमुखी प्रतिभावाले कवि हैं। उन्होंने प्रायः साठ पुस्तकें लिखी हैं और साहित्य के सभी क्षेत्रों को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। उनकी रचनायें ये हैं—

काव्य—परिमल, अणिमा, गीतिका, तुलसीदास, अनामिका, कुकुरमुत्ता, बेला, नये पत्ते, अपरा।

उपन्यास—अलका, अप्सरा, प्रभावती, निरूपमा, चोटी की पकड़, चमेली, काले कारनामे, उच्छृंखल।

कहानी-संग्रह—लिली, सुकुल की बीबी, चतुरी चमार।

आलोचना—प्रबंधपद्म, प्रबंधप्रतिमा, रवीन्द्र-कविता-कानन, प्रबंध परिचय।

जीवनी—राणा प्रताप, भीम, प्रह्लाद, शकुन्तला, ध्रुव।

रेखाचित्र—कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा।

इसके अलावा निराला जी ने अनेक अनुवाद भी किये हैं। प्रस्तुत प्रबंध में उनका कवि ही आलोच्य है। कविता के क्षेत्र में 'परिमल', 'अनामिका' 'तुलसीदास', 'गीतिका', 'कुकुरमुत्ता', 'नये पत्ते', 'बेला', 'अणिमा' और 'अर्चना' के नाम अग्रगण्य हैं।

'परिमल' कवि का प्रथम कविता-संग्रह है जिसमें १९१६ से १९२९ तक की रचनायें संगृहीत हैं। इसी में वह कविता 'जुही की कली' भी है जिसकी चर्चा निराला के प्रत्येक आलोचक ने की है। 'जुही की कली' ही निराला की पहली बदनाम और पहली सुप्रसिद्ध कविता हुई। इसमें कवि ने मनोरम सौन्दर्य का एक स्वप्न देखा है। यहाँ निराला का दार्शनिक निराला के कवि में खो गया है; दार्शनिक की बुद्धि कवि के रोमांस के चरणों में आत्म-समर्पण कर देती है। मधुर वियोग का ऐसा करुण मिलन किसी भी छायावादी कविता में अन्यत्र दुर्लभ है। " 'जुही की कली' में यौवन की सारी उद्दामता एवं ऊष्मा अभिव्यक्त हो उठी है। साथ ही, कवि ने रति क्रीड़ा के चित्र की एक प्रतीक

के रूप में परिवर्तित कर दिया है। यही कवि की अरूप में रूप की उपासना है।"[1]
'परिमल' के गीतों में, 'परिमल' की रचनाओं में बहुमुखी प्रवृत्तियाँ हैं। इसमें छन्द भी कई प्रकार के आए हैं। प्रथम खण्ड में सममात्रिक सान्त्यानुप्रास कवितायें हैं। दूसरे खण्ड में मात्राओं की समता तो नहीं है, परन्तु अन्त्यानुप्रास अवश्य है। तीसरे खण्ड में स्वच्छन्द छन्द का ही विधान है। 'परिमल' निराला का प्रथम गौरव-ग्रंथ है। इसमें प्रार्थनात्मक, प्रकृति-संबंधी, और प्रेम एवं शृंगार-संबंधी—तीन प्रकार की रचनायें संकलित हैं। प्रार्थनात्मक कविताओं (जैसे—'खेवा', 'पारस' आदि) में किसी विराट् चेतन सत्ता के प्रति कवि का निवेदन हम पाते हैं। प्रकृति चित्रण में निराला की विशेषता यह है कि उन्होंने उसे व्यापक रूप में चित्रित किया है। उनकी प्रकृति में स्वाभाविकता है और विशदता। 'परिमल' की 'प्रभाती', 'यमुना के प्रति', 'वासंती' आदि अनेक रचनाओं मे प्रकृति के बड़े सुन्दर चित्र भरे पड़े हैं। मानवी प्रेम और शृंगार का स्वर भी 'परिमल' की रचनाओं में सुनाई देता है। 'भिक्षुक', 'विधवा' आदि रचनायें समाज के दलित-वर्ग के प्रति कवि के प्रेम को प्रकट करती हैं। इसके अलावा कुछ कविताओं में रहस्यात्मकता के भी दर्शन होते हैं। 'हमें जाना है जग के पार', कवि की ऐसी ही रचना है। वास्तव में सभी छायावादी कवियों में रहस्यात्मकता अवश्य रही है। "कौन ऐसा रोमांटिक कवि है जिसने कल्पना के पर लगाकर एक दूर के सुनहले संसार में उड़ जाने की न सोची हो? वहाँ नैनों से नैन मिले रहते हैं...यथार्थ की दुनिया में तो कामना के कुसुमों में कीड़े लग जाते हैं...परन्तु उस सुनहले संसार में क्षुब्ध अधरों को दूसरे अधरों का हास मिलता है और रूठे हुए हृदय हृदय का हार बन जाते हैं।"

कुल मिलाकर 'परिमल' का कवि यौवन, प्रेम, सौन्दर्य का कवि है। उसे दिवंगता प्रिया की याद आती है, प्रकृति और सौन्दर्य का संसार उसे आकर्षित करता है। फिर भी, कवि की प्रतिभा आगे बढ़ने में सचेष्ट है और 'भिक्षुक', 'विधवा' की पंक्तियों से व्यापक मानवता का स्पर्श करती है। साथ ही, 'परिमल' में निराला का निरालापन भी प्रकट होता है। द्विवेदी-युगीन शुष्क आदर्शवाद की कड़ी को तोड़कर निराला ने संयम और शृंगार से हिन्दी-कविता का नवीन रूप-विन्यास किया है। मानव-मुक्ति के साथ-साथ कवि ने कविता को मुक्ति का भी जय-घोष किया है।

'परिमल' के बाद कवि का दूसरा संग्रह है 'अनामिका' जिसमें १९२९ से १९३७ की कवितायें हैं। 'अनामिका' का कवि मुख्यतः 'दर्शन' और सौन्दर्य का कवि है। इसमें मुख्य कवितायें है—प्रेयसी, सम्राट् अष्टम एडवर्ड के प्रति, दिल्ली, तोड़ती पत्थर, प्रगल्भ प्रेम, बनबेला, सरोज-स्मृति, कविता के प्रति, ठूँठ, वारिद, वन्दना-नर्गिस, राम की शक्ति-पूजा, हिन्दी के सुमनों के प्रति, वे किसान की नई बहू की आँखें, रेखा। इस संग्रह की कई कवितायें रवीन्द्र और विवेकानन्द से प्रभावित हैं। सम्राट् अष्टम एडवर्ड के प्रेम की प्रशंसा करते हुए कवि ने प्रेम के लिए सम्राट् की निर्भयता एवं आदर्श-त्याग को बहुत ही श्रेय बताया है। 'दान' शीर्षक कविता में कवि का कठोर व्यंग्य ध्यातव्य है—

१. महाकवि निराला : काव्यकला और कृतियाँ—पृष्ठ १२३–विश्वम्भरनाथ उपाध्याय।

झोली से पुये निकाल लिये बढ़ते कपियों के हाथ दिये
देखा भी नही उधर फिर कर जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर

इस प्रकार निराला की कविताओं से यह स्पष्ट है कि वे कभी कल्पना की रंगीनी में सर्दव खो नही गए; कवि यथार्थ के प्रति भी हमेशा सजग और जागरूक रहा है। निराला ने जो कुछ अनुभव किया है, उसी को लिखा है, कृत्रिमता एवं कला-विलास उनमें नही है। भावना की यह सच्चाई निराला के काव्य को बहुत ऊँचा उठा देती है। 'सरोज स्मृति' में कवि की वैयक्तिक ही अनुभूति सही, किन्तु बड़ी ही सच्चाई के साथ वह मार्मिकता के शब्दों में मुखर हो उठी है।

'तुलसीदास' निराला की अंतर्मुख प्रबन्ध-रचना है जिसमे कवि ने मनोवैज्ञानिक ढंग से तुलसीदास के जीवन-वृत्त को साकार वाणी देने का प्रयास किया है। श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के अनुसार "निराला ने तुलसीदास की जागृत चेतना को पहिचाना है, इसलिए वे उनके आज भी सबसे बड़े भक्त है। तुलसी आक्रमणकारी विदेशी सत्ताधारियों के विरुद्ध खड़े होने के पहले स्वयं किस प्रकार ज्ञान के आलोक से आलोकित हुए, व्यक्तिगत रूप से उनका सुधार कैसे हुआ, देश की मोह-ग्रस्त दास जनता को जगाने में वे स्वयं वासनादि से ऊपर कैसे उठ सके, यही 'तुलसीदास' नामक कविता का विषय है।"[1] और 'तुलसीदास' 'कामायनी' की कोटि का काव्य है। एक में यदि मनोविकारों का विकास दिखाया गया है तो दूसरे में उनका उत्थान-पतन। यह प्रतीक-पद्धति जहाँ काव्य को असाधारण और उच्च बनाती है वहाँ उसे सर्व-सुलभ भी नहीं रहने देती। रामचरितमानस के चरित्रों की मनोवृत्ति को पाठक समझ लेता है, परन्तु निराला के तुलसीदास की मनःस्थिति को समझ लेना कठिन कार्य है। यह अंतर तुलसी व निराला दो स्रष्टाओं की कला व प्रवृत्तियों का अन्तर है।"[2]

आइये अब 'गीतिका' पर हम विचार करें। "गीतिका गीति-साहित्य का एक नवीन प्रयोग है। इसमें भाव और संगीत की धारायें एक नवीन पद्धति पर चलती हैं। संगीत के क्षेत्र में निराला जी ने इस पुस्तक द्वारा क्रांति करने का प्रयत्न किया है, किन्तु उनकी पद्धति का पथ नूतन होते हुए भी आगे अनुकरण का विषय नही बन पाया, क्योंकि भारतीय संगीत-शास्त्र योरोपीय संगीतकला का किसी सीमा तक समन्वय करने का प्रयत्न होते हुए भी परम्परा-प्रिय संगीतज्ञों मे उसका पथ आगे प्रशस्त नही हो पाया, संभवतः इसका कारण उसका योरोपीय आधार है, इसी लिये कवि ने स्वयं अनुभव किया है कि गवैयों को इनके गाने में सख्त परेशानी होगी और हुई भी।"[3]—श्री विश्वम्भरनाथ के शब्दों में पाठक विचारों के अनमोल मोती चुन सकें तो चुन लें! मेरी दृष्टि में 'गीतिका' के गीत कवि की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के उद्गार हैं। 'गीतिका' के प्रायः सारे गीत रहस्यवाद की कोटि के ही

१. महाकवि निराला : काव्य-कला और कृतियाँ—पृष्ठ १६९—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय।
२. वही, पृष्ठ १७४
३. वही, पृष्ठ १९१

अन्दर आते हैं। हम चाहें तो कह सकते हैं कि निराला ने 'गीतिका' में सुन्दर सजी भाषा में निर्गुण ब्रह्म की उपासना की है। यों ब्रह्म की कल्पना कई रूपों में की गई है, लेकिन मुख्य कल्पना प्रियतम के रूप में आत्म-समर्पण करने की ही है। जब निर्गुण कबीर का हृदय भी पुकार उठता है—

बाल्हा आव हमारे गेह रे, तुम बिन दुखिया देह रे

तो निराला की भी कामना है कि—

मेरे प्राणों में आओ
शत शत शिथिल भावनाओं के—
उर के तार सजा जाओ
गाने दो प्रिय मुझे भूलकर
अपनापन अपार जग सुन्दर
खुली करुण उर की सीपी पर,
स्वाती-जल नित बरसाओ
मेरे प्राणों मे आओ।

'गीतिका' के गीतों में नवीन संगीत की भी योजना है। इसके अतिरिक्त सामासिक शब्दावली और अर्थ-गांभीर्य भी 'गीतिका' के कवि की कला की निजी विशेषता है।

द्वितीय विश्व-युद्ध के भीषण परिणामों से समस्त विश्व प्रभावित हुआ। साहित्य के क्षेत्र में भी उसकी प्रतिक्रिया दिखाई पड़ी। निराला जैसे सजग प्रतिभाशाली कलाकार भी उससे अछूते नहीं रह सके। वास्तव में साहित्य जीवन का दर्पण है, दीपक भी। जब देश और समाज की स्थिति में भयंकर परिवर्तन हुए तो सच्चे कलाकार की तरह निराला की कला ने भी नई अँगड़ाई ली। "ऐसी स्थिति में जब कि बड़ी-बड़ी जोंकें चुपचाप जनता की छाती पर चिपकी अपना काम कर रही थीं, जब कि चारों ओर प्रवंचकों का आपस में सुधार के नाम पर अशुभ मिलन हो रहा था, जबकि बंधनों में तड़पनेवाली जिन्दगी पर दमन, शोषण, छल, राजनीतिक षड्यंत्रों के प्रहार हो रहे थे तब कवि के लिए यमुना की लहरों से अतीत के गान पूछने में समय लगाना व्यर्थ था, तब विजन-वन-वल्लरी पर सोती सुहागभरी कलियों की सुन्दर देहों को निष्ठुर नायकों द्वारा झकझोर डालते देखने में आत्महत्या थी, तब मेघमय आसमान से उतरती संध्या-परी को देखने में समय बिताना समाज-द्रोह था, तब तो दम्भ में रँगे, आपाततः त्यागी और परमार्थी लगनेवाले धूर्त नेताओं की पोल खोलने की अनिवार्यता थी, तब समाज के पहिये के नीचे पड़े हुए अर्धमृत, सिसकते हुए जन-जीवन का चित्रण आवश्यक था, तब चित्रराग, सूक्ष्म कल्पनाओं के इन्द्रजाल, मन की बहक, खुमार, हृदयोच्छ्वास, प्रिय-मनुहार आदि रोमांटिक तत्त्वों के स्थान पर घोर यथार्थ का चित्रण आवश्यक था, और इसीलिए निराला ने गुलाब को छोड़कर कुकुरमुत्ता के सौंदर्य व गौरव को देखा। निराला वैसे तो आरंभ से ही 'भिखारी', 'विधवा', 'बादल-राग', 'जागो फिर एक बार' का कवि रहा है, परन्तु तब अन्य स्वर प्रधान थे, तब संगीत, सौंदर्य-भावना का प्रसार था, अब द्वितीय युद्ध के प्रारंभ से वह व्यक्तिवादी पद्धति को छोड़कर जनवादी पद्धति

पर आता गया, जिसे शोषितों का साहित्य (Proletariat Litrature) कहते हैं, सही अर्थों में निराला ने लिखना आरंभ किया।"[1]

'कुकुरमुत्ता' सन् १९४२ में प्रकाशित कवि की व्यंग्यात्मक कविताओं का संग्रह है। 'कुकुरमुत्ता' ही पुस्तक की प्रथम कविता है जिसमें कवि ने 'गुलाब' और 'कुकुरमुत्ता' के प्रतीक के सहारे शोषकों की निन्दा, पूँजीवाद पर कटु व्यंग्य किये हैं। 'मास्को डायलाग्ज' में कृत्रिम नेता का अच्छा मजाक उड़ाया गया है। किन्तु सुरुचि का पूर्णत: अभाव है। इसे आप चाहें तो प्रगतिवाद मानें, किन्तु क्या यह काव्य की कलात्मकता बन सकती है ?

फाँसना है उन्हें मुझे
ऐसे कोई साला एक धेला नही देने का

इतना ही नही, सद्य:स्नाता युवती के कठोर उरोजों का अश्लील वर्णन क्या प्रगतिवाद है ?—

आँख पड़ी युवती पर
आई जो नहा कर
× × ×
वर्तुल उठे हुए स्तनों पर अड़ी थी निगाह
चचसी जयंत की, नही है जिसे कोई चाह
देखने को मुझे और
कितने वे दिव्य स्तन, होंगे कितने कठोर
काँप उठा मेरा मन !

संभव है, छायावाद की सूक्ष्मता की प्रतिक्रिया ही ऐसी स्थूलता के रूप में हुई। लेकिन प्रगतिवाद के झोके में ऐसे नग्न चित्रों का भी खूब स्वागत किया गया। कुल मिलाकर 'कुकुरमुत्ता' में ऐसे ही निम्न कोटि के चित्र हैं, अश्लील हास्य ! फिर भी समय की दृष्टि से 'कुकुरमुत्ता' का अपना महत्त्व है। कवि ने इसमें नवीन प्रयोग किया है, भले ही वह उसमें असफल रह पाया हो।

दूसरे ही साल सन् १९४३ में कवि की दूसरी कृति 'बेला' प्रकाश में आई। इसमें गजलों की भी बहार आप देख सकते हैं। रचनाओं की भाव-दिशा बहुमुखी है। देशप्रेम, रहस्यात्मकता, प्रेम-श्रृंगार आदि कई प्रकार की कवितायें इस संग्रह में आई हैं। कहीं-कहीं पर, पूँजीवाद पर प्रहार भी किये गये हैं—

भेद खुल जाय वह सूरत हमारे दिल में है
देश को मिल जाय जो पूँजी तुम्हारे मिल मे है

प्रगतिवाद के स्वस्थ चरण भी यहाँ द्रष्टव्य हैं—

जल्दी जल्दी पैर बढ़ाओ
आओ, आओ, आओ

---

१. महाकवि निराला : काव्यकला और कृतियाँ, पृष्ठ २१३—विश्वंभरनाथ उपाध्याय।

यह। जहाँ सेठ जी बैठे हुए थे
बनिये को आँख दिखाते हुए
उनके ऐंठाये ऐंठे थे
बैंक किसानों का खुलवाओ !

'बेला' में कवि की भाषा बड़ी सीधी-सादी हो चली है यद्यपि गेयता है, पर कला-सौष्ठव नहीं। गजलों में कवि की कुछ रचनायें काफी अच्छी अवश्य बन सकी हैं। कुछ पंक्तियाँ एक कविता से दी जा रही हैं—

उपवन में, मेरी शायरी के शब्द यों आये
जैसे फूलों का भार दिये जा रहा हूँ मैं
दुनिया के शायरों की किताबों में जो आई
उस युवती को शृंगार दिये जा रहा हूँ मैं !!

इसके बाद कवि की दूसरी कृति है 'नये पत्ते'। इस संग्रह में कुछ कवितायें 'कुकुरमुत्ता'-काल की ही हैं। "Leaves sf Grass" की तरह निराला के 'नये पत्ते' की कविताएँ भी छोटी-बड़ी, लम्बी-चौड़ी, बढ़ी-छोटी भिन्न-भिन्न पंक्तियों में हैं। भाषा कवि की बड़ी ही जनसाधारण के समीप आ गई है—रूखड़ी, उखड़-खाबड़। कई रचनाओं में व्यंग्य-बाण भी छोड़े गये हैं। जैसे 'झींगुर डटकर बोला' और 'कुत्ता भौंकने लगा' में जमींदारी-प्रथा पर कटु प्रहार किये गये हैं। उसी प्रकार 'महँगू महँगा रहा' मे नेताओं पर, 'डिप्टी साहब आये' में जमींदार-पुलिसवालों पर व्यंग्य किया गया है। 'नये पत्ते' की बहुत बड़ी विशेषता इस बात में है कि कवि का व्यंग्य इसमें आकर बड़ा ही सुन्दर, चुभता हुआ और मार्मिक है।

'अणिमा' कवि की अगली रचना है। इसमें आध्यात्मिक गीत भी आये हैं और जनवादी गीत भी। कवि ब्रह्म से निवेदन करता है—

उन चरणों मे मुझे दो शरण, इस जीवन को करो हे वरण

और दूसरी ओर कवि लोक-जीवन को भी भूला नहीं है। वह समस्त पीड़ित मानवता के लिए प्रार्थना करता है—

दलित जन पर करो करुणा
दीनता पर उतर आये
प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा

इसके अलावा 'अणिमा' में महादेवी, प्रसाद, बुद्ध, आचार्य शुक्ल आदि की प्रशस्तियाँ भी हैं। कुछ यथार्थवादी चित्र भी 'अणिमा' में विद्यमान हैं। एक चित्र देखिये—

सड़क के किनारे दूकान है
पान की, दूर इक्कावान है
घोड़े की पीठ ठोंकता हुआ
पीरबख्श एक बच्चे को
दुआ दे रहा है.........

१९५० ई० में प्रकाशित कवि की 'अर्चना' अब हमारे सामने है। इसमें भी कुछ गीतों का स्वर जनवादी है, कुछ गीतों का स्वर आध्यात्मिक। कहीं निर्विकार के प्रति कवि का आकुल निवेदन है, कहीं जड़ परंपराओं और सामाजिक-आर्थिक जंजीरों के प्रति विप्लव की भावना। इसके बाद साहित्यकार-संसद, प्रयाग से निराला की दूसरी कृति 'अपरा' प्रकाशित हुई है। इसमें कवि की चुनी हुई कविताएँ संगृहीत की गई हैं।

— तो यह कवि की काव्य-कृतियों का संक्षिप्त विवेचन किया गया। आइये, अब हम कवि की प्रमुख विशेषताओं की ओर दृष्टिपात करें।

निराला की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उनकी कविताओं में हृदय-पक्ष और बुद्धि-पक्ष का बहुत ही सुन्दर समन्वय हुआ है। वे कवि के साथ-साथ दार्शनिक भी हैं। और ठीक ही No man was ever a greeą poet without being at the same time a profound phitosopher—S. T. Coleridge. निराला के काव्य में कविता और दर्शन का यही सुन्दर सामंजस्य है। दार्शनिक निराला के कारण ही कवि निराला समर्थवान् सिद्ध हुआ। पर निराला की दार्शनिकता रूक्ष नहीं है। निराला का दर्शन भाव और अनुभूति के माध्यम से कविता में छनकर आया है, इसलिए मधुर और मार्मिक भी है। निराला की निराली कविताओं का यह सबसे बड़ा निरालापन है। 'पंचवटी-प्रसंग' में कवि ने ब्रह्म, ज्ञान, कर्म आदि पर विचार प्रकट किये हैं। कवि का एक अदृष्ट चेतन सत्ता में गंभीर विश्वास है। उस अदृष्ट सत्ता के प्रति कवि ने अनेक प्रार्थनात्मक गीत लिखे हैं। भावात्मक और चिंतन-प्रधान दोनों प्रकार के रहस्यवाद हम निराला में पाते हैं। प्रथम का उदाहरण यदि 'जुही की कली' है तो दूसरे का 'तुम और मैं' शीर्षक रचना। कहीं कवि ने घट के भीतर ही ब्रह्म के दर्शन किये हैं—

पास ही रे हीरे की खान खोजता और कहाँ नादान

तो कहीं अव्यक्त में अपने कार्यों का आरोप किया है—

तुम्हीं गाती हो अपना गान व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान!

प्रसाद के समान निराला में भी उस पार जाने के लिये विकलता है जहाँ ज्योति के सहस्र रूप खिलते हैं—

हमें जाना है जग के पार!

कहीं-कहीं कवि ने शुष्क बुद्धिवाद के सहारे ब्रह्म-जीव-जगत् के प्रश्नों को सुलझाने की कोशिश की है—

तुम हो अखिल विश्व में
या यह अखिल विश्व है तुझमें?

पीछे चलकर कवि का रहस्यवाद देवता से मानव की ओर उन्मुख हो जाता है। यहाँ वे अपने कवि-बन्धु पन्त से ही तुलनीय हैं। अंतर यह है कि पन्त जहाँ प्रकृति से मानव की ओर मुड़े, निराला दर्शन से मानव की ओर। अब मानव ही निराला के कवि का भी केन्द्र बन गया। कवि की इन पंक्तियों में मानवतावादी स्वर स्पष्टतः सुनाई पड़ता है—

तोल - तू उच्च नीच समतोल
एक तरु के-से सुमन अमोल

कवि जनशक्ति का विश्वासी है और नर-शक्ति का उपासक। इसलिए वह कह उठता है—

जल्दी जल्दी पैर बढ़ाओ
आओ, आओ, आओ
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला
धोबी पासी चमार तेली
खोलेंगे अँधेरे का ताला
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ !

तो ठीक ही श्री इन्द्रनाथ मदान ने कहा है कि ऐसा लगता है कि निराला जनकवि होने की तैयारी में हैं। वास्तव में मेरी दृष्टि में तो निराला जनकवि है। जनता के विविध भावों का जितना चित्रण निराला कर सके हैं उतना छायावाद का कोई दूसरा कवि कर सका है ! इस प्रकार दार्शनिकता, रहस्यात्मकता के अतिरिक्त निराला की अन्य विशेषता उनकी प्रगतिवादिता भी रही है। उन्होंने अनेक व्यंग्यपूर्ण कवितायें भी लिखी हैं। अपनी संस्कृति और देश से प्रेम भी निराला की अपनी विशेषता है। अनेक भारतीय पुरुषों और अतीत-प्रेम पर लिखी रचनायें कवि की देशभक्ति की प्रमाण है। इस दृष्टि से 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' के नाम लिये जा सकते हैं।

प्रकृति के प्रति भी कवि का अपना दृष्टिकोण है। रहस्यात्मकता के कारण कहीं-कहीं प्रकृति का चित्र अतिरंजित हो उठा है। फिर भी, कहीं-कहीं प्रकृति के कई यथातथ्य चित्र बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। निराला जी ने प्रकृति के जड़चित्रों में अपनी कला और कल्पना से जीवन-स्पंदन भी भरा है, कहीं-कहीं पन्त की तरह ही प्रकृति के व्यापारों के प्रति कवि कौतूहल प्रकट करता है। किन्तु पन्त से निराला का अन्तर यह है कि निराला ने प्रकृति के व्यापक-विशद रूप का अंकन किया है। प्रकृति के कठोर और कोमल दोनों रूप, उन्हें समान रूप से प्रिय हैं। इसी लिए एक ओर 'जुही की कली' की सुरभि है। तो दूसरी ओर 'बादल-राग' भी। प्रकृति के प्रति निराला का एक और दृष्टिकोण है। उन्होंने प्रकृति को रहस्यवादी और अद्वैतवादी दृष्टियों से देखा है। आत्मा और परमात्मा के रूप में प्रकृति का सुन्दर चित्रण 'जुही की कली' शीर्षक कविता में हम पाते हैं।

इन सबके अलावा निराला एक कुशल शब्द-चित्रकार भी हैं। कुछ एक रेखाओं से उन्होंने बड़े ही प्रभावशाली चित्र खींच डाले हैं। 'संध्या-सुन्दरी' शीर्षक कविता में ऐसी ही तस्वीर मिलती है। 'भिक्षुक' शीर्षक रचना में भिक्षुक का चित्र भी कितना मार्मिक हुआ है—

वह आता
दो टूक कलेजे के करता

पछताता पथ पर आता
पेट पीठ मिलकर दोनों हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को ।

निराला की कला में ओज गुण ही यों प्रधान है । भाषा संस्कृतगर्भित होती है और शब्दावली समास गुंफित । पंत जी की तरह लाक्षणिकता उतनी नहीं है । अलकारों का प्रवेश बहुत स्वाभाविक रूप में हुआ है, कवि ने कहीं भी जानबूझकर अलंकारों की पकड़ के लिए दौड़ नहीं लगाई है । छन्द में तो निराला ने बहुत बड़ी क्रांति ही उपस्थित की । मुक्त छन्द का प्रवर्तन उनकी सबसे बड़ी कलागत विशेषता है । लेकिन निराला की दूसरी सबसे बड़ी कलागत विशेषता यह भी है कि भाषा सदैव उनके भावों की अनुगामिनी रही है । प्राय: यह आक्षेप किया जाता है कि निराला की भाषा क्लिष्ट होती है, उनकी कवितायें समझ में नहीं आती । मेरा निवेदन है कि जहाँ कहीं क्लिष्टता है तो दार्शनिकता के कारण, नवीन अभिव्यजना-प्रणाली के कारण । आप निराला के दार्शनिक विचारों और उसकी नवीन अभिव्यंजना-प्रणाली से सहानुभूतिपूर्ण मित्रता स्थापित कर लें, फिर तो निराला की कविता-कविता, पंक्ति पंक्ति में भाव छलकता नज़र आएगा। निराला की भाषा 'बेला', 'नये पत्ते' या 'कुकुरमुत्ता' में तो इतनी सरल हो गई है कि सहसा पहचान में नहीं आती । वास्तव में, भाव के अनुकूल भाषा को मोड़ देने में निराला सुसमर्थ कलाकार हैं । भाषा पर उनका अबाध अधिकार है । चित्रात्मकता और संगीत-निराला की काव्य-कला की अन्य विशेषतायें हैं। संगीत तो निराला की कला का जन्मजात अलंकार है । संगीत की पकड़ निराला में बहुत ही जबर्दस्त है । स्वयं श्री रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में संगीत को काव्य के और काव्य को संगीत के अधिक निकट लाने का सबसे अधिक प्रयास निराला जी ने किया है । इस प्रकार भाव, भाषा, छन्द—सभी क्षेत्रों में निराला ने हिन्दी-कविता को जितनी विविध देन दी, वह ऐतिहासिक महत्त्व की बात है ।

किन्तु जैसा कि एक अंग्रेज-विद्वान् का विचार है ठीक ही The judgment of contemporaries is almost always wrong. बात यह होती है कि अतिशय राग अथवा अतिशय विद्वेष से वशीभूत होकर प्राय: लोग समकालीन साहित्यकार का सच्चा मूल्यांकन नहीं कर पाते , साहित्य के मार्केट में सदा से ही यह होता आया है । कभी सच्ची प्रतिभा भी उचित सम्मान नहीं पा सकी है, और कभी कुपात्र भी कृपा-पात्र बन गए हैं। हाल की ही बात लीजिए । 'कृष्णायन' के कवि को डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने इसलिए युग-प्रवर्तक कवि कहा; क्योंकि वह सी० पी० सरकार का मंत्री है । डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी तुरंत प्रशस्ति की; क्योंकि वह उनका मित्र है । निराला को कभी किसी पी० एच-डी० या डी० लिट् ने कुछ भी प्रोत्साहन नहीं दिया । लेकिन सच्चा साहित्य किसी की प्रशंसा से थोड़े ही प्रतिष्ठित होता है । श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने ठीक ही कहा है कि "इसी प्रकार की दलबंदी और प्रचार के फलस्वरूप ही निराला ने कभी-कभी राजनीतिकों के प्रति अपना

क्षोभ प्रकट किया है, अन्यथा यति के लिए किसी के प्रति विद्वेष रखना संभव ही नहीं। यह ठीक है कि प्रचार और राजनीतिक दबाव के कारण निराला को जीवन में नारकीय कष्ट उठाने पड़े हैं, एक अपढ़ गँवार की भाँति मजूरी करनी पड़ी है, चौका-बासन, झाड़ना-बुहारना, घर-वस्त्र साफ करना आदि से लेकर कविताओं के साथ संपादकों-प्रकाशकों के दर्वाजे खटखटाने पड़े हैं, पर क्या कभी मोटी-मोटी तनख्वाहें पानेवाले, मोटरवाले राजनीतिक पदाधिकारी उनकी साहित्यिक साधना को छीन सकेंगे ? कदापि नहीं "।[1] और फिर श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय के ही शब्दों में 'इसमें सन्देह नहीं कि प्रसाद जी ने इस युग को एक सुरुठ प्रौढ़ता दी, पर निराला ने तो उसमें एक नव-जीवन भर दिया। निराला ने हिन्दी के लिए अपने को खपा दिया, राज्य की नौकरी छोड़ी और भूखे रहकर भी हिन्दी की सेवा की। निराला-जैसे कवियों के लिए ही कहा जा सकता है कि—

राजा से आसन उठता है ऊँचा कभी फकीरों का
मुकुटों से भी कभी मान चढ़ जाता है जंजीरों का !
मस्ती के दीवाने कवि को मोद न मिला अमीरी में
आग लगा दौलत में आखिर ढूँढ़ी शांति फकीरी में !

निराला की प्रतिभा, एक स्वतः स्फूर्ति लिये हुए जल-प्रवाह की ही तरह अपने पथ का निर्माण करती हुई अविरल गति से आगे बढ़ती जाती है। निराला के लिए यह कहने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता कि—

चौड़ी छाती फुला अकड़ता
अल्हड़ धूम मचाता
छाता चारों ओर एक
जलपथ का समा रचाता !
बड़े - बड़े बाँधों को टक्कर मार—
तोड़कर बहता,
अपने ही बल के वेगों से
व्याकुल उमग उमड़ता !

निराला ने कभी 'ज्ञानलव दुर्विदग्ध' आलोचकों की चिंता नहीं की, वे तो—

टोकों को अनसुनी किये - सा
रोकों से टकराता
ताल ठोंक सब ओर जवानी
के जौहर दिखलाता

वास्तव में, जवानी का दुर्दम्य जोश और गति की तीव्रता निराला में कूट-कूटकर भरी है।"[2] क्या सच में निराला की जीवन-कहानी इसी बात का प्रमाण नहीं ? वास्तव में, निराला हिन्दी के निराले कलाकार हैं।

———

१. महाप्राण : निराला—पृष्ठ ११८, गंगाप्रसाद पाण्डेय।
२. महाप्राण : निराला—पृष्ठ ४०-४१—श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय।

महादेवी का काव्य-सौन्दर्य

सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी ! प्रिय के अनन्त अनुराग भरी !
पालूँ जग का अभिशाप कहाँ प्रति रोमों में पुलकें लहरी !
जिसको पथ - शूलों का भय हो वह खोजे नित निर्जन गह्वर।
प्रिय के संदेशों के वाहक, मैं सुख दुख भेंटूँगी भुज भर !

— स्वयं महादेवी के शब्दों में महादेवी का परिचय इसी प्रकार दिया जा सकता है। महादेवी की कविताओं में उनके ऐकान्तिक जीवन का करुण सौन्दर्य अत्यंत ही संयमित और तीव्रतम अनुभूति के साथ अभिव्यंजना के तारों में बोल उठा है। अंग्रेज-कवि जॉन कीट्स के समान ही महादेवी की कवितायें भी राजनीति के कोलाहलपूर्ण वातावरण से दूर अपने ही हृदय के सहज उद्गार की सप्राण अभिव्यक्ति हैं। उनका काव्य अलौकिक प्रेम और वियोग से सजल-स्नात हृदय का आकुल प्रणय-निवेदन है, सच्ची प्रेमिका के अतृप्त प्रेम की पीड़ान्तक व्याप्ति है। सुतरां, सुप्रसिद्ध समालोचक श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन उपयुक्त ही है कि "महादेवी इसलिए नहीं रहेंगी कि उनके गीतों के संग्रह सजधज के साथ निकल रहे हैं, बल्कि इसलिए कि उन गीतों के प्राणों में जो विरहिणी रो रही है, वह आज से दस हजार वर्ष पूर्व भी जीवित थी, और आज से असंख्य वर्ष बाद भी अपनी पीड़ा में नित्य रहेगी।"[1]

ऐसी प्रतिभा सम्पन्न दार्शनिक कवयित्री का जन्म निर्जीव संस्कारों से जड़ीभूत वर्ग में सन् १६०७ में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गोविन्दप्रसाद वर्मा था। वे सभी प्रकार की सांप्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। इसी लिए महादेवी का जीवन भी भावुकता, साधना और आस्तिकता के समन्वय-सूत्र से आबद्ध रहा। पूजा-आरती के समय माँ से मीराबाई के पदों को सुनकर इन्हें कविता की प्रेरणा मिली। शुरू शुरू ब्रज-भाषा में इन्होंने कविताएँ कीं। फिर खड़ीबोली से परिचय होने पर खड़ीबोली में कवितायें लिखने लगीं। उन्हीं दिनों माँ से सुनी एक करुण कथा के आधार पर उन्होंने खण्डकाव्य भी लिखा था, जो कदाचित् आज उपलब्ध नहीं। यह महादेवी की कविता का शैशव काल था।

हिन्दी-कवयित्रियों के बीच महादेवी का व्यक्तित्व अत्यंत ही आकर्षक और साथ ही अनुपम है। चांदनी-सी उजली-धुली साड़ी और श्वेत परिधान में लिपटी पतली-दुबली शांत सुकुमार [महिला सात्त्विकता की साकार प्रतीक-सी प्रतीत होती हैं। सुनते हैं, वे हँसती बहुत हैं, बातें भी खूब करती हैं। उनसे मिलनेवालों ने प्रायः धोखा खाया है कि 'सांध्यगीत' की कवयित्री अवश्य सदा उदास-उन्मन रहती होगी; पर वास्तविकता है बात ऐसी नहीं ! महादेवी की रचनाओं में काव्य, संगीत और चित्र की अपूर्व त्रिवेणी है।

१. हिन्दी-साहित्य : बीसवीं शती — नन्ददुलारे वाजपेयी।

महान् कवि कुशल चित्रकार भी हो, ऐसा अवसर नहीं होता। महादेवी की, लेकिन, तूलिका पर भी उतना ही अधिकार है जितना लेखनी पर! संगीत तो उनके गीत-प्रति-गीत में सज उठा है। ऐसा असाधारण व्यक्तित्व और बहुमुखी प्रतिभा रखनेवाली कवयित्री के सम्बन्ध में श्री इन्द्रनाथ मदान की उक्ति ठीक ही है कि सम्पन्न और शिक्षित परिवार में जन्म, चित्रकला और संगीतकला का प्रबंध, बुद्ध की करुणा की गहरी छाया, दार्शनिक चिंतन, पति से पृथक् एकाकी जीवन, सेवा-भावना का अत्यधिक उज्ज्वल रूप आदि सब ने मिलकर उनके व्यक्तित्व को ऐसा बनाया है कि हिन्दी में ही नहीं, भारत और विश्व में अन्य कोई स्त्री-कलाकार उनकी कोटि में नहीं आ सकती। जीवन के पट में ऐसे बहुरंगी धागों का संयोग अन्यत्र नहीं मिल सकता।

महादेवी की रचनाओं में संगीत-सम्मोहन का भी एक अद्भुत आकर्षण है। उनकी कविता-पुस्तकों में 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' के नाम अग्रगण्य हैं। इसके अतिरिक्त 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' की कविताओं का संग्रह 'यामा' नाम से भी सज-धज कर प्रकाशित हुआ है, महादेवी को काव्य-साधना में निरत हुए अब बीसों वर्ष बीत चुके हैं, कुछ अधिक ही। आज 'नीहार' के झिलमिल वातावरण से महादेवी की कविता काफी आगे बढ़ चुकी है। 'नीरजा' निस्सन्देह एक प्रौढ़ कवयित्री की प्रौढ़ रचना है। लेकिन हम सोचते हैं कि 'सांध्यगीत' क्या सच में इनके जीवन-गगन का सांध्यगीत होगा? फिर भी हम आशा लगाये बैठे हैं कि हिन्दी-कविता को महादेवी जी कुछ और अद्भुत-अनुपम दे पायेंगी! कला की दृष्टि से 'नीहार' में महादेवी की कल्पना की बारीकी देखते ही बनती है। 'रश्मि' में कवयित्री कुछ गंभीर हो चली है और 'नीरजा' में भाषा-सौन्दर्य के साथ ही भाव-सौरभ भी विद्यमान है। कविता-पुस्तकों के अतिरिक्त महादेवी जी ने कुछ शब्दचित्र भी लिखे हैं जो 'अतीत के चलचित्र' तथा 'शृंखला की कड़ियाँ' शीर्षक से प्रकाशित हो चुके हैं।

महादेवी की कविताओं में चाहे सामाजिक संघर्ष और जटिल जीवन की आर्थिक समस्यायें स्पष्टता के साथ मुखरित न हुई हों, किन्तु अतृप्त प्रेम की तीव्रतम अनुभूति निश्चय ही उनके प्रत्येक गीत में बोल उठी है। अँग्रेज-कवयित्री सी. जी. रोज़ेटी की ही तरह महादेवी भी अज्ञात प्रियतम की बाट जोहती हुई उन्मन और उदास विरहिणी कवयित्री हैं। कभी प्रियतम की झलक उन्हें मिली थी अवश्य, पर वह उसे आँख भर देख न पाई—

इन ललचाई पलकों पर
पहरा जब था व्रीड़ा का
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का!!

कभी उस प्रिय ने दर्शन दिया था अवश्य, उसके मिलन के पक्ष में कवयित्री की पंक्तियाँ देखिए—

कैसे कहती हो, सपना है
अलि, उस मूक मिलन की बात?

मरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू, उनके हास !

और यह उसी अज्ञात प्रिय का उपहार है—

गई वह अधरों की मुस्कान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर !

महादेवी का सारा दुख इस लिये है। जब वह प्रिय क्षणिक झांकी देकर चला गया—

जीवन है उन्माद तभी मे
निधियाँ प्राणों के छाले
माँग रहा है विपुल वेदना
के मन प्याले पर प्याले !

जाने कैसा था वह प्रियतम ! वह आया था और जाने कौन-से सुख के लिए वह स्वप्नों से जगाकर अंतर्धान हो गया ! लेकिन इधर कवयित्री को उसकी याद सताने लगती है—

कौन आया था न जाने
स्वप्न में मुझको जगाने
याद में उन उंगलियों के
पर मुझे हैं युग बिताने !

उसी प्रियतम के वियोग की वेदना से महादेवी के प्रायः सभी गीत सजल हो उठे हैं। महादेवी की कविताओं में यही विरह वेदना और अन्तर का हाहाकार व्यक्त हुआ है। जिसे वह पा नहीं सकी उसके प्रति प्रेम-भावना प्राणों में सदा के लिए प्रतिष्ठित हो गई। किन्तु उसकी याद की पीड़ा गीतों में उभर उभर कर व्यक्त होने पर भी कभी कम नहीं हो सकी—

पर शेष नहीं होगी यह
मेरे प्राणों की पीड़ा
तुमको पीड़ा में ढूंढा
तुममें ढूंढूंगी पीड़ा !!

पीड़ा के इस परिधान से महादेवी की कविता-कुमारी सदैव वेपित है। उनके हृदय में विचारों का नहीं, वेदना का प्राधान्य है। इसका कारण ठीक-ठीक बतलाना सहज नहीं। महादेवी ने स्वयं बतलाया है कि उनका दुख अभावजन्य नहीं, भौतिक नहीं। जीवन में उन्हें बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला और अब कदाचित् उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना उन्हें मधुर लगने लगी है। साथ ही, बुद्ध की दुखात्मक फिलासफी का भी यह प्रभाव हो सकता है। दुख के माध्यम से समष्टि तक पहुँचने की फिलासफी बौद्ध-दर्शन का ही परिणाम है :—

तुम मानस मे आ बस जाओ
छिप दुख के अवगुण्ठन से

मैं तुम्हें खोजने के मिस
परिचित हो लूँ कण-कण से !

महादेवी ने 'रश्मि' की भूमिका में स्पष्ट कहा है कि "दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है।" महादेवी की इस वेदना के संबंध में आचार्य शुक्ल का मत है कि "वेदना से इन्होंने (महादेवी ने) अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है, उसी के साथ वे रहना चाहती हैं। उसके आगे मिलन-सुख को भी वे कुछ नहीं समझतीं। वे कहती हैं कि—मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूँ ! इस वेदना को लेकर इन्होंने हृदय की ऐसी-ऐसी अनुभूतियाँ रखी हैं जो लोकोत्तर हैं।"[1] श्री शांतिप्रिय द्विवेदी का कथन है कि "प्रसाद ने जिस छायावाद को चलाया, पंत ने पल्लव की प्रतिभा द्वारा उसे शरीर तो दे दिया, किन्तु उसे जिस विदग्धता की अपेक्षा थी, वह मिली महादेवी की कविताओं से।"[2] महादेवी के गीतों में इस वेदना के अतिशय का कारण भी है। सच्चे प्रेम का परिणाम प्रायः पीड़ा ही होता है। असफल किन्तु सच्चा प्रेम वेदना के तारों में बज उठता है : Lips that fail to kiss, begin to sing ! इसी लिए महादेवी में भी उनका सच्चा किन्तु असफल प्रेम व्यथासिक्त गीतों में मुखरित हुआ है। किन्तु यह प्रेम लौकिक नहीं है। अज्ञात प्रिय से मिलन संभव नहीं। सुतरां वेदना का सदा बना रहना स्वाभाविक ही है। अज्ञात की प्रेमिका का मिलन कैसे हो ? शेक्सपियर के 'द विन्टर्स टेल' में लियोन्टस से हरमोयन का पुनर्मिलन होता है, किन्तु अज्ञात प्रिय से महादेवी की प्रेम-पुजारिन मिल नहीं सकती ! फिर वेदना का आतिशय्य क्यों नहीं हो ? और यह पीड़ा दी हुई किसकी है ? प्रिय का ही तो उपहार है न ? इसी लिए प्रेमिका के लिए अब पीड़ा ही सर्वस्व है—

मेरा सर्वस्व छिपा है इन दीवानी चोटों में !

इसी लिए पीड़ा बड़ी प्यारी है। पीड़ा के आँसू बड़े कीमती हैं—

आँसू का मोल न लूँगी मैं !

और यही कारण है, कवयित्री अब पीड़ा को अपने हृदय में बसा लेती है। पीड़ा से प्रिय की याद तो कम-से-कम बनी रहती है। इसी लिए वियोग-वेदना मधुमय है—

वर देते हो तो कर दो ना चिर आँख-मिचौनी यह अपनी

और कवयित्री चाहती हैं कि—

मेरे छोटे जीवन में देना न तृप्ति का कण भर
रहने दो प्यासी आँखें भरतीं आँसू के गागर !

किन्तु महादेवी की प्रेमिका की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह मानिनी भी है। यह मान करती है कि यदि वह उससे प्रेम न करती होती तो प्रिय को पूछता ही कौन !—

---

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास—रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ ४११।
२. संचारिणी—शांतिप्रिय द्विवेदी, पृष्ठ २०७।

हो जावेगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अँधेरा !

महादेवी को पीड़ा इसलिए भी प्यारी है कि पीड़ा से प्रेम में गति बनी रहती है। मिलन तो मधुर प्रेम का अवसान है। प्रेम मिलन में नहीं, वियोग में ही बना रहता है। इसी लिए कवयित्री को मुक्ति की भी आकांक्षा नहीं है—

जिसमें कसक न सुधि का दंशन
प्रिय में मिट जाने के साधन
वे निर्वाण-मुक्ति उनके
जीवन के शत बन्धन मेरे हों !

पीड़ा के सहारे कवयित्री उस प्रिय को पाकर क्या नहीं पा लेगी ? तब शाप उसे वर-सा बन जायगा, पतझर अजर मधु के मास-सा बन जायेगा, विरह की घड़ियाँ मधुर मधु की यामिनी-सी हो जायँगी, और वह प्रिय की बन्दिनी होकर भी बन्धनों कीस्वामिनी-सी हो जायगी।

महादेवी का यह दुखवाद भारत के लिये नवीन नहीं। वैदिक-युग के बाद से ही ऐसे दर्शनों का प्राबल्य होता आया है। बौद्ध और जैन दर्शन तो इसी दुखवाद को लेकर पनपे। फिर भी महादेवी के छायावाद में विशेषता यह है कि उसमें सच्ची अनुभूति के कारण अद्भुत प्रभावोत्पादकता और अत्यंत मार्मिकता भी है। किन्तु कुछ आलोचकों का आक्षेप है कि महादेवी की अनुभूतियाँ वास्तविक अनुभूतियाँ नहीं हैं। महादेवी की भावनायें काल्पनिक हैं, झूठी हैं। इस संबंध में आचार्य शुक्ल का मौन बड़ा ही खतरनाक है— "कहाँ तक वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, कहा नहीं जा सकता।"[1] सुश्री शचीरानी गुर्टू कहती हैं कि यह पीड़ा की अनुभूति कैसी, जिससे छुटकारे की कांक्षा न की जाय ? स्वयं महादेवी को अपने पर किये गये इस आक्षेप से बड़ा आश्चर्य हुआ है —

जाने क्यों कहता है कोई मैं तम की उलझन में खोई

पर वास्तविकता यह है कि अनुभूति सच्ची न होती तो फिर यह सब क्यों होता—

जो न प्रिय पहचान पाती दौड़ती क्यों प्रति शिरा में
प्यास विद्युत्-सी तरल बन क्यों अचेतन रोम पाते
चिर व्यथामय सजग जीवन किस लिये हर सांस तम में
सजल दीपक-राग गाती !

विद्वान् लेखक श्री इन्द्रनाथ मदान ने ठीक ही स्वीकार किया है कि महादेवी की कला में अनुभूतियों की सच्चाई की झलक मिलती है। नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी इसे मान्यता दी है।[2]

महादेवी की प्रेम-भावना अथवा विरह-वेदना के संबंध में भी शंका उत्पन्न की गई है। सुश्री शचीरानी गुर्टू सरीखी विदुषी महिला लिखती है कि "महादेवी की विरह-वेदना

---

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास—रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ ७२०।

२. हिन्दी-साहित्य : बीसवीं शती—नन्द दुलारे वाजपेयी।

अलौकिक या आध्यात्मिक न होती हुई लौकिक प्रेम की सहजानुभूति से उद्भूत है, और काल्पनिक आवरण में लिपटकर रहस्यपूर्ण होती गयी है [१] लेकिन हम ऐसा नहीं मान सकेंगे। महादेवी की कविता अलौकिक प्रेम और आध्यात्मिक विरह से भरे हुए हृदय का उद्गार है। उसमें अभावजन्य अतृप्ति नहीं है; ऐसी पवित्रता है कि ऐन्द्रिक काम-वासना हम नहीं कह सकते। सुप्रसिद्ध समालोचक विश्वम्भर 'मानव' के शब्दों में ठीक ही "महादेवी की कविता अपार्थिव चेतना के गिरि से फूटी है, आध्यात्मिक वेदना की मंदाकिनी है जो शत सहस्र अलौकिक भावनाओं की लहरियों को अपनी करुणा-क्रोड में खिलाती हुई परम शांति के महासमुद्र की ओर अत्यन्त वेग से निरन्तर बह रही है।"[२]

अज्ञात असीम प्रियतम के प्रति इसी आकुल प्रणय-निवेदन के कारण महादेवी की कविताओं की अन्य प्रमुख विशेषता रहस्यवाद भी है।

अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में तरल मोती सा जलधि जब काँपता
तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से ज्योत्स्ना के रजत पारावार में
सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे नींद के उच्छ्वास-सा वह कौन है ?

इसी भावना को हम महादेवी का रहस्यवाद कह सकते है। महादेवी मे रहस्यवाद क्यों ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि बचपन से उन्हें आध्यात्मिक ग्रंथों के अध्ययन की रुचि रही, व्यक्तिगत जीवन के असंतोष ने उस ओर उन्हें और भी मोड़ दिया। छायावादी पन्त से प्रभावित होने के कारण रहस्य-भावना भी स्वाभाविक रूप से महादेवी की कविताओं में आ गई। रहस्यवाद की प्रायः प्रत्येक प्रमुख मान्यतायें महादेवी की कविताओं में मुखर हैं। महादेवी को अज्ञात की उस प्रेममय सत्ता में दृढ़ विश्वास है जो रहस्यवाद का प्रथम सोपान माना जाता है—

कैसे कहती हो सपना है
अलि ! उस मूक मिलन की बात ?

उस अज्ञात के साथ महादेवी ने प्रिय-प्रेयसी का, पति-पत्नी का मधुर संबंध स्थापित कर लिया है।

प्रिय चिरंतन है सजनि !
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं !!

लेकिन उसके वियोग में—

यह दुख का राज्य अनन्त रहेगा निश्चल-सा !

लौकिक प्रेम में जिस प्रकार प्रिय का रूप-वर्णन होता है, उसी भाँति रहस्यवाद में भी—

सजनि तेरे दृग बाल
चकित-से विस्मित-से दृग बाल

---

१. साहित्य दर्शन—शचीरानी गुर्टू।

२. महादेवी की रहस्य-साधना—विश्वम्भर 'मानव'

प्रेमपात्र के साथ ही प्रेममय भी है। वह भी मिलन के लिए आकुल रहता है। वह बुलाता है, सुरभि बन थपकियाँ देता है और प्रेमिका की अलसाई आँखों को खोलने का उपक्रम करता है। कभी वह संध्या-दूती को मनाने के लिए भी भेजता है—

नव इन्द्र धनुष-सी चीर, महावर अंजन ले
अलि-गुंजित मीलित पंकज, नूपुर रुन-झुन ले
फिर आई मनाने सांझ, मैं बेसुध मानी नहीं !

इसके साथ ही महादेवी के रहस्यवाद की साधिका में सुन्दर गर्व भी है, मान और आत्म-सम्मान के भाव भी है। महादेवी की अपनी विशेपता है कि उन्होंने साधिका की महत्ता और सम्मान की भी व्यंजना की है—

मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्यलोक को व्रीडा
उनके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा ?
उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन
उनमें अनंत करुणा है
मुझमें असीम सूनापन !

स्पष्टत: मीरा के रहस्यवाद में यह आप नहीं पा सकेंगे। मीरा भक्तिन है, वह सगुण की पुजारिन है, पर उसमें भाषा की सजधज और कल्पना की बारीकी नहीं। महादेवी रहस्यवादिनी है, निर्गुण की उपासिका है, भाषा की अच्छी कवयित्री है। रवीन्द्र के गीतों को भाव-तीव्रता है, पर वेदना की प्रभावान्विति नहीं। प्रसाद, पंत, निराला और छाया-वाद के अनेक पथिक रहस्यवाद के पथ पर चले थे। प्रसाद, पंत, निराला सभी पीछे चलकर रहस्यवाद से विमुख हो गए। महादेवी ही सदा रहस्यवादिनी रहीं ! "और आज तो किसी के दो चरण ही गहनतम देश को पार करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। उसकी आँखें आँसू में डूबी हैं, पर उसके हृदय में अगाध आशा है, उसके हाथों में है निष्कंप, अक्षय आलोक-प्रदीप !"[1]

श्रीमती वर्मा के अलवम में प्रकृति की रूपराशि के अनेक सुन्दर चित्र भी सज्जित हैं। कुछ उदाहरण देखिये—

कनक-से दिन मोती-सी रात
सुनहली साँझ, गुलाबी प्रात
मिटाता रँगता बारम्बार
कौन जग का वह चित्राधार ?

१. महादेवी की रहस्य-साधना—विश्वंभर 'मानव'।

और उस अज्ञात प्रियतम का रूप-वर्णन देखिए—

तेरी आभा का कण नभ को
देता अगणित दीपक-दान
दिन को कनक-राशि पहनाता
विधु को चाँदी का परिधान !

उस प्रिय के रूप-सौन्दर्य का और वर्णन कवयित्री की सामर्थ्य-सीमा के बाहर की बात है क्योंकि स्पष्टतः :—

मैंने देखा उसे नहीं—
पदध्वनि है केवल पहचानी !

प्रिय-पात्र के पास पत्र लिखने की परिपाटी पुरानी है किन्तु रहस्यवादिनी महादेवी अपने प्रिय को पत्र लिखे तो क्यों ? वह तो उन्हीं में खो गया है, अब कहाँ और किसे सन्देश भेजा जाये :—

अलि कहाँ सन्देश भेजूँ
मैं किसे सन्देश भेजूँ
नयन-पथ से स्वप्न में मिल
प्यास में घुल, साध में खिल
प्रिय मुझी में खो गया
अब दूत को किस देश भेजूँ ?

रहस्यवादी के भी प्रिय के कभी मिलन होते हैं। उसे कभी लगता है कि कोई उसे बुलाता है, कभी कोई थपकियाँ देकर सुलाता है, कभी कोई अलसाई आँखों को खोल जाता है। कभी-कभी हृदय के अन्दर ही प्रिय की अनुभूति होने लगती है—

कौन तुम मेरे हृदय में ?

किन्तु महादेवी के काव्य-जीवन में प्रत्यक्ष मिलन की स्थिति कभी नहीं आई। सपने में कोई आया था, आँखों को खोल कर चुपचाप चला गया.......... लेकिन जागने पर अब........

याद में उन उँगलियों के
हैं मुझे पर युग बिताने !

और जाने कब से उसकी प्रेमिका अपनी नयन की नीलम-तुला पर उसके प्रेम को अपने आँसुओं के मोती से तौल रही है—

नयन की नीलम तुला पर मोतियों से प्यार तोला
कर रहा व्यापार कब से मृत्यु से यह प्राण भोला

आशा है, महादेवी की अगली रचना में प्रेमिका अपने आँसुओं से, अपनी वेदना से, अपने 'सजल मुख देख लेते, यह करुण मुख देख लेते' से अभिभूत कर प्रियतम को अवश्य पा लेगी !

महादेवी के रहस्यवाद की एक अद्भुत मौलिकता इस बात में है कि उनका प्रिय

प्रेमपात्र के साथ ही प्रेममय भी है। वह भी मिलन के लिए आकुल रहता है। वह बुलाता है, सुरभि बन थपकियाँ देता है और प्रेमिका की अलसाई आँखों को खोलने का उपक्रम करता है। कभी वह संध्या-दूती को मनाने के लिए भी भेजता है—

> नव इन्द्र धनुष-सी चीर, महावर अंजन ले
> अलि-गुंजित मीलित पंकज, नूपुर रुन-झुन ले
> फिर आई मनाने सांझ, मैं बेसुध मानी नहीं !

इसके साथ ही महादेवी के रहस्यवाद की साधिका में सुन्दर गर्व भी है, मान और आत्म-सम्मान के भाव भी है। महादेवी की अपनी विशेषता है कि उन्होंने साधिका की महत्ता और सम्मान की भी व्यंजना की है—

> मेरी लघुता पर आती
> जिस दिव्यलोक को व्रीडा
> उनके प्राणों से पूछो
> वे पाल सकेंगे पीड़ा ?
> उनसे कैसे छोटा है
> मेरा यह भिक्षुक जीवन
> उनमें अनंत करुणा है
> मुझमें असीम सूनापन !

स्पष्टतः मीरा के रहस्यवाद में यह आप नहीं पा सकेंगे। मीरा भक्तिन है, वह सगुण की पुजारिन है, पर उसमें भाषा की सजधज और कल्पना की बारीकी नहीं। महादेवी रहस्यवादिनी है, निर्गुण की उपासिका है, भाषा की अच्छी कवयित्री है। रवीन्द्र के गीतों को भाव-तीव्रता है, पर वेदना की प्रभावान्विति नहीं। प्रसाद, पंत, निराला और छाया-वाद के अनेक पथिक रहस्यवाद के पथ पर चले थे। प्रसाद, पंत, निराला सभी पीछे चलकर रहस्यवाद से विमुख हो गए। महादेवी ही सदा रहस्यवादिनी रहीं ! "और आज तो किसी के दो चरण ही गहनतम देश को पार करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। उसकी आँखें आँसू में डूबी हैं, पर उसके हृदय में अगाध आशा है, उसके हाथों में है निष्कंप, अक्षय आलोक-प्रदीप !"[1]

श्रीमती वर्मा के अलबम में प्रकृति की रूपराशि के अनेक सुन्दर चित्र भी सज्जित हैं। कुछ उदाहरण देखिये—

> कनक-से दिन मोती-सी रात
> सुनहली सांझ, गुलाबी प्रात
> मिटाता रंगता बारम्बार
> कौन जग का वह चित्राधार ?

---

१. महादेवी की रहस्य-साधना—विश्वंभर 'मानव'।

अथवा—

गुलालों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप
विहँसती संध्या भरी सुहाग
दृगों से झरता स्वप्न - पराग
उसे तम की वह एक झकोर
उड़ाकर ले जाती किस ओर ?

इससे स्पष्ट विदित है कि प्रकृति के प्रति महादेवी की दृष्टि बड़ी ही ऐश्वर्यमयी है। इतनी सुन्दर भाषा, इतनी सूक्ष्म कल्पना और साधना के साथ साथ प्रकृति के ऐसे आकर्षक अद्भुत चित्र शायद ही अन्यत्र मिलेंगे। अन्य रहस्यवादियों की तरह महादेवी प्रकृति को बाधक नहीं मानती। प्रकृति भी तो उसी प्रिय के प्रेम में व्याकुला है, व्यथिता है। अतः कवयित्री प्रकृति को अपनी तरह पाकर उससे तादात्म्य की अनुभूति करती है। प्रकृति महादेवी की कविताओं में जड़ नहीं है। महादेवी ने उसे साकार मानवी का रूप और हृदय दिया है—

ओ विभावरी
चाँदनी का अंगराग
माँग में सजा पराग
रश्मितार बाँध मृदुल
चिकुर - भार री !
× ×
लेकर मृदु उर्म्मिवीन
कुछ मधुर करुण नवीन
प्रिय की पदचाप मदिर
गा मलार री !!

और कहीं कवयित्री ने प्रकृति से उपदेश भी ग्रहण किया है। जैसे एक उदाहरण पर्याप्त है—

विकसते मुरझाने को फूल उदित होता छिपने को चंद
शून्य होने को बढ़ते मेघ दीप जलता होने को मंद
यहाँ किसका अनन्त यौवन !

प्रकृति के व्यापारों से Mathew Arnold ने भी उपदेश ग्रहण किया था। श्री रामनरेश त्रिपाठी जी ने भी प्रकृति का उपदेशात्मक रूप यों प्रस्तुत किया है—

कोमल मलय पवन घर - घर में सुरभि बाँट आता है
शस्य सींचने घन जीवन धारण कर नित आता है
रवि जग में शोभा सरसाता, सोम सुधा बरसाता
सब है लगे कर्म में कोई निष्क्रिय दृष्टि न आता !

किन्तु महादेवी के प्रकृति-चित्रों में कहीं-कहीं अत्यधिक कल्पनाशीलता दुर्बोध और क्लिष्ट हो गई है। जैसे एक नमूना नीचे की पंक्तियों में देखिये—

निश्वासों का नीड़ निशा का बन जाता जब शयनागार
लुट जाते अभिराम छिन्न मुक्तावलियों के वन्दनवार !

महादेवी के दार्शनिक दृष्टिकोण का कुछ अंदाज इन पंक्तियों से ही लगाया जा सकता है—

सखे ! यह है माया का देश क्षणिक है मेरा-तेरा संग
यहाँ मिलता काँटों में बंधु सजीला सा फूलों का रंग !

महादेवी की दार्शनिक विचार-धारा पर मुख्यत: वैदिक ग्रंथों, उपनिषद् एवं बौद्ध-दर्शन का प्रभाव पड़ा है। वैदिक साहित्य का महादेवी पर प्रभाव उनके द्वारा अनूदित वेद की ऋचाओं में प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। उपनिषद् के अद्वैतवाद के साथ ही बौद्ध दर्शन के दु:खवाद से भी महादेवी प्रभावित हैं। महादेवी ने माना है कि आत्मा-परमात्मा एक है — मैं तुमसे हूँ एक, एक है जैसे रश्मि-प्रकाश ! साथ ही, महादेवी का विश्वास है कि ब्रह्म ही जीव की उत्पत्ति और विनाश का कारण है—

सिंधु को क्या परिचय दें देव बिगड़ते बनते वीचि विलास
क्षुद्र है मेरे बुद्बुद् प्राण तुम्हीं से सृष्टि तुम्हीं में नाश !

सृष्टि के निर्माण के संबंध में महादेवी की उक्ति है कि—

हुआ त्यों सूनेपन का भान प्रथम किसके उर में अम्लान
और किस शिल्पी ने अनजान विश्व-प्रतिमा कर दी निर्माण !

वेदना के आँसुओं से साधिका जब साध्य को पा लेती है और उसे जब ज्ञान हो जाता है कि प्रिय और प्रेयसी एक ही हैं तब दुख-सुख बन आता है, विरह मिलन हो जाता है—

विरह की घड़ियाँ हुई अलि मधुर मधु की यामिनी-सी तब वह स्थिति आती है जब कवयित्री गा उठती है—

बीन भी हूँ, मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ
और कहती है—
चित्रित तू, मैं हूँ रेखाक्रम ; तू मधुर राग, मैं स्वरसंगम

अंग-प्रत्यंग पुलकित हो जाते हैं। साधिका उस मधुमती भूमिका में पहुँच जाती है जहाँ प्रतिपल नूतन स्पन्दन से मन-प्राण बेसुध हो जाते हैं—

श्रवण नयनमय नयन श्रवणमय आज हो रही कैसी उलझन !
रोम-रोम में होता री सखि ! एक नया उर का-सा स्पन्दन !!

महिला महादेवी की कविताओं में महिला-सुलभ साज-सज्जा स्वाभाविक ही है। महादेवी की अनुभूति साथ साथ उनकी अभिव्यक्ति भी अत्यंत उत्कृष्ट है। महादेवी ने खड़ी बोली में कवितायें लिखी हैं। उनकी भाषा में कोमलता है, संगीत है लय और प्रवाह है। मीरा में महादेवी से भी बढ़कर सच्ची प्रणयवेदना क्यों न हो, किन्तु महादेवी में काव्यकला की जो बारीकियाँ हैं, वे निश्चय मीरा में प्राप्य नहीं। रचनाविधान की दृष्टि से महादेवी

की सारी पद्य-रचनायें गीतिकाव्य के अन्तर्गत ही आयेंगी। प्रत्येक गीत अपने में पूर्ण है। महादेवी के गीतों की अद्भुत विशेषता है कि उनमें कला की साज-सज्जा के अलावा मार्मिकता भी है, भावों की तीव्रता और एकतानता भी।

महादेवी की भाषाशैली मे संगीत, कोमलता और माधुर्य की अनुपम त्रिवेणी है। भाषा कही भी शुष्क और शिथिल नही। प्रसाद और माधुर्य गुण इनकी भाषा की अपनी विशेषतायें हैं। पुनरुक्ति, अश्लीलत्व आदि दोषों से भाषा सर्वथा मुक्त है। कल्पना की रंगीनी के दर्शन भी यत्र-तत्र-सर्वत्र हो जाते हैं। सुन्दर कोमल शब्द-चयन के एक उदाहरण देखिये—

सकुच सलज खिलत शेफाली अलस मौलश्री-डाली-डाली
बुनते नव प्रवाल कुंजों में रजत श्याम तारों से जाली!

महादेवी की भाषा मे प्रतीकों की भी अत्यंत ही सुन्दर योजना हुई है। नीचे की पंक्तियां प्रमाण हैं—

उर तिमिरमय घर तिमिरमय चल सजनि दीपक बार ले
राह मे रो रो गये हैं रात और विहान तेरे
काँच से टूट पड़े यह स्वप्न, भूलें, मान तेरे

घर, दीपक आदि क्रमशः जीवन, और प्रेम में प्रतीक-रूप मे नियोजित हुये हैं। उसी प्रकार नीचे के उदाहरण में भी सौरभ और कलिका क्रमश. जीव और ब्रह्म के प्रतीक के लिए आए हैं—

वह सौरभ हूँ मैं जो उड़कर
कलिका में लौट नही पाता

भाषा मे लाक्षणिकता का भी प्राचुर्य है। आहें सोतीं, आशा मुस्काती जैसी पदावलियों की कमी नही है। इस प्रकार कुल मिलाकर महादेवी जी की भाषा अत्यंत परिष्कृत, मधुर, कोमल और सर्वथा काव्योचित है। हाँ, 'अभिलाषायें', 'अधार' और 'ज्योती' सरीखे व्याकरण-नियमोल्लंघन के भी दृष्टांत आप पायेंगे। हीले, नैन आदि ब्रजभाषा के शब्द भी प्रयुक्त हुए है। किन्तु, फिर भी महादेवी का कला-पक्ष अत्यंत परिनिष्ठित और उत्कृष्ट है, इसमें सन्देह नही। इस दृष्टि से वे सूर और बिहारी के समकक्ष स्थान पाने की अधिकारिणी है। महादेवी शब्द-शिल्प की कुशल कलाकार हैं। और प्रकाशचंद्र गुप्त के अनुसार वास्तव में शब्दों के इस मंदिर आसन से बेसुध पाठक ध्वनि चमत्कार मे लीन रह जाता है। इन शब्द चित्रों के पीछे क्या है, वह नहीं पूछता।"[1]

अलंकार भी महादेवी की कविताओं में प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा, विरोधाभास, ध्वन्यार्थ व्यंजन, मानवीकरण आदि अनेक अलंकारों से कविता-कामिनी सज उठी है। रूपक का अधिकरण आरोप इन पंक्तियों में देखिये—

---

१. नया हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि — प्रकाशचंद्र गुप्त, पृष्ठ १२२।

(क) चल चितवन के इन गुना
(ख) पीड़ा का साम्राज्य बस गया
(ग) प्राणों का दीप जलाकर

इसके अलावे वीप्सा का उदाहरण देखिये—

(का) छिप - छिप किरणें आती जब
(ख) झिप - झिप आँखें कहती हैं
(ग) पुलक - पुलक उठना सरिता उर
खुल - खुल पड़ते सुमन सुधा भर !

अंग्रेजी अलंकारों के भी उपयोग देखिए—इन दीवानी चोटों में चोट दीवानी नहीं है, चोट खानेवाली नायिका विरह की चोट के कारण दीवानी है। यहां Transferred Epithet नामक अंग्रेजी अलंकार है।

नादार्थ व्यंजना (Onomatopocia) नामक अंग्रेजी का अन्य अलंकार भी इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

तरंगें उठी पर्वताकार
भयकर करती हाहाकार
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास
तरी का करते हैं उपहास
हाथ से गई छूट पतवार
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

उपमा भी महादेवी को खूब पसंद है। उन्होंने नये उपमान भी ढूँढे हैं। जैसे—

कनक - से दिन, मोती - सी रात

रूपक का भी एक नमूना लीजिए—

तू स्वप्न - सुमनों से सजा तन

नीचे की पक्ति में यमक अलंकार है —

जगती जगती की भूक प्यास !

यहाँ दीपक अलकार का भी एक नमूना दिया गया है—

शूल जिसने फूल छू चंदन किया संताप !

इस प्रकार अलंकार उनकी कविताओं में विपुल राशि में प्रयुक्त हुए हैं।

समग्र रूप से विचार करने पर यही कहना पड़ता है कि हिन्दी कवयित्रियों के बीच महादेवी का विशेष महत्त्व और स्थायी स्थान है। पर भविष्य के पाठक उन्हें वेदना के लिए गौरव देंगे या कला-कौशल के लिए कहा नहीं जा सकता। लेकिन महादेवी के गीतों का सबसे बड़ा आकर्षण है संयमित-सज्जित शैली में प्रणय-वेदना की मार्मिकता। अंग्रेज-कवि कीट्स के संबंध में एक बार G. H. Crump नामक विद्वान् आलोचक ने कहा था—"Out of keats's suffering was born his noblest poetry." महादेवी के विषय में भी वही बात कही जा सकती है।

छायावादी परम्परा के कतिपय अन्य आधुनिक कवि

साहित्यिक इतिहास के अध्येताओं से यह बात कदापि छिपी नहीं रह सकती कि कभी किसी साहित्यिक परम्परा का विकास होता है और कभी वह निर्बल भी बन जाता है। किन्तु ऐसा कह देना कि अमुक साहित्यिक धारा मर गई निश्चय ही भ्रामक एवं मूलतः त्रुटिपूर्ण है। साहित्य की कोई भी सशक्त परम्परा, काव्य की कोई भी बल-संवलित धारा मरती नहीं। कभी वह किसी युग के साहित्य के बाह्य स्तर पर पुष्ट रूप में दृष्टिगत होती है, और कभी मानव शरीर की अन्तरात्मा की भांति स्थूल दृष्टि से प्रच्छन्न होकर बहती है। पाश्चात्य साहित्य में 'क्लासिसिज्म' और 'रोमान्टिसिज्म' नामक दो शाश्वत साहित्यिक परम्पराएँ हैं। अंग्रेजी के साहित्यिक इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह पता चलता है कि इन दोनों धाराओं में कभी किसी का 'शव-परीक्षा' करने की नौबत नहीं आई। यदि एलिजाबेथ के युग के साहित्य में रोमान्टिक भाव-स्फुरणा का आधिक्य था तो ऑगस्टन-काल में क्लासिकल साहित्यिक परम्परा का उत्थान हुआ; और यदि रोमान्टिक पुनर्जागरण-काल में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति साहित्य में पुष्ट होकर उभरी तो आधुनिक युग के टी० एस० इलियट आदि जैसे प्रतिभावान साहित्यिक युगान्तरकारी लेखकों की रचनाओं में क्लासिकल मनोवृत्ति का ही बाहुल्य है। किन्तु क्या यह कहा जा सकता है कि ऐलिजाबेथन युग अथवा रोमान्टिक पुनर्जागरण-काल में क्लासिकल साहित्यिक परम्परा पूर्णतः प्राणहीन हो गई थी, मृत्यु हो चुकी थी ? क्या यह धारणा उचित होगी कि ऑगस्टन-युग में रोमांटिक साहित्य-परम्परा पूर्णरूपेण ध्वस्त होकर विस्मृति के अतलतल में विलीन हो चुकी थी ? मेरी दृष्टि में इस प्रकार की विचार-धाराएँ मनुष्य को उचित दिशा में न ले जाकर उसे किसी अरण्य-कूल पर पहुँचा देती हैं जहाँ उचित मार्ग-ज्ञान का कोई भी साधन उपलब्ध नहीं रह जाता। उदाहरण के लिए हम रोमान्टिक पुनर्जागरण-काल के मूर्धाभिषिक्त कवि कीट्स को ले सकते हैं। इतना तो प्रायः सभी निर्विवाद रूप से मानते हैं कि कीट्स अँग्रेजी रोमान्टिक परम्परा के मूर्धन्य कवियों में थे और उन्होंने इस काव्य धारा को काफी बल दिया। किन्तु कदाचित् इस बात को जान कर कि कीट्स की कविताओं में रोमान्टिक प्रवृत्ति के आधिक्य के साथ साथ क्लासिकल प्रवृत्ति का भी गठबंधन है, बहुत से साहित्यिक अध्येता आश्चर्य चकित रह जाएँगे। किन्तु इस मतवाद की सत्यता की स्थापना दो बातों को विचार-परिधि में समेटने से हो जाती है। सर्वप्रथम तो यह कि कीट्स ने भी अपनी अधिकांश काव्य-रचनाओं में 'हिरोइक कप्लेट' (अँग्रेजी का एक खास छन्द जिसे ऑगस्टन युग के कवि सर्वदा तथा प्रत्येक परिस्थिति में अत्यावश्यक रूप से व्यवहृत करते थे) का प्रयोग किया है। दूसरी प्रमुख बात यह है कि कीट्स की रचनाओं में पुराने रोमन और ग्रीक लोक-कथाओं के संकेत पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं जो मिल्टन की विशेषता थी। इन दोनों तत्वों के अध्ययन से हम निश्चित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि

मूलतः रोमान्टिक प्रवृत्ति का कवि होते हुए भी, कीट्स में क्लासिकल प्रवृत्ति का भी समावेश कुछ मात्रा में अवश्य था। इसी प्रकार यदि बाइरन ने छन्द के 'क्षेत्र में 'हिरोइक कप्लेट' का त्याग कर अपनी रोमान्टिक मनोवृत्ति का परिचय दिया तो दूसरी ओर व्यंग्य-पूर्ण कविता (Satire) की रचना कर अपने क्लासिकल काव्य-परम्परा में सम्मिलित होने का संकेत भी दिया। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी साहित्यिक धारा कभी मृत नहीं हो पाती। वह तो वह पयस्विनी है जो कभी वेगवत् रूप में प्रवाहित होती है और कभी विपरीत परिस्थितियों की सिकता-राशि में विरल एवं क्षीणकाय हो जाती है। कभी-कभी मार्ग पर फैले तृण-तरुओं की संकीर्णता में वह सहजता से दिखाई भी नहीं दे पाती। किन्तु, भ्रमवश यह कह देना कि उसकी मृत्यु हो गई-अथवा वह साहित्यिक परम्परा अस्तित्वहीन हो गई, कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। ऐसा कथन स्वयं आलोचक-मस्तिष्क के संतुलन-राहित्य का निश्चय प्रतीक बन जाता है। हिन्दी के छायावाद के सम्बन्ध में भी कुछ आलोचकों ने इसी प्रकार की भ्रामक धारणाओं का प्रचार करना चाहा था। किन्तु, जैसा कि "छायावाद जिन्दा है!" शीर्षक निबन्ध मे संकेतित है, इस सशक्त काव्य-परम्परा की अभी मृत्यु नहीं हुई है और मेरा तो यह विश्वास है कि उसकी मृत्यु कभी होगी ही नहीं। छायावाद के पूर्णोन्मेष का जमाना बीत चुका है, यह सही है; किन्तु छायावाद पूर्णतः विलीन हो गया—यह मुझे कदापि मान्य नहीं। इस निबन्ध की छोटी परिधि में छायावाद के उन चार शीर्षस्थ कवियों को छोड़कर, जिनकी पर्याप्त चर्चा पिछले निबन्धों में हो चुकी है, यहाँ मैंने उन अन्य कवियों के परिचय देने की चेष्टा की है जो पूर्णतः छायावादी कवि नहीं भी कहे जायँ तो इतना तो स्पष्ट रूप से कहा जायगा कि उनकी काव्य-रचनाओं में ऐसी प्रवृत्तियाँ अधिक मात्रा में है जिसके कारण उन्हें छायावादी काव्य-परम्परा की परिधि में समेटा जा सकता है। आत्मनिष्ठता, प्रकृति-प्रेम, चित्रात्मकता, लाक्षणिक अभिव्यंजना-शैली, मानवीकरण अलंकार, ध्वन्यात्मकता, सूक्ष्मता, सौन्दर्य-चेतना, वेदना, प्रेम आदि कतिपय ऐसी छायावादी काव्य-प्रवृत्तियाँ है जो आज भी मृत नहीं हुई है और जिनका अभिव्यंजन आज भी कवियों द्वारा किया जा रहा है। इस स्थल पर ऐसा आक्षेप किया जा सकता है कि उपर्युक्त काव्य-तत्त्व केवल छायावादी ही नहीं, उनका प्रयोग छायावाद के आविर्भाव के बहुत पूर्व संस्कृत भक्ति-कालीन कविता तथा घनानन्द, रत्नाकर आदि कवियों की रचनाओं में भी हो चुका है। किन्तु मेरी निजी धारणा है कि आधुनिक हिन्दी-काव्य-साहित्य मे इन प्रवृत्तियों का विस्फोट छायावादी कवियों की रचनाओं में ही सर्वप्रथम हुआ और उसके बाद से ही उनका अत्यधिक प्रयोग काव्य में होना प्रारम्भ हुआ। इसी कारण मैंने इन प्रवृत्तियों को, आधुनिक युगीन काव्य की पृष्ठभूमि में, छायावादी ही माना है, और इस निबन्ध में इसी विचार-बिन्दु से अन्य कवियों की रचनाओं पर दृष्टिपात किया गया है।

पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी को छोड़कर छायावादी परम्परा के दूसरे कवि श्री रामकुमार वर्मा जी है। इनकी कविताओं में भी, छायावादियों की भाँति ही, सूक्ष्म

प्रकृति-पर्यवेक्षण की मनोवृत्ति, आत्मनिष्ठता एवं अभिव्यंजना-शैली में लाक्षणिकता की अधिकता है। इनके काव्य में भी मानवीकरण अलंकार, चित्रात्मकता एवं सूक्ष्मता के दर्शन होते हैं। कवि की आत्मनिष्ठता की प्रगल्भता इस बात से प्रतिबिम्बित है कि कवि प्राकृतिक अवयवों एवं उपादानों में भी अपनी ही मनोदशाओं की छाया देखता है। नीचे की पंक्तियों में—

ये शिलाखंड काले कठोर वर्षा के मेघों से कुरूप,
दानव से बैठे, खड़े या कि अपनी भीषणता में अनूप।
ये शिलाखंड मानो अनेक पापों के फैले हैं समूह,
या नीरसता के चिर निवास के लिए रचा है एक व्यूह।

पर्वत-प्रदेश के वर्णन में कवि ने विभिन्न उपमाओं द्वारा जहाँ एक ओर उनमें प्राण-स्पन्दन की भावना को प्रकटित किया है वहाँ दूसरी ओर चित्रात्मक रूप में उस दृश्य का वर्णन भी। शिलाखंडों में जीवन-स्पन्दन के आभास को देखकर यदि पन्त की निम्नलिखित पंक्तियों की याद आती है—

"पावस ऋतु थी पर्वत-प्रदेश,
पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।
मेघलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्रदृग-सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार-बार
नीचे जल में निज महाकार।
जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण-सा फैला है विशाल।"

तो उन्हीं शिलाखंडों को उपमा दानव से दी गई देखकर अँग्रेजी के प्रसिद्ध रोमान्टिक कवि वर्डस्वर्थ के निम्नांकित काव्यांश की स्मृति मानस-पटल पर खिंच आती है—

".........from behind that craggy steep till then
The horizon's bound, a huge peak, black and huge,
As if with voluntary power instinct
Upreared its head. I struck and struck again,
And growing still in stature the grim shape
Towered up between me and the stars, and still
For so it seemed with purpose of its own
And measured motion like a living thing,
Strode after me................................"

"निशा का मौन अम्बर" अपनी क्रूरता के कारण कवि के ध्यान को आकृष्ट करता है और उसकी वेदनायुक्त वाणी आप-से-आप फूट पड़ती है—

"और पत्ते का पतन जो हो गया अचर से चर।
देखकर मैंने कहा अ: यह निशा का मौन अंबर
शांत है जैसे बना है साधु संत निरीह निश्छल
किन्तु कितने भाग्य इसने कर दिए हैं नष्ट निर्बल।"

ऊपर के काव्यांश मे निशा-अम्बर के कट्टर कसाई-से रूप का वर्णन कवि ने किया है। छायावाद पर उर्दू-कवियो का जो प्रभाव पड़ा वह इस उद्धरण से बहुत दूर तक स्पष्ट हो जाता है। फ़लक की संगदिली की भावना उर्दू-कवियों को चिरप्रिय रही है जिसका स्पष्ट संकेत रामकुमार वर्मा जी की पक्तियों में दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार स्वानुभूति के प्रकाशन, अभिव्यंजना की सूक्ष्मता एवं चित्रात्मकता, प्रकृति-प्रेम आदि छायावादी काव्य-प्रवृत्तियाँ रामकुमार वर्मा जी की रचनाओं मे बहुत अधिक मिलती हैं। छायावादियों मे जिज्ञासा की भावना बहुत अधिक पायी जाती है और उन्हीं की भाँति रामकुमार वर्मा जी भी निम्नलिखित पंक्तियों मे जिज्ञासाकुल प्रतीत होते हैं—

"इस सोते संसार बीच सजकर धजकर रजनी बाले !
कहाँ बेचने ले जाती हो ये गजरे तारो वाले ?"

उनके काव्य मे छायावादी काव्य-प्रवृत्ति के साथ-साथ रहस्यवाद के कुछ प्रभाव भी यदाकदा यत्र-तत्र देखने को मिल जाते हैं। श्री रामकुमार वर्मा जी की छायावादी और रहस्यवादी रचनाएँ 'चन्द्रकिरण', 'रूपराशि', 'अंजलि' आदि कविता-संग्रहों में मिलती हैं।

श्री रामकुमार जी वर्मा के पश्चात् श्री भगवतीचरण वर्मा का ही नाम सहज ही स्मृति-पट पर अंकित हो जाता है। हिन्दी-काव्य में प्रगतिवाद के प्रवर्त्तकों में श्री वर्मा जी का नाम अगली पंक्ति मे लिया जाता है। उनकी 'भैंसागाड़ी' शीर्षक कविता में प्रगतिवादी प्रवृत्ति का ही सन्निवेश है। किन्तु भगवतीचरण वर्मा भी, प्रगतिवाद के प्रवर्त्तकों में से एक होते हुए भी, पूर्णतः प्रगतिवादी नहीं थे। उनकी रचनाओं में भी छायावादी काव्य-परम्परा का निर्वाह बहुत दूर तक हुआ है और उनकी इस प्रकार की रचनाएँ 'मधुकण', 'प्रेम-संगीत' आदि काव्य-संग्रहों में संकलित होकर हिन्दी-काव्य-प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित हो चुकी हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा जी की कविताओं में प्रेम की अनुभूति की बहुत ही सरस एवं कोमल अभिव्यजना छायावादी शैली में हुई है। पन्त ने 'भावी पत्नी के प्रति' कविता में यदि अपनी प्रेयसि का काल्पनिक चित्र खींचा, तो भगवतीचरण वर्मा जी ने भी नीचे की पंक्तियों में कुछ वैसा ही प्रयास किया है—

"भरे हुए सूनेपन के तम में विद्युत् की रेखा-सी,
असफलता के तन पर अंकित तुम आशा की लेखा-सी;
आज हृदय में खिंच आई हो तुम असीम उन्माद लिए,
जब कि मिट रहा था मैं तिल-तिल सीमा का अपवाद लिए।"

अपनी प्रेयसी का असाधारण सौन्दर्य कवि ने नीचे की पंक्तियों में खींचने की चेष्टा की है—

शत-शत मधु के शत-शत सपनों की पुलकित परछाईं-सी,
मलय-विचुम्बित तुम ऊषा की अनुरंजित अरुणाई-सी।

इन उद्धरणों में उपमानों के सहारे अपने हृदय की सूक्ष्म अनुभूतियों को प्रकट करने की चेष्टा सहज ही परिलक्षित है। प्रकृति के रमणीक दृश्यों से उपमानों को जुटाकर कवि ने अपनी प्रिया का सौंदर्य-वर्णन किया है। इसे हम निश्चयपूर्वक छायावादी प्रवृत्ति ही कह सकते हैं। सौंदर्य के प्रति इस प्रकार के आकर्षण वा अतिरेक छायावादी रचनाओं में बहुत

अधिक मात्रा में उपलब्ध है। कवि अपने प्रेम मे किसी प्रकार का प्रतिबंध नही चाहता। उसकी प्रेमिका मानिनी है, किन्तु जब वसंतागमन होता है, चारों ओर भ्रमरों का गुंजन छा जाता है और दिशि-दिशि में सौरभ-स्निग्ध हवा प्रवाहित होती है तब कवि का हृदय मिलन की आकांक्षा से भर जाता है। वह अपनी प्रेयसी से मान करना छोड़ देने की आग्रह करता हुआ कह उठता है—

"आज सौरभ से भरा उच्छ्वास है, आज कंपित भ्रमित सा वातास है;
आज शतदल पर मुदित सा झूलता, कर रहा अठखेलियाँ हिमहास है;
लाज की सीमा प्रिये तुम तोड दो, आज मिल लो, मान करना छोड़ दो।"

डॉ० केसरीनारायण जी शुक्ल ने कवि की उपर्युक्त पंक्तियो मे स्वच्छंद प्रेम (Romantic love) के संकेत देखें हैं। मेरी समझ में यह प्रेमाकुल हृदय की आत्मानुभूति का सहज प्रकाशन है। इन पंक्तियों मे छायावादी अभिव्यंजना-शैली की छाप स्पष्ट है। प्रसाद की नायिका भी मधुमालतियों की विलासमयी निद्रा को देखकर प्रिय-मिलन की प्राप्ति की आकांक्षा से व्याकुल हो उठती है। किन्तु उसकी आकांक्षा प्रतीक्षा में परिणत हो जाती है—

'मधुमालतियाँ सोती थीं कोमल उपधान सहारे।
मैं व्यर्थ प्रतीक्षा लेकर गिनती अम्बर के तारे।"

अत: हम देखते है कि प्रेम की तीव्र अनुभूति का प्रकाशन कवि ने अत्यंत ही सूक्ष्मता के साथ अपनी अनेक रचनाओं मे किया है। ऐसी रचनाओं को छायावादी काव्य-परम्परा में सम्मिलित करने मे हमे कोई संकोच नहीं। कवि ने बाद में प्रगतिवादी काव्य-शैली की उफान को देखकर अपनी काव्य-दिशा में भी परिवर्त्तनों को समाविष्ट किया है; तथापि किसी मननशील साहित्यिक अध्येता की दृष्टि से यह किसी भी स्थिति में प्रच्छन्न नहीं रह सकता कि छायावाद की ओर भी उनका यथेष्ट झुकाव था। इसी कारण प्रगतिवाद के प्रवर्त्तकों मे से अग्रगण्य होने पर भी उन्हें छायावाद की काव्य-धारा की एक सशक्त तरंग मानने में किसी को किसी प्रकार की हिचक का अनुभव नही करना चाहिए। छायावादी कवियों की वेदना एवं निराशा इनकी रचनाओं में भी परिलक्षित हैं—

"अब असह् अबल अभिलाषा का है सबल नियति से संघर्षण।
आगे बढ़ने का अमिट नियम, पग पीछे पड़ते है प्रतिक्षण।।
मैं एक दया का पात्र अरे, मै नही रंच स्वाधीन प्रिये।
हो गया विवशता की गति में बँधकर हूँ मै गतिहीन प्रिये।।
क्यों रोती हो मिटना ही है, है एक अंत मिटने का।
है प्रेम भूल सपने की, उस सुख-सपने को भूलो।।"

उपर्युक्त पक्तियों में वेदना की कसक-भरी दर्दीली ध्वनि तो है ही, साथ-ही-साथ अभिव्यंजना की लाक्षणिकता और वक्रता भी। मंद-मंद चलने को कवि 'विवशता की गति' कहकर सम्बोधित करता है और उसके लिए 'है प्रेम भूल सपने की। इस भाँति भगवती-

परण वर्मा जी, इन कविताओं के आधार पर, बहुत आसानी से छायावाद की परम्परा में सम्मिलित किए जा सकते हैं।

छायावादी काव्य-परम्परा के दूसरे अविस्मरणीय कवि श्री जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' जी हैं। इनकी काव्य-साधना से भी छायावाद की कविता काफी प्रोन्नत हुई है। वेदना की तरल अभिव्यंजना, शैशव के प्रति अगाध प्रेम, प्रणयाकुल हृदय की अनुभूतियों की सफल अभिव्यक्ति, सूक्ष्म उपमाओं की प्रचुरता आदि तत्व इनकी कविताओं को सहज ही छायावाद की परम्परा से सम्बद्ध कर देती हैं। कवि का हृदय विश्व-वेदना में तिल-तिलकर जलना नहीं चाहता। वह इस व्यथा-बंधनावृत संसार में जीना नहीं चाहता—

मर - मर कर जीना न पड़े माँ,
ग्लानि - गरल पीना न पड़े!
जीर्ण - हृदय - अंचल को प्रतिपल
रो - रो कर सीना न पड़े!
अरमानों की प्यास बुझाऊँ
ताप तरल पीकर कैसे?
ढोता चलूँ भार साँसों का
जीवन बिन जी कर कैसे?

वह तो एक ऐसे आदर्श संसार में जीने का आकांक्षी है जहाँ वह आत्मानुभूतियों को बिना किसी व्यवधान के ही प्रकाश में ला सके—

"जिऊँ तभी जब विकल विश्व को
व्यथा - व्यालिनी डँसे नहीं!
कपट - दशानन अबल सरलता-
सीता को हर हँसे नहीं!
फँसकर वधिक - जाल में बुलबुल
फूट - फूट रोए न जहाँ!
बिन - बिंध की कलिका रजकण
में टूट - टूट रोए न जहाँ!
जिऊँ, तुम्हें निरखूँ जब हँसते
प्रमुदित प्यार विलोकूँ मैं,
जब न किसी से डरकर उमड़े
आँसू अपने रोकूँ मैं।"

ऊपर के उद्धरणों मे वेदना के आधिक्य के साथ साथ आत्मानुभूति के प्रकाशन की चाह है और साथ ही साथ अपनी संवेदनाओं को विभिन्न उपमाओं के सहारे चित्रात्मक रूप में व्यक्त करने का प्रयास भी। कवि ने शैशव के प्रति अपने अगाध प्रेम की अभिव्यक्ति निम्नलिखित रूप मे की है—

"विगत मेरे शैशव सुकुमार!
सरलता के सजीव आकार!
माधुरी के निरुपम भाण्डार?
विमल जीवन के सुषमा-सार!
उषा के मञ्जुल छवि-आधार!
प्रकृति-वीणा के झंकृत तार!
प्रणय-नीरधि के हँसते ज्वार!
मृदुलता के छविमय शृंगार!
मिटा मेरा विनोद-संसार,
मधुर यौवन-मद मुझ पर ढार!
कहाँ छिप कर बैठा जा आज?
सखे शैशव-सुख के आगार!"

तथा यौवन के प्रहर में भी कवि को शैशव के ही सुख की एक हल्की-सी किरण की चाह है—

लिया निष्ठुर यौवन ने छीन,
बनाया दुखमय जग का दास!
विगत शैशव! उस सुख का एक
छिड़क जा छींटा, आ फिर पास!"

'द्विज' की इन पंक्तियों से पन्त की कुछ पंक्तियाँ हठात् ही हृदय-पट पर खिंच जाती हैं—

चित्रकार! क्या करुणाकर फिर
मेरा भोला बालापन
मेरे यौवन के अंचल में
चित्रित कर दोगे पावन?

कवि 'द्विज' का हृदय जब प्रणयाकुल होता है तब वह अपनी अनुभूतियों की बहुत ही मार्मिक अभिव्यंजना करने में सफल होते हैं। उदाहरणार्थ—

धधकें लपटें उर-अन्तर में तेरे चरणों पर शीश झुकें!
तूफान उठे अंगारों के, उर प्रलय, सृष्टि का स्रोत रुके!
हाँ खूब जला दे रह न जाए अस्तित्व, और जब वे आवें
चरणों पर दौड़ लिपट जानेवाली केवल विभूति पावें!

इनकी तुलना प्रसाद की निम्नलिखित पंक्तियों से कीजिए—

"आह वेदना मिली विदाई!
मैंने भ्रमवश जीवन संचित मधुकरियों की भीख लुटाई।
चढ़कर मेरे जीवन-रथ में, प्रलय चल रहा मेरे पथ में।
मैंने निज दुर्बल पद-बल पर उस हारी होड़ लगाई।"

डॉ० केसरीनारायण शुक्ल ने 'प्रसाद' और 'द्विज' की इन पंक्तियों पर अपने विचार

प्रकट करते हुए ठीक ही लिखा है कि 'इन पंक्तियों में प्रेम की वर्तमान कविता के परिवर्तित रूप का आभास मिलता है। इनके तल में छिपे हुए भावों की तीव्र अनुभूति के विषय में किसी को संदेह नहीं हो सकता, और न इनमें ऐसी अतिरंजना है जो लोगों को गंभीर बनाने के स्थान पर हँसा दे।"[1]

आधुनिक साहित्य में रहस्यवाद और छायावाद की धारा प्रायः साथ-ही-साथ प्रसरित हुई है, इसी कारण इस प्रसंग में मोहनलाल महतो 'वियोगी' की भी चर्चा वांछनीय प्रतीत होती है। 'वियोगी' जी के काव्य में छायावाद से अधिक रहस्यवाद ने प्रश्रय पाया है। उनकी रहस्यवादिनी भावना अपने पथ पर बहुत अग्रसर हो चुकी है। उनकी अभिव्यंजना-शैली में सरलता के साथ-साथ कोमलता एवं हृदय को छूने की अनुपम शक्ति है। यदि एक स्थल पर संघर्ष-श्लथ कवि अपने नाविक से 'उस पार' ले चलने की प्रार्थना करता है—

> "यद्यपि मैं हूँ लिए पीठ पर जीवन का गुरु भार,
> तरी डूबने का यदि भय हो, कहो यहीं दूँ डार,
> हाथ जोड़ता हूँ न सताओ तुम हो बड़े उदार।
> मुझे अब पहुँचा दो उस पार"

तो दूसरे स्थल पर वह अपने चिर पथिक जीवन की कहानी भी बड़े मार्मिक ढंग से कहता है—

> "पथिक हूँ बस पथ है घर मेरा।
> बीत गए कितने युग चलते किया न अब तक डेरा।
> इसके बाद और भी कुछ है यही बताकर आशा,
> लेने देती नहीं तनिक भी मन को कहीं बसेरा।"

इस अन्वेषण की दिशा में कवि अपने को एकाकी नहीं पाता। सारी प्रकृति उसी अज्ञात 'नाथ' को खोजने में व्यस्त है—

> "अर्थहीन भाषा में खगदल,
> अस्थिर पवन हो महाविह्वल,
> आठों पहर घोर गर्जन कर,
> अंतहीन कल्लोलित सागर;
> रवि-शशि युग-युग घूम-घूमकर
> घोर शून्य में मेघ-नयन भर;
> नाथ! रहे हैं तुम्हें पुकार!!"

किन्तु इन रहस्यवादी प्रवृत्तियों की बहुलता का अर्थ यह नहीं कि कवि ने छायावादी रचनाएँ की ही नहीं। उदाहरण के लिए हम उसके अमर महाकाव्य "आर्यावर्त" को ही लें। यह कहा जा सकता है कि "आर्यावर्त" राष्ट्रीय प्रेम की प्रतिस्थापना करने वाला महाकाव्य है। किन्तु उसमें वर्णित प्राकृतिक चित्रों पर विचार करने से यह स्पष्ट

---

१. आधुनिक काव्य-धारा : डॉ० केसरीनारायण शुक्ल, पृष्ठ ३२६

हो जाता है कि कवि ने यहाँ छायावादी काव्य-शैली का ही प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ नीचे की पंक्तियाँ है—

"रात ने न देखा कभी रवि को, न रवि ने
रात को निहारा भूल के भी आँख भर के ....."

प्राकृतिक नियमों में प्रणय-भावना का प्रदर्शन कर रात और रवि को नायक-नायिका के रूप में चित्रित कर उन्हे मिलन के लिए आतुर बताना, उनमे जीवन-स्पन्दन का आरोप आदि प्रवृत्तियाँ निश्चय ही छायावादी काव्य के ही लक्षण हैं। वास्तव में रहस्यवाद के साथ अभिन्न रूप से सम्बन्धित होते हुए भी वियोगी जी छायावाद की काव्य-परिधि में भी सम्मिलित होते हैं।

गुरु-भक्तसिंह 'भक्त' का प्रसिद्ध काव्य 'नूरजहाँ' अपने प्रकृति-चित्रण के लिए हिन्दी काव्य-साहित्य मे बहुत ही विश्रुत ग्रंथ है। कवि ने स्थान-स्थान पर अपने प्रकृति-प्रेम का अद्भुत परिचय दिया है। उनके प्रकृति-वर्णनों में स्थूलता का आभास तक नहीं—छायावादी सूक्ष्मता ही उनकी सर्वप्रथम विशेषता है। विभिन्न नवीन उपमाओं के सहारे प्राकृतिक दृश्यों को चित्रात्मक रूप मे प्रस्तुत करने की प्रचुर क्षमता कवि की प्रतिभा का एक विशिष्ट गुण है। उदाहरण के लिए नीचे की पंक्तियाँ द्रष्टव्य है:—

"नीचे से पौधे नए निकल तरुवर वयस्क को बगलो दे,
वारिद-सा उठते जाते थे नभ पर हरीतिमा-सागर से;
बादल-सा दल फैलाते थे उड़ जाने को नभमंडल में,
लतिकाएँ प्रेमपाश से जकड़े रहती अपने अंचल में !!
तृण भी वृक्षों से होड़ लगा उठते ही जाते थे ऊपर।
लतिका-विभूषित तरु-शाख-जाल में विहगों के फँस जाने पर;
थी ऊँची-नीची भूमि कहीं, चढ़ती-गिरती हरियाली थी,
खगकुल के कल संगीतों से झंकृत हर डाली-डाली थी।"

यह वर्णन निश्चय ही छायावादी काव्य-शैली में ही हुआ है। निम्नलिखित पक्तियों मे डॉ० केसरीनारायण जी शुक्ल सध्या का 'संवेदनात्मक वर्णन'[१] देखते हैं—

"अंगारे पश्चिमी गगन के झँवा-झँवा कर लाल हुए,
निर्झर खो सोने का पानी पुनः रजत की धार हुए।
रश्मि-जाल से खेल-खेलकर आँखमिचौनी तरुछाया,
सोने चली गई दिनपति-सँग, विलग नहीं रहना भाया।
केवल एक काक का जोड़ा अभी बहुत घबराया-सा।
उड़ता हुआ चला जाता है धुँधले में 'काँ-काँ' करता।
दम साधे सब वृक्ष खड़े है, पत्तो की रसना है बंद,
आती है विभावरी रानी खोले श्यामल केश स्वच्छन्द।

१. आधुनिक काव्य-धारा ; डॉ० केसरी नारायण शुक्ल, पृष्ठ २४९.

मधुप कुसुम में बात न करते, तितली पर न हिलाती है,
निद्रा सबकी आँखें बन्द कर पर्दा करती जाती है।
तारे नदी-सेज पर सोए, थपकी देने लगी लहर,
रुँधा गला मोथा सेवार से सरिता का है धीमा स्वर।
कटे कगारे से लटकी है गाँठदार कुश तृण की जड़,
मंद पवन में भी जो हिलकर करती है खड़-कड़ लड़-तड़।"

श्री गुरुभक्तसिंह 'भक्त' का प्रकृति-प्रेम और अभिव्यंजना-शैली एकबारगी छायावादी कवियों की याद दिला देती है। प्रकृति-निरीक्षण की पैनी दृष्टि के साथ-साथ कवि को सूक्ष्म अभिव्यंजना-प्रणाली पर भी अधिकार है। निर्झर का सोने का पानी खोकर रजत-धार बन जाना, रश्मि-जालों से आँखमिचौनी खेलकर तरुछाया का दिनपति के संग सोने चला जाना, वृक्षों का दम साध कर खड़ा रहना, श्यामल केश खोलकर विभावरी रानी का आगमन तथा नदि-सेज पर तारों का सो जाना कुछ ऐसे सूक्ष्म प्रकृति-वर्णन हैं जो हठात् ही पाठकों के मन को आकृष्ट कर लेने की क्षमता रखते हैं। निश्चय ही ये काव्यांश कवि की छायावादी मनोवृत्ति के ही परिचायक हैं।

इसी प्रसंग में 'नेपाली' का नाम भी अटूट रूप से सम्बंधित है। डॉ० केसरीनारायण शुक्ल का विचार है कि—

"पन्त के समान 'नेपाली' को भी प्राकृतिक सुषमा के चित्रण में बड़ा आनन्द मिलता है। नेपाली की सबसे बड़ी विशेषता प्रकृति की साधारण सरल और छोटी वस्तुओं के प्रति प्रेम है। इन्हें प्रकृति-चित्रण के लिए विशाल पर्वत और महान् प्रपातों की विशेष चिन्ता नहीं। कवि को अपने आँगन की 'हरी घास' ही आनन्दित करने के लिए पर्याप्त है। देहरादून के बेर 'नेपाली' के लिए सब कुछ है। अपने आँगन की 'हरी घास' में गलती से स्वर्ग की सुषमा उतर आयी है—,

"रहता हूँ मैं इस वसुधा में ढँक देती है तन को कपास,
जल से समीर से पावक से यह जीवन पाता है हुलास।
देते हैं खिला-खिला मुझको ये उपवन के गेंदे-गुलाब;
पर हृदय हरा करनेवाली मेरे आँगन में हरी घास।
बस गया यहाँ तो गलती से उस प्रभु का सुन्दर सुखद स्वर्ग,
क्या समझ लगा दी थी उसने मेरे आँगन में हरी घास।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों से यह सहज प्रतिध्वनित है कि प्राकृतिक सुषमा कवि को आह्लादित कर देती है; 'उपवन के गेंदे-गुलाब' उसे खिला देते है और उसके आँगन की हरी घास उसे हरी कर देती है, क्या इसे हम छायावादी प्रवृत्ति नहीं कह सकते? अवश्य ही यह छायावादी प्रवृत्ति है जो कवि की कविताओं में अजस्र प्रवाह की भाँति मुखरित हुई है। उसकी 'पीपल' शीर्षक रचना में पीपल वृक्ष का मानवीकरण अलंकार-युक्त वर्णन बहुत ही कोमल शब्दावलियों में हुआ है जो पठनीय है :—

१. आधुनिक काव्य-धारा : डॉ० केसरीनारायण शुक्ल, पृ० ३४६.

"कानन का यह तरुवर पीपल, युग-युग से जग में अचल-अटल ।
ऊपर विस्तृत नभ नील नील, नीचे वसुधा में नदी-झील ;
जामुन तमाल इमली करील ।
जल में ऊपर उठता मृणाल, फुनगी पर खिलता कमल लाल,
तिर – तिर करते क्रीडा मराल ।
ऊँचे टीले से वसुधा पर, झरती है निर्झरिणी झरझर
हो जाता बूँद-बूँद झरकर ।
निर्झर के पास खड़ा पीपल, सुनता रहता कलकल ढलढल
पल्लव हिलते ढल - पल ढल - पल ।"

वास्तव में 'नेपाली' ने प्रकृति-वर्णन में काफी सफलता पाई है। प्रकृति के विभिन्न अवयवों, अनेकानेक उपादानों के बहुत ही मर्मस्पर्शी वर्णन कवि ने अपनी विभिन्न रचनाओं में किए हैं। उनकी सूझ में सूक्ष्मता है, अभिव्यंजना में मर्मस्पर्शिता; उनकी कविता में कोमल शब्दों की अनुपम सुन्दरता है तथा भाषा में एक स्वच्छंद बहाव। वारिदमाला में तड़पती दामिनी का बहुत कोमल एवं मर्मस्पर्शी वर्णन नीचे की पंक्तियों में हुआ है —

"नींद से चौंक उठी दामिनी, थिरकती चली मेघ-कामिनी ।
किरण-सी क्षीण लहर-सी क्षणिक, कुसुम के मधुपराग-सी तनिक ।
ज्योति की कच्ची गीली डोर, तोड़ता जिसे पवन झकझोर ।
टूट कर डोर सुलझती चली, मेघ से और उलझती चली ।
बजा सावन में मेघ - सितार, तड़ित् बन उड़ी आज झंकार ।
कि बिजली है न घटा घिर रही, उँगलियाँ बालों पर फिर रही ।
बिजलियाँ सावन की मुस्कान, और उस पर ऐसा तूफान ।
कि जमती है झमझम बरसात, डूबता दिन, बह जाती रात ।
दामिनी गले लिपटती चली ।
खुले काले घुँघराले बाल ।"

इस उद्धरण में मेघमाला के बीच कौंधनेवाली दामिनी के लिए कवि ने अनेकानेक उपमाओं का प्रयोग किया है और इसमें अधिकांश उपमाएँ प्राकृतिक क्षेत्र से ली गई हैं, साथ ही उनकी सूक्ष्मता भी दृष्टि से प्रच्छन्न नहीं। दामिनी की क्षीणता किरण के समान है, उसकी क्षणिकता लहर के समान; यदि वह 'कुसुम के मधुपराग-सी तनिक' है तो मेघ-सितार की उड़नेवाली झंकार भी। विभिन्न उपमाओं की जमघट और साथ ही उनकी सूक्ष्मता छायावादी प्रवृत्ति ही कही जायगी। नेपाली जी की भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रति इतना व्यामोह नहीं दीख पड़ता—अभिव्यंजना-प्रणाली भी अधिक स्पष्ट है। किन्तु इतना होने पर भी, उन्हें निश्चयपूर्वक छायावादी काव्य-परिधि में सम्मिलित किया जा सकता है।

छायावादी काव्य-परम्परा के दूसरे प्रमुख कवि श्री आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री जी हैं। आप कवि होने के साथ-साथ संस्कृत, हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी आदि देशी-विदेशी भाषाओं के मान्य विद्वान् भी। निराला की भाँति शास्त्रीय संगीत के भी अच्छे ज्ञाता हैं। फलस्वरूप इनकी कविताओं में सरस एवं भाव-प्रवण संवेदनाओं के साथ विद्वत्ता का और शास्त्रीय संगीतानुरूप ताल-लय का अद्भुत समन्वय मिलता है। श्री जानकीवल्लभ शास्त्री निश्चय रूप से छायावादी काव्य-परम्परा के शीर्षस्थ-कवियों में एक हैं। उनके सम्बंध में लिखते हुए हिन्दी के वरेण्य विचारक श्री नलिनविलोचन शर्मा जी का कथन है कि "प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी के बाद हिन्दी-कविता की निर्झरिणी समतल भूमि पर प्रवाहित होने लगी और, अनेक धाराओं में। इनमें से जिस एक सदानीरा धारा ने तट-तरु का उच्छेद किए बिना अपने को उर्वर और स्निग्ध बनाया, दिशाओं को अपनी कलध्वनि से मुखरित किया, वह स्रोत से कभी विच्छिन्न भी नहीं हुई, इस धारा के भगीरथ आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री हैं। यदि प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी के बाद मुझसे हठात् पाँचवाँ नाम लेने को कहा जाय तो वह नाम शास्त्री जी का ही होगा। बहुत माथा खुजलाने के बाद भी पाँचवाँ नाम यही रहेगा—ऐसा मेरा विश्वास है।"[१] वास्तव में शास्त्रीजी की काव्य-रचनाओं में पग-पग पर हमें उनकी प्रौढ़ एवं प्राञ्जल कवि-प्रतिभा की प्रतिच्छाया देखने को मिलती है। उनकी प्रतिभा में प्रसाद की कल्पनाशीलता एवं सौन्दर्य-चेतना, पन्त की कोमलता एवं अभिव्यंजना-वैचित्र्य, निराला की ध्वन्यात्मकता एवं महादेवी की व्यथा-तरलता का अपूर्व सम्मिश्रण है। उन्होंने अपनी सौन्दर्य-चेतना का परिचय निम्नलिखित पंक्तियों में दिया है। प्रेयसी के रूप-गुण-वर्णन करनेवाली पंक्तियाँ पन्त की 'अप्सरा' अथवा 'भावी पत्नी के प्रति' आदि कविताओं की स्मृति दिलाती हैं :—

> "और, तुम आईं तभी प्रतिध्वनि-सदृश साकार,
> मलय-निलय समीर पर जैसे सुरभि-साभार—
> मुकुल में मुस्कान भरती, कुसुम में मकरंद,
> मधुर-मधुर मरन्द में भरती अमंद सुगंध।
> धूल में, हीरे निरखते नूपुरों का हास,
> देखता पतझार मर का—स्वर्ग का मधुमास।
> अलक की झीनी झलक में अर्धचन्द्रललाट,
> झाँकता ज्यों फाँक से हो सूक्ष्म तत्त्व विराट।
> एक भटकी सी किसी सौदामिनी का हास,
> एक अलसाई हुई कादम्बिनी की साँस।"

इसमें कवि की सौन्दर्य-चेतना के परिष्कृत होने का परिचय तो मिलता ही है, कवि की अभिव्यंजना की सूक्ष्मता एवं भाषा की लाक्षणिकता की झलक भी हमें देखने को मिल

---

१. 'अवन्तिका' (काव्य-संग्रह में 'संकेत' शीर्षक भूमिका)—जानकी वल्लभ शास्त्री।

"कानन का यह तरुवर पीपल, युग-युग से जग में अचल-अटल ।
ऊपर विस्तृत नभ नील-नील, नीचे वसुधा में नदी-झील ;
जामुन तमाल इमली करील ।
जल से ऊपर उठता मृणाल, फुनगी पर खिलता कमल लाल,
तिर – तिर करते क्रीड़ा मराल ।
ऊँचे टीले से वसुधा पर, झरती है निर्झरिणी झरझर
हो जाता बूँद-बूँद झरकर ।
निर्झर के पास खड़ा पीपल, सुनता रहता कलकल ढलढल
पल्लव हिलते ढल-पल ढल-पल ।"

वास्तव में 'नेपाली' ने प्रकृति-वर्णन में काफी सफलता पाई है। प्रकृति के विभिन्न अवयवों, अनेकानेक उपादानो के बहुत ही मर्मस्पर्शी वर्णन कवि ने अपनी विभिन्न रचनाओं मे किए हैं। उनकी सूझ में सूक्ष्मता है, अभिव्यंजना में मर्मस्पर्शिता; उनकी कविता में कोमल शब्दों की अनुपम सुन्दरता है तथा भाषा में एक स्वच्छंद बहाव। वारिदमाला मे तड़पती दामिनी का बहुत कोमल एवं मर्मस्पर्शी वर्णन नीचे की पंक्तियों में हुआ है —

"नींद से चौंक उठी दामिनी, थिरकती चली मेघ-कामिनी ।
किरण-सी क्षीण लहर-सी क्षणिक, कुसुम के मधुपराग-सी तनिक ।
ज्योति की कच्ची गीली डोर, तोड़ता जिसे पवन झकझोर ।
टूट कर और सुलझती चली, मेघ से और उलझती चली ।
बजा सावन में मेघ-सितार, तड़ित् बन उड़ी आज झंकार ।
कि बिजली है न घटा घिर रही, उँगलियाँ बालों पर फिर रहीं ।
बिजलियाँ सावन की मुस्कान, और उस पर ऐसा तूफान ।
कि जमती है झमझम बरसात, डूबता दिन, बह जाती रात ।
दामिनी गले लिपटती चली ।
खुले काले घुँघराले बाल ।"

इस उद्धरण में मेघमाला के बीच कौंधनेवाली दामिनी के लिए कवि ने अनेक उपमाओं का प्रयोग किया है और उसमें अधिकांश उपमाएँ प्राकृतिक क्षेत्र से ली ग[illegible] साथ ही उनकी सूक्ष्मता भी दृष्टि से प्रच्छन्न नहीं। दामिनी की क्षीणता [illegible] के समान है, उसकी क्षणिकता लहर के समान; यदि वह 'कुसुम के मधुपराग-सी तनि[illegible] तो मेघ-सितार की उड़नेवाली झंकार भी। विभिन्न उपमाओं की जमघट और सा[illegible] उनकी सूक्ष्मता छायावादी प्रवृत्ति ही कही जायगी। नेपाली जी की भाषा में संस्कृ[illegible] तत्सम शब्दों के प्रति इतना व्यामोह नहीं दीख पड़ता—अभिव्यंजना-प्रणाली भी अ[illegible] स्पष्ट है। किन्तु इतना होने पर भी, उन्हें निश्चयपूर्वक छायावादी काव्य-परि[illegible] सम्मिलित किया जा सकता है।

जाती है। उदाहरणार्थ हम 'नूपुरों का हास' को ले सकते हैं। अभिधा में यह निरर्थक प्रतीत हो सकता है, किन्तु लक्षणा में इसका अर्थ नूपुरों का रुनझुन हो जायगा। शैशव के प्रति कवि का मोह भी अगाध है। शैशवावस्था की सुकुमारता, भोलापन और सुन्दरता के वर्णन में, मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कवि ने कहीं-कहीं 'पन्त' से भी अधिक सूझ एवं अभिव्यंजना के चमत्कार का परिचय दिया है। कवि की पंक्तियां हैं—

रेणु-पिंजरित कुंचित कुंतल रेशम श्याम सघन था,
स्वर्ण-सलिल में मन्द-मन्द खिलता अरविन्दवदन था;
मुकुलित रदन, वचन-विरचन-श्रम, लोल कपोल, विलोचन,
गीत-मधुर मेरा अतीत क्या? सस्मित बाल मदन था।
लाल प्रवाल-पालने पर सौरभ की सेज हरी थी,
झुला रही हँस उसे वसन्ती धीर समीर-परी थी;
मेरा शैशव मुँह में मोती भरे, लुटाता दृग से,
रजत-धार में भारहीन तिरती लघु स्वर्ण-तरी थी।

इन पंक्तियों में उपमा-अलंकार, अनुप्रासालंकार आदि की बहुलता है। कवि का शब्द-सौष्ठव भी बहुत ही सफल है जिससे सुमधुर संगीत की उत्पत्ति स्वतः हो जाती है। कवि संस्कृत-साहित्य का असाधारण विद्वान् है। इसी कारण इसकी पंक्तियों में तत्सम शब्दों का सुगठित प्रयोग हुआ है। कवि की भाषा निराला की प्रौढ़ काव्य-भाषा की याद दिलाती है। शास्त्री जी की कविता में सौन्दर्य-प्रेम के साथ-साथ प्रकृति-पर्यवेक्षण का भी पर्याप्त व्यक्तीकरण हुआ है। 'मेघगीत' की कविताएँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा सकती हैं। कवि की पंक्तियों में वेदना ने भी मधुर अभिव्यंजना पायी है। पीड़ा को कवि कवि-जीवन की क्रीड़ा के रूप में देखता है—

"मञ्जु विपंची कवि-मानस की जीवन की कल क्रीड़ा,
मुग्धा की सुमधुर व्रीड़ा-सी मनहर तू है पीड़ा।"

इसमें भी उपमाओं के सहारे ही कवि के उद्गार व्यक्त हुए हैं।

आत्मनिष्ठता भी कवि की रचनाओं का एक प्रधान गुण है। कवि निजी जीवन के अश्रु-हास, वेदना-आह्लाद, प्रेम-विरह आदि की भावनाओं को अपनी रचनाओं में उड़ेलता है। अपने जीवन के सूने क्षणों की वेदना को कवि विजन वन के सुमन के प्रतीक के सहारे बड़ी मर्मस्पर्शी रीति से प्रकट करता है—

"विजन वन का सुमन हूँ मैं, सुरभि अपनी सँजोए,
भ्रमर के गान में अनजान प्राणों को भिगोए।"

इस प्रकार श्री आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री के काव्य के अध्ययन से उनकी प्रौढ़ कवि-प्रतिभा की छायावादिनी प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक प्राप्त होती है। कवि की समर्थता निर्विवाद है; शब्द-सौष्ठव, संगीतात्मकता, सौन्दर्य-चेतना, अभिव्यंजना की चित्रात्मकता एवं लाक्षणिकता आदि तत्त्व उसके काव्य के प्राण हैं।

इस प्रसंग में दूसरे उल्लेखनीय कवि हैं श्रीयुत केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'।

यद्यपि इन दिनों 'प्रभात' की काव्य-प्रतिभा महाकाव्य और खंडकाव्य को प्रस्तुत करने में अधिक संलग्न है, किन्तु उसकी अन्तर्निहित छायावादी प्रवृत्ति किसी पैनी दृष्टि-सम्पन्न साहित्यिक अध्येता की नजर से छिपी नहीं रह सकती। 'प्रभात' की कविताओं की कोमलता एवं वेदनासिक्त अनुभूतियों की तरल अभिव्यंजना महादेवी की कविताओं की स्मृति दिला देनेवाली है। कवि की कविताओं में प्रकृति-प्रेम की सूक्ष्म अभिव्यंजना बहुत स्थलों पर हुई है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित उद्धरण हैं—

"रश्मि - कण तरु-पल्लवों के
बन रहे रंगीन बादल,
और सौरभ की सजीली
श्वास स्मरण - समीर पागल
रूप की प्रिय माधुरी से अलि, मधुर आकाश मेरा
प्रेम का आकाश मेरा।"

अथवा —

"शत-शत सपनों के चंचल घन,
आते बन - बन कर सम्मोहन,
अलि, मेरी पलकों के भीतर कब से बसता मधुवन !
संध्या की ज्वाला में घुलमिल,
आँसू के तारों - सा अमलिन,
कब अनजाने गूँज उठा अलि, जीवन का सूनापन !"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'प्रभात' की रचनाओं में स्वानुभूति की एवं प्रेम, विरह, सुधि, सूनापन, विकलता आदि की अभिव्यंजना प्रचुर मात्रा में हुई है। उसकी कल्पना की सूक्ष्मता एवं शब्दों की कोमलता अत्यन्त ही सम्मोहक है। पलकों में 'मधुवन का बसना' अर्थात् मनमोहक प्राकृतिक चित्रों के प्रति अनुराग, सूनापन का गूँजना, अर्थात् एकान्त क्षणों में निकले अधरों के स्फुट संगीत आदि शब्द के लाक्षणिक प्रयोग के विविध उदाहरण हैं। ये प्रवृत्तियाँ निर्विवाद रूप से छायावादी काव्य-परम्परा के अन्तर्युक्त हैं। 'प्रभात' में छायावादी कवियों की भाँति ही जिज्ञासा की भावना प्रचुर मात्रा में अभिव्यंजित हुई है। सागर की लहरों में, "जीवन के नीरव निस्पंद तिमिर में" किसकी उपस्थिति का आभास मिलता रहता है ? कवि का जिज्ञासाकुल हृदय इस रहस्य को भिज्ञा के लिए विकल है—

"सागर की चंचल लहरें
नीले नभ के चुम्बन को
क्यों गरज - गरज कर उठतीं
फिर पिघल-पिघल मिट जातीं।"
× × ×
"उच्छ्वास - भरे जीवन के
नीरव निस्पंद तिमिर में

यह मरण - दीप जल - जल कर
किसकी कर रहा प्रतीक्षा ?"

'प्रभात' की ये पंक्तियाँ बहुत कुछ पन्त की निम्नलिखित पंक्तियों में मिलती-जुलती हुई प्रतीत होती हैं—

"शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहराकर
हो उठता चंचल, चचल !
सोए वीणा के सुर
क्यों मधुर स्पर्श से मर्मर्
बज उठते प्रतिपल, प्रतिपल !
आशा के लघु अंकुर,
किस सुख से फड़का कर पर
फैलाते नव दल पर दल !
मानव का मन निष्ठुर
सहसा आँसू में झर - झर
क्यों जाता पिघल - पिघल गल !"

'प्रभात' की कविताओं में छायावादिनी प्रवृत्ति के साथ - साथ रहस्यवाद की भावनाओं का भी पर्याप्त सम्मिश्रण मिलता है। महादेवी की भाँति ही उन्होंने प्रायः सभी स्थलों पर अपनी रहस्यवादिनी भावनाओं को भी छायावादी अभिव्यंजना-शैली में ही व्यक्त करने की चेष्टा की है। 'प्रभात' की रहस्यवादिनी कविताओं में विरह की तीव्रता है, मिलन की आकांक्षा है और प्रिय के व्यापक रूप को विश्व के अणु-परमाणु में देखने की रहस्यात्मक प्रवृत्ति है। कवि अपने प्रिय से विरह की भावना को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करते हुए लिखता है—

छायावादी काव्य-परम्परा के दूसरे सशक्त कवि है श्री आरसीप्रसादसिंह। यह कहना कि कवि पूर्ण रूप से छायावादी है, सही प्रतीत नहीं होता। कवि-जीवन के विकास के साथ-साथ कवि के काव्यगत मापदंड बदलते रहे हैं—कविता के प्रति उसका दृष्टिकोण परिवर्तित होता रहा है। नई-नई परिस्थितियों से उद्भूत नई-नई अनुभूतियों को कवि का संवेदनाशील हृदय ग्रहण करने में बराबर कार्यशील रहा है और उसी के अनुरूप उसकी कविताओं में भी उलट-फेर होते रहे है। किन्तु, इतना होने पर भी, यह कहना कि आरसीप्रसादसिंह की कविताओं में छायावादी पुट का अत्यधिक सम्मिश्रण है, युक्तिविहीन नहीं। छायावादियों की भांति ही कवि की उत्कंठा एवं जिज्ञासा की भावना अत्यधिक विकसित है। उसकी पंक्तियां है—

उड़ न जाए लो, निरंजन,
यह दृगों का बाल - खजन,
खीचती अब भी मुझे, वह
कौन अलका की परी ?"

जिज्ञासाकुल हृदय की अनुभूतियों की अभिव्यंजना के साथ-साथ इन पंक्तियों की सरसता एवं संगीतात्मकता हृदय को आकृष्ट किए बिना नहीं रहती। कवि की अभिव्यक्ति-शैली को बहुत अधिक सूक्ष्म नहीं कहा जा सकता—सूक्ष्मता के साथ-साथ अधिक स्पष्ट रहने की प्रवृत्ति सहज ही द्रष्टव्य है। कवि की प्रकृति-पर्यवेक्षण-प्रवृत्ति का आभास निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है—

शरद - वन में आज मेरे
आ गई श्री - सुन्दरी;
फूट निकली विश्व - उर से
मोद - रस की निर्झरी !
वह किरण का हास आया;
व्योम में उल्लास आया !
नाचती ज्योत्स्ना निशा में
मुग्ध कानन - किन्नरी !
देख निज छाया मधुर मे,
विमल पल्लव के मुकुर में;
फूल उठ तू फूल उठ, री
प्रेम - परिमल मधुकरी !!

इन पंक्तियों में प्रकृति-पर्यवेक्षण के साथ-साथ छायावादी अभिव्यंजना-शैली का सम्मिश्रण है। शरद-श्री का वर्णन स्थूल रूप में न कर उसे विविध उपमाओं के सहारे कवि ने सूक्ष्म रूप में किया है। शरद-वन में श्री-सुन्दरी का आगमन, विश्व-उर से 'मोद-रस की निर्झरी' का फूट कर नि.सृत होना और फिर-फिर प्रेम-परिमल का आस्वादन करती हुई पल्लव के दर्पण में अपनी मधुर छाया देखकर मधुकरी का फूल उठना—ये सारे वर्णन

निश्चय ही छायावादी काव्य-परम्परा में सम्मिलित किए जायेंगे। कवि-जीवन के विकास के साथ-साथ कवि की अभिव्यंजना-शैली में और अधिक स्पष्टता आ गई है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रति उसका उतना अधिक मोह नहीं रह गया है, तथापि उसकी भाषा का प्रवाह और संगीतात्मकता अक्षुण्ण रही है। उदाहरणार्थ कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं:—

"लौट कर आएगी फिर पूर्णिमा की रात?
ऐसी पूर्णिमा की रात??
आज मेरे प्राण में ही भर गया आकाश!
आज कितना लग रहा है चाँद मेरे पास!
चाँद के मुख पर खिला है मुक्त मेरा हास!
और मुझको छू रहा है चाँद का निःश्वास!!
चाँदनी चुपचाप आकर कर रही है बात,
कोई रस-भरी-सी बात!!"

इन पंक्तियों की अभिव्यंजना-शैली की स्पष्टता को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। किन्तु इनमें भी छायावादी अभिव्यक्ति-प्रणाली का ही बाहुल्य है। प्राणों में आकाश का भर जाना एक लाक्षणिक कथन है जिसका अर्थ प्राणों में आकाश की सुषमाओं का समाहित हो जाना है; चाँद का निःश्वास पूनो की रात में बहती सुगन्धित वायु की ओर संकेत करता है और चाँदनी का रस-भरी बातें करने में मानवीकरण अलंकार का प्रयोग है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अभिव्यंजना-शैली की दृष्टि से कवि का उपर्युक्त उद्धरण अधिक स्पष्ट होते हुए भी अपनी सूक्ष्मता एवं लाक्षणिकता के कारण छायावादी काव्य-परम्परा के अन्दर ही आदृत होगा। छायावादी अभिव्यंजना-शैली का दूसरा गुण प्रतीकात्मकता है जिसका बहुत उत्तम उदाहरण कवि की 'जीवन का झरना' शीर्षक कविता है:—

"यह जीवन क्या है? निर्झर है; मस्ती ही इसका पानी है।
सुख-दुख के दोनों तीरों से चल रहा राह मनमानी है।
कब फूटा गिरि के अन्तर से, किस अचल से उतरा नीचे,
किन घाटों से बह कर आया समतल में अपने को खींचे।
निर्झर में गति है, यौवन है, वह आगे बढ़ता जाता है।
धुन एक सिर्फ है चलने की, अपनी मस्ती में गाता है।
बाधा के रोड़ों से लड़ता, वन के पेड़ों से टकराता—
बढ़ता चट्टानों पर चढ़ता, चलता यौवन में मदमाता।"

इस प्रकार यह परिलक्षित है कि कवि ने मानव-जीवन के समस्त विकास को एक निर्झर के रूप में व्यक्त करने की चेष्टा की है। कवि की अभिव्यंजना स्पष्ट है—वह जो कुछ कहना चाहता है, बड़े स्पष्ट ढंग से कहता है। तथापि छायावादी अभिव्यंजना-शैली की सूक्ष्मता उसकी रचनाओं का एक प्रमुख गुण बनी रहती है। कवि की प्रतिभा में ओज है; सौन्दर्य-चेतना की बहुलता है।

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जी को लोग प्रगतिवाद के प्रवर्तक रूप मे जानते हैं। किन्तु इस प्रतिभा-संपन्न कवि के काव्य पर भी यदि गौर से विचार किया जाय तो उसमें छायावादी प्रवृत्तियों की अत्यधिक अभिव्यंजना दृष्टिगत होती है। सौन्दर्य के प्रति आकर्षण, अभिव्यंजना में लाक्षणिकता एवं उपमाओं का प्रयोग, आत्मनिष्ठ कोमल भावना-लहरियों का प्रकाशन आदि काव्य-तत्व उसे छायावादी काव्य-परिधि मे समेट लेने को पर्याप्त है। सौंदर्य के प्रति उसकी आसक्ति का परिचय निम्नलिखित पंक्तियों मे सहज ही गोचर होता है :—

"सुन्दरते किन भावों की तुम
मुग्धा-सी व्रीड़ा हो ?
किस मधुरी चंचलता की तुम
रमणमयी क्रीड़ा हो ?"

सौन्दर्यासक्ति के साथ-साथ ऊपर की पक्तियों मे कवि के उत्कंठातुर हृदय की व्यंजना भी होती है, जो निश्चयपूर्वक छायावादी लक्षण है। सूक्ष्म उपमाओं का प्रयोग तो सहज द्रष्टव्य है। 'आँचल का छोर' शीर्षक कविता में कवि की उत्कंठा और भी स्पष्ट रूप में व्यक्त होती है—

"मुझे खींच ले जाती है उत्कंठा उस आँगन की ओर—
जहाँ खिसकता है, ढुलता है, प्रति मे, तव अञ्चल का छोर !
जहाँ समीर की मंद थपकियाँ, ले आती हैं आर्द्र हिचकियाँ,
तव पूजा-गृह के वातायन खुलते हैं, नमता है गायन;
उसी समय चित्रित हो जाती है कम्पित हिय में वह ठौर—
जहाँ किसकता है, ढुलता है, प्रतिमें, तव अञ्चल का छोर !"

उत्कंठा का खींचना, समीर की मंद थपकियाँ आदि छायावादी अभिव्यक्ति-प्रणाली के उदाहरण हैं। छायावादी अभिव्यंजना-शैली का उत्कृष्ट उदाहरण कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं, जहाँ सूक्ष्म उपमाओ की झड़ी लग गई है :—

"आज नींद के श्यामल घर में मूर्छा के उस अंतर-तर में,
मृदुल किरण-सी, नव चेतन-सी, सहसा तुम आई कम्पन-सी।"

श्री 'नीरज' की कविताओं में भी छायावादी काव्य-प्रवृत्तियों ने बहुत अधिक अभिव्यंजना पायी है। कवि की भावनाएँ छायावादियों के सदृश ही आत्मनिष्ठ एवं कोमल है—यह बात दूसरी है कि युग की परिवर्तनशील परिस्थितियों से प्रभावित होकर उसने प्रगतिवादी काव्य-प्रणाली को भी अंगीकार किया हैं। कवि की निम्नलिखित पंक्तियों में—

रात के कज्जल तिमिर में झिलमिलाती
प्रात की कंचन-किरन-सी कौन तुम हो ?
श्याम-पट में स्नात-स्मित-शशि-मुख छिपाए
जुगनुओं के दीप अंचल में जलाए
दामिनी-द्युति-ज्योति मुक्ताहार पहने,

इन्द्रधनुषी कंचुकी तन पर सजाए,
बूँद के घुंघरू बजाती पल निमिष चल,
लोचनों में अश्रु-घन-सी कौन तुम हो ?

सूक्ष्म सौन्दर्य चेतना, जिज्ञासा की भावना, उपमाओं की भाषा में सूक्ष्म अभिव्यंजना-प्रणाली आदि छायावादी काव्य - प्रवृत्तियों का यदि एक साथ प्रकाशन हुआ है तो निम्नलिखित पंक्तियाँ कवि के प्रकृति-प्रेम की द्योतक हैं—

निज धानी चूनर उड़ा-उड़ाकर नयी फसल
जब दूर खेत से मुझको पास बुलाती है—
तब मेरे मन का रोम-रोम गा उठता है।
यों साँस-साँस मेरी कविता बन जाती है।

रोम-रोम काग उठना, साँसों की कविता बन जाना-लाक्षणिक भाषा के उदाहरण हैं। कवि की छायावादी मनोवृत्ति सहज ग्राह्य है।

श्री हंसकुमार तिवारी के काव्य में भी छायावादी भावनाओं की बहुत अधिक अभिव्यंजना हुई है। उनकी भी भाषा में छायावादी तत्त्व की ही बहुलता है। बंगला के मान्य विद्वान् कवि हंसकुमार तिवारी रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रतिभा से सहज प्रभावित हैं। यदि निम्नलिखित पंक्तियां में जिज्ञासा की भावना अभिव्यजित हुई है—

नव पल्लव-दल पर सिहर-सिहर
किसकी आशा लेती उसाँस ?
वन गंध मरुत के पंखो पर
किस हृदय-कली की उड़ी प्यास ?
क्षण-क्षण विलास, क्षण-क्षण प्रकाश
यों लुटा रहा है कौन संत ?"

—तो निम्न उद्धृत काव्यांश में सूक्ष्म प्रकृति-वर्णन हुआ है—

"ऊषा के गालों मल गुलाब खेली दिनकर ने होली,
उर-उर को कुछ विद्युत् से छू मधुवन में कोयल बोली।
जादू-सा छाया है अनन्त
कण-कण जीवित, आया वसंत।"

कवि की सौन्दर्य-चेतना एवं वेदना की अभिव्यक्ति के उदाहरणस्वरूप निम्नांकित अंश उल्लेखनीय है :—

"अधरों का अरुणिम उदयाचल, उस पर सजल नयन-कालिन्दी।
जैसे उन्मीलित शतदल पर पारे-से शबनम की बिन्दी।
कोटि-कोटि किरणों के कर से उस आँसू को पोंछ थके तुम
मेरे गीत उस हृत करुणा का जीवित शृंगार !"

सूक्ष्म प्रकृति-वर्णन और भाषा का लाक्षणिक एवं चित्रात्मक प्रयोग तो कवि की कविता में पग-पग पर दर्शित होते हैं। कवि निश्चय रूप से छायावादी काव्य-परम्परा में परिगणनीय है।

छायावादी काव्य-परम्परा के दूसरे प्रतिभा-सम्पन्न एवं प्रौढ़ कवि श्री हरेन्द्रदेव नारायण हैं। आज हरेन्द्र का कवि-जीवन करीब पच्चीस वर्षों की लम्बी अवधि पार कर चुका है और इस बीच साहित्य-साधना में अविराम निरत रहकर कवि ने जो अनमोल हीरक प्राप्त किए हैं, उनकी चमक इनकी कविताओं में सर्वत्र समान रूप से परिव्याप्त दीख पड़ती है। कवि ने अपनी काव्य-साधना के प्रथम चरण में भावनाओं को पुलक भरा चित्रण किया है। उनकी कविताओं में सूक्ष्म भावनाओं को ग्रहण कर सकने की आध्यात्मिक शक्ति एवं चित्र रंग सकने की प्रवृत्ति का आधिक्य है। कविवर हरेन्द्र ने अपनी कविताओं में ऐसे भी चित्र उपस्थित किए हैं जिनके स्वरूप और रंग पर युग का ध्यान जाना आवश्यक है। अपने रचना-काल के प्रथम खंड में लिखित कवि की 'बाँसुरी' शीर्षक कविता अपने प्रसाद-गुण के लिए अति प्रसिद्ध हुई। उसी कविता का एक उमंग-भरा चित्र देखिए—

> 'व्योम हँसता धरणि के कोमल
> अधर पर धर अधर
> सावन-फुहारों में नहातीं
> घास की परियाँ अमल।"

'ऊषा' शीर्षक कविता में कवि एक अत्यन्त सुन्दर चित्र खींचता है—

> देव-कन्या मैं चली,
> पीछे हमारा रजनि-कुंतल;
> चकित सस्मित नयन-अलि
> गुंजित चरण-मंजीर चंचल।"

इन पंक्तियों की संगीतात्मकता एवं चित्रात्मकता किसी भी सरस हृदय को तुरत आकृष्ट कर लेने की क्षमता रखती है। विरहाकुल रजनी-रानी का यह चित्र तो और भी प्रौढ़ प्रतीत होता है—

> "वह रजनी बैठी विरह-रता सुधबुध खोए,
> गल-गल आँसों में उसके प्राण बहुत रोए।
> तम सघन अलक, पारदिन्दु वदन, दृग घन-अंजित,
> उच्छ्वास पवन श्वासों की गति, उड़ु बिन्दी सित।"

इन सुन्दर पंक्तियों को पढ़कर 'पन्त' की 'चाँदनी' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ याद आने लगती हैं—

> जग के दुख-दैन्य-शयन पर
> यह रुग्णा जीवन-बाला;
> रे कब से आँक रही वह,
> आँसू की नीरव-माला।"

उपर्युक्त चित्रों का तुलनात्मक अध्ययन कर उनके काव्यात्मक गुणों का विशद वर्णन तो यहाँ सम्भव नहीं; किन्तु एक गुण जो तीनों में समाहित है और निश्चयपूर्वक जिसे हम छायावादी काव्य-प्रवृत्ति कह सकते हैं—वह है प्राकृतिक तत्त्वों में जीवन-स्पंदन का

आरोपण। कवि की 'गंगा' शीर्षक कविता की गतिमंद्रता एवं संगीतमयता बहुत ही आकर्षक है—

> कोमलता से धीरे बह
> युग-युग के पुंजीभूत गान तुम;
> रजतहासमयि जाह्नवि दुक
> धीरे बह, मेरी ज्ञान-ध्यान तुम।"

इधर कवि ने अपने गीतों में एक नवीन एवं महत्त्वपूर्ण प्रयोग करना प्रारम्भ किया है। यह प्रयोग उपमाओं का है। उपमाओं में भी 'होमेरिक सिमिली' की एक विशिष्ट कोटि होती है। इस प्रकार की उपमा का जन्म सर्वप्रथम होमर के महान् काव्य-ग्रंथों में हुआ। इसका प्रधान गुण इसका सौन्दर्यपूर्ण विशद वर्णन एवं चित्रात्मकता है। साम्य के बिन्दुओं के पश्चात् भी इसमें और चित्रों का विवरण रहता है जो इस प्रकार की उपमाओं को अत्यधिक सौन्दर्य प्रदान करने में अवतंस का कार्य करते हैं। इसी कारण आलोचकों ने इसे 'ornamental simile' की संज्ञा दी है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि आज तक इसका व्यवहार महाकाव्यों एवं खंडकाव्यों में ही होता आया है जिसके कारण इसे यत्र-तत्र "Epic simile" भी कहा गया है। हरेन्द्रदेव जी की विशेषता यह है कि इस प्रकार की उपमाओं का सुन्दर एवं सफल प्रयोग उन्होंने अपने गीतों में ही किया है। कवि की उपमाएँ अत्यन्त ही सटीक (apt), चित्रात्मक (Picturesque) एवं विशद (elaborate) हैं। एक उदाहरण लें—

> "चिर रूपविभे, तुम आयी नहीं, गान रोये—
> ज्यों जलद-प्रहर में बिजली चमके, ध्वस्त नीड़,
> विहगों के अधर उदास, आस के गीत लिए।"

अथवा—

> वन में लतिकाएँ हिलीं, गंधलय फैली—
> ज्यों रास-नृत्य में मत्त राधिका की कँवरी के बंक खुले,
> रस-स्रोत बहा, मद में डूबी कालिन्दी-रजनी, सूना तट।"

इन उपमाओं पर विचार कर कवि की दिव्य कल्पना-शक्ति तथा अक्षय चित्र-भांडार का सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है। नित-नवीन चित्रों को सम्मुख ला सकने की क्षमता निश्चय ही एक उच्च कोटि के कवि की ही सामर्थ्य की बात है। किन्तु यह प्रवृत्ति छायावादी ही है, इसमें संदेह नहीं। हरेन्द्र जी की काव्य-भाषा में छायावादी तत्त्वों का पर्याप्त सम्मिश्रण है। निम्नलिखित पंक्तियों में यदि ध्वन्यात्मकता है—

> "तिर्यक राह, प्रवाह समय का,
> थाह न विषज्जाल घहरे!
> बकुल-गंध से भरा साँप-सा वन-पथ
> जैसे शरत् जुन्हाई भरती मन-आँखों में,
> जैसे अवचेतन मन में माधव का आगम!

जीवन-व्योम घटा-पूरित है,
मेरे गीत-विहग ठहरे !!

—जो भाषा का लाक्षणिक प्रयोग नीचे की पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

"चरण, आज दिग्दिगंत बुला रहे;
वन-उपवन, चिर बसंत बुला रहे।"

इस प्रकार हरेन्द्र जी की काव्य-रचनाओं पर विचार करने से उनके अन्तर्निहित छायावादी तत्त्वों का स्पष्टीकरण सरलतापूर्वक हो जाता है। कवि की प्रतिभा प्रौढ़ है; उसमें दिव्य ज्योति का आभास भी है।

इसी काव्य-परम्परा के दूसरे उल्लेखनीय कवि श्री रामगोपाल 'रुद्र' हैं। आत्मनिष्ठ कोमल भावनाओं की सरल अभिव्यक्ति इनकी कविताओं के प्राण हैं। 'शिंजनी' के प्रथम संस्करण की भूमिका में हंसकुमार तिवारी ने लिखा है कि, 'शिंजनी' कवि की प्रथम प्रकाशित रचना है, किन्तु, प्राथमिक नहीं। इसमें उसके वर्षों की चिन्ता-साधना की प्रौढ़ प्राप्ति है। भाषा पर कवि को अधिकार है, काव्य के लिए शास्त्रगत नियमों की जानकारी है, उसके भाव हैं, और भाव को ठीक-ठीक व्यक्त करने की कुशलता भी है। इसीसे जहाँ कवि की अनुभूतियाँ हृदय को छूती हैं, वहीं उसकी अभिव्यक्ति की कुशलता, छन्दों का चुनाव, शब्दों का सौष्ठव हमें चमत्कृत कर देता है। प्राकृतिक रहस्यों के लिए उसकी अन्तर्दृष्टि बड़ी पैनी है और उसमें गति लानेवाला वह जादूगर है। सबसे बड़ी बात यह है कि वह कविता को पंछी के गान-सी अकारण नहीं मानता; उसका एक निश्चित उद्देश्य है, और वह उद्देश्य मानवता का कल्याण है। इसीलिए, जीवन के अनेक कड़वे अनुभव होने के बावजूद, कवि की कविता में जीवन, यौवन और जागृति का संदेश है। आनन्द के साथ पाठक को इसमें उपयोगिता मिलेगी, सरलता के साथ पांडित्य मिलेगा, गीतों के साथ प्राणों की गति का आवेग मिलेगा। संगीत कविता का प्राण है। उसके बिना गीति-कविता की सत्ता ही नहीं रहती। रुद्रजी की कविता लय-प्रधान है, गेयता इसका खास गुण है।" इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि आत्मनिष्ठ भावनाओं की अभिव्यक्ति, प्रकृति-निरीक्षण की पैनी अन्तर्दृष्टि, संगीतात्मकता आदि अनेक छायावादी काव्य-तत्त्व 'रुद्र' की कविताओं की विशेषताएँ हैं। बालापन के प्रति कवि का मोह छायावादी शैली के ही सुन्दरता एवं सूक्ष्मता लिए हुए प्रकटित हुआ है—

वे कुछ दिन बचपन के मेरे!
वे कुछ दिन!!
धरती की गोदी में भूला,
भोलापन फिरता था फूल,
आँखों में सपनों का झूला—
प्राण तुहिन!"

भोलापन था, फूल कर फिरना का लाक्षणिक, अर्थ भोले बालक का विहार होगा। 'आँखों में सपनों का झूला' भी एक सूक्ष्म वर्णन ही है। प्रकृति का छायावादी वर्णन अत्यन्त ही रोचक है—

"भूधर भू से सटकर सोते जब ओढ़ शिशिर-नीहार,
सेमल के लाल दुलाई लतिकाएँ लेती साभार;

कंटक दल जबकि दलकते हैं, बनकर छंद के अपवाद—
तुमको भी क्या, विधि से लूटी, आती है कोई याद ?

छींटों की चोली-चुनरी में छत्री छिटकी मुस्कान,
चोटी पर चढ़ते फूल, फूल पर फल, फल पर पिक-यान;

कलियों के मुँह पर खिला जाते जब अलियों के अवसाद—
तुमको भी क्या, बिंध कर फूटी, आती है कोई याद ?

आमों को देख तरसते हैं बिन दामों के अनुराग;
तप के मारे, मारे चलते पीते पत्तो के भाग;

प्यासी धूली से उठती है जब 'पी-पी' की फरियाद—
तुमको भी क्या, जीवन बूटी ! आती है कोई याद ?"

उपर्युक्त उद्धरण की पंक्ति-छायावादी लाक्षणिकता, चित्रात्मकता एवं मानवीकरण अलंकार के उदाहरण हैं। इतना परिवर्तन तो अवश्य दृष्टिगत होता है कि कवि में भाषा के सहज-प्रवाह एवं सरलता पर अधिक ध्यान देने की प्रवृत्ति है। किन्तु यह प्रवृत्ति सदैव परिलक्षित नहीं होती। उसकी निम्न पंक्तियाँ इस बात का परिचय देती हैं:—

"दिशि-दिशि निशि घिरि आई; जग के दीप, जलो !
जिस रजनीमुख से छुट जूठी
ज्योति हुई लुट-लुट कर झूठी,
वह, महि की अहिता से रूठी,
विधि-विधुरा फिर आई; मग के दीप, जलो !!
घन-रण-फण का जो भव-पावस,
छाया है बन प्रेम-अमावस,
अभय शरद हो, भरति सुधारस—
नेह दृगी झिर आई; दग के दीप जलो !!"

इन पंक्तियों में कवि पूर्णतः छायावादी काव्य-शैली का प्रयोग करता हुआ दीखता है। कवि की निम्नलिखित पंक्तियों में भाषा की लाक्षणिकता ध्यानव्य है:—

घर-घर आँगन-आँगन जागा, तेरा घर अँधियार,
आली, तू भी संझा बार !
शशि शरमाए कुमुद-नयन में,
निशि शत-शत-दृग विस्मित मन में—
यह कैसी लौ मृन्मय तन में ?
इन दीपों के आगे जागे क्या नभ का शृंगार !"

यहाँ घर-घर और आँगन-आँगन का जागना, का अर्थ उनमें दीपशिखाओं के बनने की ओर संकेत करता है, निशि शत-शत दृग में तारकावलियों की ओर निर्देश है और नभ का शृंगार रजतहासपूर्ण शरदेन्दु की आभा से प्रोद्भासित तारक-खचित नील अम्बर के भाव का ही लाक्षणिक रूप में अभिव्यंजन है। तो इस प्रकार हम देखते हैं कि 'रुद्र' की कविताओं में छायावादी काव्य-शैली में ही हृदय की भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं। कवि

की आत्मनिष्ठता ही अधिक रुचिकर है। यह अवश्य है कि कवि हृदय की संवेदनशीलता के कारण कवि अपने युग की बदलती परिस्थितियों से बहुत दूर तक प्रभावित भी हुआ है: किन्तु उसकी काव्य-रचना में छायावादी प्रवृत्ति का ही बाहुल्य है। भाषा-शैली के क्षेत्र में उसने छायावाद के सभी उपादेय तत्त्व ग्रहण कर लिये हैं, किन्तु वह अधिक स्पष्ट रह सका है—यह भी निस्संदेह है। यह प्रवृत्ति अवश्य ही कुछ आधुनिकता लिए है। किन्तु फिर भी कवि अधिकांशतः छायावादी ही है—मेरी ऐसी धारणा कदाचित् साहित्यानुरागियों को मान्य होगी।

श्री नरेन्द्र शर्मा भी छायावादी काव्य-परम्परा के ही एक प्रौढ़ एवं सफल गीतिकार के रूप में परिगणनीय हैं। उनकी काव्य-पुस्तक 'प्रवासी के गीत' के प्रायः सभी गीत कवि की आत्मनिष्ठ आकुल भावनाओं के स्वस्थ प्रकटन है। कवि को प्रेम-मिलन की बातों को स्पष्ट रूप से कहने में कोई संकोच नहीं। स्वभावतः इसी कारण कवि की अभिव्यंजना में सीधापन है, सरलता एवं मोहकता है। 'प्रवासी के गीत' का निम्नलिखित गीत अत्यन्त ही मधुर बन पड़ा है—

"साँझ होते ही न जाने छा गई कैसी उदासी ?
क्या किसी की याद आई ? ओ विरह - व्याकुल प्रवासी ?
अस्त रवि - सी हो गई क्या श्रान्त म्लान विलुप्त आशा ?
क्या अभी से सोच कल को, लो बसा मन में निराशा ?
ओ निराश्रित ! नियति-शासित ! व्यथित क्यों, जब तक मही है—
धूलिकण तृण को सदा जो आसरा देती रही है।
माधवी के गंध से हो अंध क्यों अब झपी पलकें ?
याद आई क्या प्रिया की सुरभि - सींची शिथिल अलकें ?"

कवि के इस गीत में अभिव्यंजना की सरलता एवं सीधापन उसके भावों को पाठक-मन तक बड़ी सफलता के साथ पहुँचा देने की क्षमता रखती है तथापि छायावादी काव्य-शैली की लाक्षणिकता का प्रयोग तो हो ही गया है। उदाहरणार्थ "माधवी के गंध से हो अंध क्यों अब झपी पलकें ?" उद्धृत की जा सकती हैं। माधवी के गंध से पलकें अंध नहीं हो सकतीं। लक्षणा से इसका अर्थ यह होगा कि माधवी-गंध से मदमाती पलकें बंद हो गई हैं जिससे मनुष्य को आँखें कुछ देख नहीं पातीं। अस्त रवि-सी आशा का विलुप्त हो जाना उपमाओं के नवीन प्रयोग की प्रवृत्ति को प्रकट करना है।

इसी क्रम में श्री शम्भूनाथसिंह का भी उल्लेख अति आवश्यक है। सन् १९४० में 'रूप-रश्मि' को लेकर वे हिन्दी-काव्य-जगत् में प्रविष्ट हुए। इस पुस्तक के गीतों में कवि की सौन्दर्य-चेतना की सरस अभिव्यक्ति हुई है। रूप एवं सौन्दर्य के ऐन्द्रिक अनुभूतियों (Sensual sensations) को कवि ने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है; किन्तु 'प्रतीकों' एवं 'अप्रस्तुतों' के प्रयोग से उसकी कविताएँ उद्दाम वासना की कोरी अभिव्यंजना नहीं बन पातीं। प्रो० 'क्षेम' एम० ए० ने इस कवि के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है, " उनके प्रतीकों की नव्यता एवं सार्थकता में परिमार्जित रुचि एवं प्रभाव-सृष्टि का मोहक आकर्षण है।

'छायालोक' उनके गीतों का द्वितीय संग्रह है। इसी संग्रह ने हिन्दी-संसार पर उनकी गीतिकार-प्रतिभा का सिक्का जमा दिया। प्रेम एवं सौन्दर्य-सम्बन्धी अनुभूतियों और आवेगों की ऐसी रसमयी अभिव्यक्ति आज अन्यत्र दुर्लभ है .... इन गीतों में स्वर जीवन का है, उसके संघर्ष का भी। वह मीठा अर्थात् सुखद क्षणों की मधुर स्मृतियोंवाला भी है और कड़ुवा *अर्थात् दुखद स्मृतियोंवाला भी। जीवन-संघर्ष में प्राप्त सुख-दुख की अनुभूतियों का इन* गीतों में गान है, पर उनमें नग्न अभिव्यक्ति की प्रत्यक्ष उदग्रता नहीं, उस पर स्वप्निल छाया डालकर अर्थात् उन्हें कल्पना से रंजित कर प्रस्तुत किया है। .... जीवन की वासना और रूप-सौन्दर्य तथा प्रेम की उज्ज्वल प्यास शम्भूनाथसिंह के गीतों का प्राण है। उनके गीतों में न तो निवृत्ति का मिथ्या प्रदर्शन है और न प्रवृत्ति का अन्धा वेग, उनमें स्वस्थ प्रवृत्ति और जीवन तथा जीवन के मानवीय वरदानों के प्रति सहज भोग की अभिलाषा एवं सुरुचि-शालीनतामयी उदारता है। मिलन-क्षणों की ऐसी मादक एवं तृप्तिमयी अभिव्यक्ति आज के गीतिकारों में विरल है। प्रणय-पुलकित क्षणों में रात-दिन के प्रति कवि की अनुभूति दर्शनीय है —

> "दिन के प्रणय-हास ! निशि के प्यार के पाश !!
> उड़ती रही ले प्रणय - गंध हर सांस !!
> पर सत्य कब हो सका स्वप्न-अभिसार ?"

ऐन्द्रियता के लिए अंग्रेजी का कवि कीट्स विश्व-प्रसिद्ध है। आज के हिन्दी-गीतों में श्री शम्भूनाथसिंह की ऐन्द्रियता भी एक नवीन वस्तु है। उसमें तृप्ति और प्यास, भोग और संयम, भाव और कला का अनोखा संगम है। उनकी ऐन्द्रियता और रूप-सौन्दर्य की प्यास उनके गीतों में निरन्तर परिष्कृत होती गई है। प्रतीकों के प्रकाश में जीवन-यौवन की सहज अभिलाषाएँ अभिषिक्त होकर निर्धूम हो उठी हैं, निराशा और कसक पुनीत बन गई है—

> ज्योतित किया द्वार ! जीवन-शिखा वार !!
> जलता रहा आरती - दीप में प्यार !!
> पर बांध पाये किसे ये किरण-तार ?"[1]

नीचे की पंक्तियों में मानवीकरण अलंकार की छटा दर्शनीय है—

> 'सुरभि की अनिल-पंख पर मौना भाषा
> उड़ी, वन्दना की जगी सुप्त आशा,
> तुहिन-बिन्दु बनकर बिखर पर गए स्वर
> नहीं बुझ सकी अर्चना की पिपासा—
> किसी के चरण पर वरण फूल कितने
> लता ने चढ़ाए, लहर ने बहाए !'

इन पंक्तियों में प्रकृति के कार्य-कलापों का सूक्ष्म वर्णन छायावादी काव्य-परिपाटी के

---

१. छायावाद की काव्य-साधना : प्रो० 'क्षेम' एम० ए०, पृ० ७३-४-५.

ही अनुरूप हुआ है। कवि की आत्मनिष्ठता, प्रकृति-पर्यवेक्षण की प्रवृत्ति तथा उसका सूक्ष्म वर्णन, नव्य उपमाओं की खोज एवं उनका प्रयोग निश्चयपूर्वक छायावादी प्रवृत्ति है।

बिहार के तरुण कवियों मे श्री पोद्दार रामावतार 'अरुण' की कविताओं में छायावाद की अधिकांश प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। इतनी बात अवश्य है कि छायावादियों की भाँति उनके काव्य में हमें तत्सम शब्दों से युक्त भाषा का व्यवहार नहीं मिलता। भाषा की सरलता के साथ-साथ सांकेतिकता एवं लक्षणा के प्रयोग भी 'अरुण' की काव्य-शैली की विशेषताएँ हैं। उन्होंने प्रकृति को बहुत नजदीक से एवं बहुत पैनी अन्तर्दृष्टि से देखा है। उनके प्रकृति-वर्णन में द्विवेदीयुगीन स्थूलता एवं वस्तुनिष्ठता नहीं, और न प्रगतिवादियों की भाँति प्रकृति पर सामाजिक उथल-पुथल की प्रतिच्छाया ही आरोपित है; प्रकृति के सुन्दर एवं मधुर रूप की ओर ही कवि अधिकतर आकृष्ट हुआ है और उसने प्राकृतिक उपादानों में जीवन-स्पन्दन का आरोप भी किया है। चाँदनी रात का निम्नलिखित वर्णन इस दृष्टि से पठनीय है—

जल पर मरालिका नाच रही गा रही चाँदनी मतवाली !
निज वातायन को खोल-खोल तुम सुनती शशि के मधुर बोल !
बज उठती है लतिकाओं की यों रह-रहकर लज्जित ताली !!
मधुमयी यामिनी सुरभिमयी बिखरा देती जिन्दगी नयी,
भर-भर जाती है शबनम से रुपहले कुसुम-मन की प्याली !!

प्राकृतिक उपादानों में जीवन-स्पंदन के आरोपण के साथ-साथ भाषा की लाक्षणिकता भी द्रष्टव्य है। लतिकाओं की लज्जित ताली का अर्थ उनके हिलने से निकलनेवाली धीमी ध्वनि है। सब मिला जुलाकर उपर्युक्त प्रकृति-वर्णन छायावादी ही कहा जायगा। प्रकृति पर मानव-जीवन की विभिन्न अनुभूतियों का आरोपण तो और भी मोहक और आकर्षक प्रतीत होता है—

कमला की कोमल पलकों पर अँगड़ाई लेती है आशा,
नयनों मे भीनी खुशबू भर मुस्काती रहती अभिलाषा !
चाँदनी स्निग्ध धो देती है उर के लहराते आँचल को,
प्राणों का गीत सुनाती है भावुक प्राणों की परछाई,
कुछ देख लिया करती चुपके अन्तर की आँखें अकुलाई।"

प्रकृति-पर्यवेक्षण की अन्तर्दृष्टि से संवलित होने के साथ-साथ कवि को मानव-जीवन का रूप-सौन्दर्य भी आकृष्ट करता है। नायिका के रूप वर्णन में उसकी सौन्दर्य-प्रियता की अभिव्यंजना स्वयं हो जाती है। उसने रीतिकालीन कवियों की भाँति केवल उसके ऐन्द्रिक सौन्दर्य-वर्णन तक ही अपने को सीमित नहीं रखा है। पन्त की 'भावी पत्नी के प्रति' अथवा 'अप्सरा' आदि कविताओं की भाँति कवि ने प्रकृति से विभिन्न उपमाओं को चुना है और उन्हीं के प्रयोग के सहारे अपनी नायिका का अत्यन्त ही आकर्षक रूप-वर्णन किया है—

तुम उतर पड़ी लेकर सुन्दरि, साकार स्वर्ग की सुन्दरता !

चाँदनी-स्नात तन अति उज्ज्वल मन विकल कमल से भी कोमल—
तुम स्वयं निसर्ग-परी निर्मल, कुसुमित है कितनी बाहु-लता !!
बालों पर बिखरा है वसंत हँसता उर आँगन में अनंत,
मुस्करा रहा है दिग्दिगन्त इतनी है मुख पर मोहकता !
है गीत-भरा स्वर का निर्झर है प्रीति-भरा चित्रित अन्तर,
तुम हो शकुन्तला-सी सुन्दर ! ओ शरद-निशा की निर्मलता !!

नायिका को शरद-निशा की निर्मलता कहने का लाक्षणिक अर्थ होगा कि वह शरद-निशा जैसी गोरी एवं स्वच्छ है। प्रेयसी के रूप-वर्णन की, और इस अभिव्यंजना-शैली में, परम्परा निश्चय ही छायावादी काव्य-परिपाटी के अन्दर आ जाती है। इन पंक्तियों को पढ़ कर पन्त की 'भावी पत्नी के प्रति' शीर्षक कविता की स्मृति स्वतः मानस-पट पर रेखांकित हो उठती है। कवि की बाँसुरी अपना परिचय स्वयं अत्यन्त ही कोमल शब्दावलियों में देती है—

मैं किसी के विमल उर की एक पुलकित बाँसुरी हूँ !
तान में मुस्कान आती गान में सपने बुलाती—
मैं किसी के व्योम पथ में चन्द्र-मधु छवि रसभरी हूँ !
सुरभि उड़ती आ रही है-सुरभि उड़ती जा रही है—
मैं किसी की स्वप्न सुधि-पर चाँदनी की निर्झरी हूँ।

श्री श्यामनन्दन प्रसाद 'किशोर' को भी इसी परम्परा का कवि कहना उचित होगा। कवि की भाषा अधिक स्पष्ट है, लेकिन कोमल और संगीतमय भी। कवि छायावादियों की भाँति ही सभी जगह एक ही सत्ता का आभास पाता है जिसकी अभिव्यंजना उसने निम्नलिखित पंक्तियों में की है—

"तुम नयन में सजल, प्यासे प्राण में भी !
मदिर तंद्रा-सी मिलन के प्रात में हो,
जागरण-सी तुम विरह की रात में हो,
भूल की ही कठिन निठुराई नहीं तुम
हो कली के दर्द की मुस्कान में भी।

इस प्रकार एक सर्वव्याप्त सत्ता की भिक्षा कवि को भी होती है और विभिन्न उपमाओं के सहारे वह उसे व्यक्त करता है। पन्त, प्रसाद, निराला अथवा महादेवी की काव्य-भाषा की भाँति उसमें संस्कृत के शब्दों की प्रांजलता तो नहीं लक्षित होती, किन्तु उसकी भाषा में एक सहज बहाव है, एवं हृदय को आकृष्ट करने वाली संगीतमयता है। कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकृति और अपने जीवन में एक साम्य का अनुभव किया है—

मैं पावस की संध्या कातर—
ऊमस में मेरी विह्वलता, विद्युत् में तन मेरा जलता;
किन्तु नयन के कोरों में है उमड़ रहा करुणा का सागर।

इन पंक्तियों को पढ़ कर महादेवी के सांध्य गीत की निम्नलिखित पंक्तियाँ याद आती हैं—

"प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण-अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रंगीले घन।"

कवि ने अत्यन्त ही काव्य-पूर्ण शैली में अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुए मिलन-यामिनी का चित्रण किया है—

"तुम हँसती, झड़ती शेफाली।
चुपके मिलन-यामिनी में खिल श्वांस-सुरभि से पल-पल हिल-हिल,
लद जाती कामना कली से
जीवन की हर डाली-डाली !
तुम हँसती, झड़ती शेफाली !!
तुम मिलती, मिलता जीवन है, हँसता प्राणों का उपवन है,
धुल जाती है हास-रश्मि से
कठिन निराशा की अँधियाली !
तुम हँसती, झड़ती शेफाली !!"

इस प्रकार कवि के गीतों में सुमधुरता एवं कोमलता, भावावेगों की सूक्ष्म एवं मनहर काव्य-शैली में अभिव्यंजना, प्रकृति का मानवीकरण आदि कुछ ऐसे गुण हैं जो उसे छायावादी काव्य-परम्परा के कवि होने की धाराणा को पुष्ट करते हैं।

इसी क्रम में श्री धर्मवीर भारती का भी उल्लेख अनिवार्य है। प्रो० क्षेम की पंक्तियों में 'श्री धर्मवीर भारती की कविताएँ ··· पान-फूल-सी हल्की, कल्पनाओं के मलयज बयार से झीमती सहज, सरल, सलक्ष्ण एवं रोमानी होती हैं। उनकी अनुभूतियों में उनके सहज-स्थित मुख के ऊपर झलमलाने वाले धूप चश्मे की-सी ही शाद्वलता है, हरियालापन है। भारती के गीतों में उनकी ताजी आँखों से देखी गई प्रकृति अपनी विविधता से जैसे उतर आई हो,—कच्ची किरणें, बीमार किरण, ज्योत्स्ना की कली, गुलाबी पँखुरी, सुरमुई आभा, उदास जलपरी, चाँदी की बालू, केसरिया सूरज ! संस्कृत, उर्दू और बोलचाल की त्रिवेणी से लिया गया उनकी भाषा का पुण्य जाल हिन्दी के भावी गीतों के लिए तीर्थराज का प्रसाद बन जाए तो क्या आश्चर्य !! उनकी भाषा में विश्लेषण उसके प्राण होते हैं, जिनको वे अपनी अनुभूति के रंग और कल्पना की चटक से सजीव बना देते हैं। द्वितीय सप्तक के पृ० १९० पर आई उनकी 'उदास तुम' शीर्षक कविता उनके अप्रस्तुतों की ताजगी, उनकी अनुभूतियों की भोली पवित्रता और उनकी मासूम मनुहारों का सफल नमूना है। 'तुम चली प्राण जैसे धरती पर लहराए बरसात'—गीत में उनकी कल्पना की निर्माण-विराटता और विशालता साथ ही उसमें, भाव के साथ उसके अनुपातिक

की निर्वाह-क्षमता भी दर्शनीय है। प्रायः विशाल चित्रों के ग्रहण करने पर चित्रपटी की विशालता के कारण, उनमें उस चित्र के प्रेरक मूल भाव का अभाव हो जाता है, पर इस गीत में 'अप्रस्तुतों' के छोरों में 'प्रस्तुत' का रूप अत्यंत सुस्पष्ट है। भारती की भावुक कल्पना अत्यंत तरंगशील है। आज के यथार्थ विकल और समस्याओं के पाषाण से हाँफने वाले इस युग में कल्पना की ऐसी अछूती उचाइयाँ अत्यन्त विरल हैं। इसका कारण भारती के उज्ज्वल व्यक्तित्व की सहज-सरल तरलता है। लगता है, भारती एक स्रोत है—सदा बहता हुआ और गँदलेपन से दूर ? उनकी यह मुक्त-प्रवाहशीलता और सीमाओं में उलझ-कर रुक न जानेवाला उत्साह भारती को कच्चे काँच-सा निर्मल बनाए हुए है, नवीनता-सा कोमल और कच्चे लोहे-सा दृढ़। भारती रूप के फिरोजी ओठों पर ही बर्बाद हो कर रह जानेवाले कवि नहीं, वह तो उनकी हार्दिक सत्यता का प्रमाण है; उनकी मुक्त कल्पना युग की तलैटियों और इतिहास की उचाइयों तक समान रूप से सचरण करती है—

'सृजन की थकन भूल जा देवता !
अभी तो पड़ी है धरा अधबनी,
अभागे पलक में नहीं खिल सकी
नवल कल्पना की मधुर चाँदनी।
अभी अधखिली ज्योत्स्ना की कली
नहीं जिन्दगी की सुरभि में सनी—
अभी तो धरा है पड़ी अधबनी
अधूरी धरा पर नहीं है कहीं
अभी स्वर्ग की नींव का भी पता।"

ताजे अप्रस्तुतों के भीतर से झाँकती हुई एक ताजी सौन्दर्य-दृष्टि देखिए—

'इन फिरोजी होठों पर बर्बाद मेरी जिन्दगी !
गुलाबी पाँखुरी पर एक हल्की सुरमई आभा,
कि ज्यों करवट बदल सोती कभी बरसात की दुपहर !
इन फिरोजी होठों पर।"[1]

संभव है, प्रो० 'क्षेम' की इन पंक्तियों में आपको यत्र-तत्र अतिरंजना का आभास मिलेगा; छायावादी कवि की आलोचना करते-करते आलोचक छायावादी कवि बन जाता है, उसके गद्य में छायावादी कोमलता एवं सूक्ष्मता का सन्निवेश हो गया है। इतना होने पर भी विद्वान आलोचक ने 'भारती' की कविताओं के जिन गुणों की ओर संकेत किए हैं वे वास्तव में 'भारती' की विशेषताएँ अवश्य हैं। भाव, भाषा, अभिव्यंजना-विधि सभी दृष्टियों से विचार करने पर कवि छायावाद की काव्य-परम्परा में सहज ही परिगणनीय बन जाता है।

श्री रामचन्द्र 'भारद्वाज' की कविताएँ भी छायावादी काव्य के अनेकानेक तत्वों से

---

१. छायावाद की काव्य-साधना : श्री प्रो० 'क्षेम' एम० ए०, पृ० ७१—८०।

संवलित हैं। कवि के भावों में आवेग है; उसका हृदय संवेदनशील है और उसकी अभिव्यक्ति अत्यन्त ही सशक्त। उर्दू और हिन्दी के शब्दों के सम्मिश्रण से बनी उसकी काव्य-भाषा में ओज, प्रवाह और संगीतमयता है। अनुभूतियों की सच्चाई, सूक्ष्म अभिव्यंजना-शक्ति की सफलता एवं उदात्त कल्पनाशीलता कवि के काव्य के प्राण हैं। उसकी कविताओं में मधुर मिठास भी है और अद्भुत् मोहकता भी —

भावना के राजहंसों की धवल पांतें
रुपहली चाँदनी धोया
अगुरु की धूम जैसी

इन पंक्तियों में नव्य उपमानों की ताजगी यदि प्रफुल्लित करने की क्षमता रखती है तो निम्नलिखित पंक्तियों में उदास नायिका के लौटने की सहज-सरल अभिव्यंजना चित्ताकर्षक है—

''वहाँ उस लताकुंज के पास मौन अभिसारिका,
रात भर रही देखती राह किसी की तारिका,
न आया लेकिन मन का मीत निराशा छा रही
न फिर मिलने की खा सौगंध लौट वह जा रही।
कुहासा ही जाता रंगीन सुबह की धूप से,
निकल पड़ता है, मादक रूप अनन्त स्वरूप से,
कोहरे के जाकर नजदीक परस की चाह है
मगर मंजिल पीछे रह सामने राह है।
और मैं देख रहा असहाय याद तेरी आकर मदहोश मुझे है घेरती!
तुम्हारी सुधि की पंचम तान नयन की बेसुध सी बाँसुरी शून्य में टेरती।
बहुत आती है तेरी याद मोगरे की ले मादक गंध हवा में तैरती;
गगन में छाती तेरी याद सितारों का लेकर संवाद चाँद को छेड़ती।

इन पंक्तियों में भाषा का स्वच्छन्द प्रवाह अत्यन्त ही आकर्षक है और वर्णनात्मक शैली की सूक्ष्मता के साथ-साथ संगीतात्मकता एवं मोहक काल्पनिकता का भी आकर्षक सम्मिश्रण हुआ है। कवि उर्दू में भी सुन्दर शायरी करने में सूक्ष्म है। हिन्दी में भी उसकी कविताओं में कहीं-कहीं उर्दू के छंद प्रयुक्त हुए हैं। अपनी तन्हाई की अभिव्यक्ति कवि ने उर्दू के छंद में ही बहुत ही सशक्त ढंग से की है; उसकी वाणी में मधुरता है और है एक अबन्ध बहाव। पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

गगन में चाँद है मोहक, धारा पर चाँदनी है,
कमल-वन के लिए लेकिन कहीं कुछ भी नहीं है
कुमुदिनी का हँसे संसार, मैं कब रोकता हूँ,
सितारों का चले व्यापार, मैं कब रोकता हूँ,
नशीली चाँदनी का ओठ झुक जाए धरा पर
छलक जाए निशा का प्यार, मैं कब रोकता हूँ

पवन उन्मन है आतुर जुही के चुम्बनों से
विकल मन के लिए लेकिन कहीं कुछ भी नहीं है

कवि ने आत्मनिष्ठ भावनाओं की अभिव्यक्ति तो अपनी अधिकांश कविताओं में की ही है, किन्तु वह प्रगतिवादी विचार-धारा से भी कहीं-कहीं प्रभावित हुआ है। किन्तु प्रगतिवादी विचार-स्फुरणों को अभिव्यजित करते समय भी कवि की छायावादी अभिव्यजना-शैली खत्म नहीं हो पायी है। पन्त ने जिस प्रकार 'देखो भू को, जीव प्रभू को' शीर्षक कविता में कवियों का ध्यान कल्पना-जगत से मोड़ कर वास्तविक संसार की सुषमाओं की ओर आकृष्ट करना चाहा है, उसी प्रकार कविवर भारद्वाज ने भी 'धरा की गोद' शीर्षक कविता में कवियों का ध्यान पृथ्वी की ओर खींचने की चेष्टा की है। पंक्तियाँ हैं—

न तैरो मेनका के साथ केवल तुम हवाओं में
धरा की गोद भी मैं चाहता हूँ कुछ तुम्हें भाए!
किसी की शर्बती आँखें
किसी के मद-भरे सपने
तुम्हारी चेतना के पंख में गति बन समा जाएँ।

"मेन का के साथ हवाओं में तैरना" कल्पना-लोक में विचरण करने के भाव का प्रतीकात्मक प्रकटन है और शर्बती आँखें' और 'चेतना के पंख' नूतन उपमाओं के प्रयोग के उदाहरण है। 'पन्त' 'ताजमहल' के वर्णन में सामाजिक वैषम्य को चित्रित करते-करते अपनी पूर्वकालिक कविताओं की मधुरिमा को खो बैठते हैं, किन्तु भारद्वाज की 'ताजमहल' शीर्षक कविता अत्यन्त ही मधुर है—

निर्जन निशीथ
सूना उपवन
बस आती याद तुम्हारी
ओ पत्थर के निर्मम प्रतीक
मुमताज कहाँ है बोलो
है शाहजहाँ किस ओर
जरा देखो नजरों को खोलो
ओ ताजमहल!
ओ ताजमहल, सुनसान रात में
चाँदी से आँखें धोकर
गीली पलकों से कितनी बार निहारा तुझको
तेरे पियवा से स्वच्छ, श्वेत आनन को
कह सकी न पर कुछ
यमुना की लघु लहरें
कह सका न कुछ भी झिलमिल फूल किनारा ......

इन पंक्तियों का कवि प्रगतिवादी न कहा जाकर निश्चित रूप से छायावादी काव्य-परम्परा का कवि कहा जाना चाहिए। भारद्वाज एक भावुक कवि हैं, उनमें कल्पना की अतिशयता है और प्राकृतिक रहस्यों को समझ सकने की कवि-सुलभ सूक्ष्म आन्तरिक दृष्टि !!

'साही' जी की चर्चा भी इस प्रसंग में आवश्यक प्रतीत होती है। उनके सम्बन्ध में प्रो० 'क्षेम' के शब्द हैं, " 'साही' में हिन्दी की वर्तमान गीत-धारा ने प्रकृति के मनोरम चित्रों और सहज रूपों के प्रति मस्ती और भावुकता से भरी हुई एक चित्रकार की रंगमयी दृष्टि पाई है। प्रभात, वसन्त आदि पर लिखे गए उनके गीत अपने कल्पना-रंगों और आनुभूतिक दीप्ति में विशुद्ध स्वानुभूति-निरूपक गीतों से कम तल्लीनकारी नहीं हैं। उनमें बहिर्वादिनो अन्तर्मुखीनता है, अतएव उनकी समस्त कल्पनाशीलता भावुकता और विशुद्ध वैयक्तिक अनुभूतियों के अंकन में न उलझकर बाह्य जगत् का अपने ही आन्तरिक वैभव से शृंगार करती है। इसे 'मानव-भावाक्षिप्त' वर्णन की कोटि में नहीं ले सकते, क्योंकि यहाँ प्राकृतिक संवेदना का हेत्वाभास नहीं है, जहाँ भोक्ता अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों के रंग में बाह्य सृष्टि को रंग देता है, वरन् यहाँ बाह्य सृष्टि के ही सुन्दर-समाकर्षक दृश्य अपने प्रभाव से कवि के मानस को प्रभावित कर देते हैं और वह उल्लसित होकर अपनी पूर्व संचित राशि से उनका वर्णांकन करने लगता है, उन्हें सरूपता देने लगता है। साही जी की कल्पना भी बड़ी समृद्ध है, किन्तु वह भारती जी की कल्पना की भाँति प्रकाश की लपकें (Flashes) नहीं छोड़ती चलती, वरन् वह सूक्ष्मता के साथ चित्र-संगुम्फन करती है। भारती जी की कल्पना में यदि उन्मुक्त सीमाहीन विस्तार होता है, तो साही जी की कल्पना मे विशिष्ट एवं ससीम रूपाकार। यह बात भारतीजी की उक्त पंक्ति 'ज्यों करवट बदल सोती कभी बरसात की दुपहर, इस फिरोजी होठों पर से साही जी की निम्न पंक्ति की तुलना करके स्पष्ट की जा सकती है—

धरा खोलती है मदिर मौन पलकें कहीं गा रहा दूर कोई प्रभाती !
विभा ने क्षितिज के अरुण द्वार खोले प्रभा ने खिलाए कनक-पुष्प भोले !
मलयवात की रेशमी डोरियों पर, मचल से उठते कल्पना के हिंडोले !
सुरभि-पल्लवित हो गगन मुस्कुराता चलीं रश्मियाँ ज्योति के गीत गातीं।

साही जी की भावुकता में सवेग का वेग होता है और भारती जी की भावुकता में द्रावण; इसी से साही जी का आवेग कभी-कभी दिवा-स्वप्न की कोटि में पहुँच जाता है। प्रकृति के दृश्यों की सहज सुषमा साही जी की मस्ती भरी भावुकता के वेग में कितनी रंगीन हो उठी है—

धरती का बेसुध नवयौवन !
गंधर्व - कुटी के द्वार खुले उस ओर गगन की सीमा पर !
सुर - बालाओं का स्वर आया मलयानिल लहरों में बहकर !
टीलों पर सोयी धूप हँसी हो गए गुलाबी गाल सरल !
जो दबा रहा, वह दब न सका, रस फूट पड़ा पाषाणों मे।"

उर्दू के छन्दों की भी रवानी कितनी मस्ती के साथ हिन्दी में सँवर रही है :—

"लहरा रहा है मुझ पर किस जिन्दगी का आँचल,
जो उठ रहे दृगों में छवि के हजार बादल !

कुछ इस तरह डुबा दे कि न फिर मिटे खुमारी,
चलता रहूँ जहाँ तक बजती रहे ये पायल ।
हाँ मुस्कुराती आओ ओ धूप की कुमारी,
यह आखिरी सफर है, यह आखिरी कहानी ।"[1]

इन कवियों के अलावे बहुत से और कवि हैं जिन्हें हम छायावादी काव्य-परम्परा के ही कवि के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। सर्व श्री महेन्द्र, गिरिधर गोपाल, प्रकाश, मुग्ध, नर्मदेश्वर, अशान्त, प्रेमप्रकाश गौतम, श्री पलजीत सिंह 'विरागी', भ्रमर, 'दिनेश' गंगा प्रसाद पांडेय आदि कवियों में छायावाद का ही स्वर प्रधान है। यह अवश्य है कि उनमें भाषा की सरलता और स्पष्टता के साथ-साथ उर्दू-संस्कृत-मिश्रित शैली का प्रयोग है, किन्तु छायावादियों की भाँति ही उनमें भी वैयक्तिकता, प्रतीकात्मकता, स्वानुभूति-प्रकाशन की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति, प्रकृति के विभिन्न अवयवों पर मानव-चेतनारोपण, ध्वन्यात्मकता, मूर्तिमत्ता, सांकेतिकता, लाक्षणिकता आदि की ही बहुलता मिलती है जिसके कारण हम उन्हें छायावाद की काव्य-परिधि में समेट सकते हैं अवश्य अन्य कवियों में सब श्री 'आलोक', 'रमण', अवधेन्द्र देव नारायण, 'इन्दु', श्री रमेशचन्द्र झा, हरेन्द्र भूषण वर्मा, श्री सत्येन्द्र कुमार, नर्मदेश्वर प्रसाद, 'सेवक', श्री अखौरी ब्रजनन्दन प्रसाद, सत्य नारायण, श्री सुरेन्द्र वर्मा, जगदीश नारायण चौबे, श्री बसंत कुमार, आदि भी छायावादी काव्य-परम्परा के अन्दर ही समाविष्ट हो जाते हैं।

छायावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दी मे प्रगतिवाद का जन्म हुआ जिसमें समाज के नग्न चित्रों एवं उसकी उलझी हुई समस्याओं का नग्न वर्णन ही अभीष्ट बन गया। यह ठीक है कि उसने हिन्दी-काव्य को एक नवीन संसार की ओर उन्मुख किया, एक नूतन भाव-धरा पर आहूत किया एवं उसे एक नव्य विस्तार दिया। इन कवियों में आत्मनिष्ठता का उतना अतिरेक नहीं; वे अहम् की सीमा से निकल कर विश्व की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक समस्याओं एवं मानव-समाज की वास्तविक परिस्थितियों के चित्रांकन में ही अधिक प्रवृत्त हो गए। किन्तु इस वाद के प्रमुख नेता श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' की आदि कृतियों ('रेणुका' और 'रसवंती') में भी छायावादी तत्व के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। 'रेणुका' और 'रसवंती' के अधिकांश गीतों में आत्मनिष्ठता है, हृदय के आकुल भाव-आलोड़नों एवं संवेदना वेगों का प्रकटन है। 'हुंकार' की ही निम्नलिखित पंक्तियों में—

"पहन मुक्ता के युग अवतंस, रत्न-गुम्फित खोले कचजाल;
बजाती मधुर चरण-मंजीर आ गई नभ में रजनी-बाल।
झींगुरों में सुन शिंजन-नाद, मिलन आकुलता से द्युतिमान,
भेद प्राची का कज्जल-भाल बढ़ा ऊपर विधु वेपयमान!"

अथवा :—

"चाँदनी में छिप किसकी ओट पुष्पधन्वा ने छोड़े तीर ?
बोलने लगी कोकिला मौन, खोलने लगी हृदय का पीर ?

1. छायावाद की काव्य-साधना : प्रो० 'क्षेम' एम० ए० पृ० ८२-८३-८४

नताएँ ले द्रुम का अवलम्ब सजाने लगी नया शृंगार;
प्रियक-तरु के पुलकित सब अंग, प्रिया का पाकर मधुमय भार !
नहीं यौवन का श्लथ आवेग स्वयं वसुधा भी सकी सँभाल;
शिराओं का कम्पन ले दिया सिहरती हरियाली पर डाल।
आज वृन्तों पर बैठे फूल, पहन नूतन कर्बुर परिधान;
विपिन से लेकर सौरभ-भार चला उड़ व्योम-ओर पवमान।"

क्या छायावादी मनोवृत्ति का प्रकृति-प्रेम सौन्दर्यमिश्रित सूक्ष्म काव्य-शैली में व्यक्त नहीं हुआ है ?? क्या छायावादियों की भाँति ही दिनकर ने प्रकृति पर मानव-चेतना का आरोप नहीं किया है ?? बातें स्वतः स्पष्ट हैं। प्रारम्भ में दिनकर भी छायावादी काव्य-परम्परा के ही एक कवि थे, किन्तु बाद में अपनी विलक्षण प्रतिभा से कवि ने अपने लिए एक नूतन काव्य-मार्ग बनाया।

इन दिनों हिन्दी काव्य-जगत में प्रयोगवाद की कविताओं की धूम है। प्रयोगवादी कवियों ने भी अपने लिए एक नूतन काव्य-पथ का निर्माण किया है और उसी पर वे अग्रसर भी हुए हैं, किन्तु प्रयोगवादी रचनाओं और छायावादी रचनाओं में भी बहुत साम्य है जिसकी विशद चर्चा 'छायावाद और प्रयोगवाद' शीर्षक निबन्ध में हो चुकी है। यहाँ मैं इस साम्य के दिग्दर्शन के लिए श्री गिरिधर गोपाल की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करता हूँ जिसमें शब्द-चयन और उनके प्रयोग में कुछ नवीनता तो दिखाई पड़ती है। प्रकृति का मानवीकरण अलंकार के सहारे ही कोमल-कमनीय कल्पना-सवलित वर्णन हुआ है —

उदयाचल से किरन-धेनुएँ हाँकता चला आ रहा वह प्रभात का ग्वाला !
पूँछ उठाए चली आ रही क्षितिज-जंगलों से टोली !
दिखा रहे पथ, इस भूमि का सारस सुना रहे बोली।

प्रगतिवादियों ने भी आत्मनिष्ठ भावों को व्यक्त किया है और वह भी उपमानों के सहारे ही; किन्तु यदि छायावादी उपमान अधिकतर सूक्ष्म थे तो प्रगतिवादी कवियों के उपमान स्थूल। उदाहरणार्थ, गिरिजाकुमार माथुर की निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं —

"जीवन में लौटी मिठास है, गीत की आखिरी मीठी लकीर-सी
वैभव की वे शिलालेख-सी यादें आतीं एक चाँदनी भरी रात उस राजनगर की
रनिवासों की नंगी बाँहों की रंगीनी वह रेशमी मिठास मिलन के प्रथम दिनों की।"

तो इस भाँति यह परिलक्षित है कि छायावादी काव्य की परम्परा अब भी जीवित है और रोज वैसी कविताएँ लिखी जा रही हैं। यहाँ सब कवियों का नाम गिनाना तो सम्भव नहीं, किन्तु, इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि आज अनेकानेक कवियों की रचनाओं में छायावादी काव्य-प्रवृत्ति प्रश्रय एवं अभिव्यंजना प्राप्त कर रही है।

छायावाद-विषयक आलोचना-साहित्य

छायावादी काव्य-धारा के प्रवहमान होते ही, संयोग की ही संयोग की ही बात समझिये, उसकी आलोचना का भी कार्य प्रारंभ हो गया। आरंभ में, उस प्रकार की कविताओं का, जिसे व्यंग्य मे 'छायावाद' का नाम दिया गया था, घोर विरोध हुआ और कोई भी दुर्बल व अशक्त काव्य-प्रवृत्ति, सहज, समाप्त हो जा सकती थी। किंतु अनेक विरोधों के बावजूद, छायावाद-काव्य जिन्दा रह सका और यही उसके महत्व का प्रमाण है। छायावाद के विरुद्ध आरोपित आक्षेपों के उत्तर स्वय उसके कवियों ने दिये और बाद में उसकी सम्यक् आलोचना का भी अवसर आया। छायावाद-काव्य का अध्ययन व विवेचन किया गया और आज तो उस पर अनेक अच्छी समीक्षाएँ उपलब्ध हैं।

छायावाद-विषयक आलोचना-साहित्य को समझने के लिए उसके इतिहास को हम तीन स्पष्ट भागों मे विभक्त कर सकते है। सबसे पहले उसके इतिहास का वह युग हमारे समक्ष आता है जिसे "विरोध-काल" कहना चाहिये। इस समय में छायावाद को समझने और समझाने की कोशिश नही की गई; उसका बिल्कुल विरोध किया गया। छायावाद के उपहास और निन्दा की भद्दी आलोचनाओ का आरंभ, निर्भीक होकर कहना पड़ता है, श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी की रचनाओं से हुआ। उन्होंने 'छायावाद के छोकड़ों' की कटु निन्दा की और उन पर अनेक असभ्य व असंस्कृत आक्षेप भी किये। लाला भगवान दीन, बनारसीदास चतुर्वेदी, ज्योतिप्रसाद 'निर्मल' भी छायावाद के प्रति कुरुचिपूर्ण आलोचना का कूड़ा-कर्कट जमा करते रहे। ज्वालाराम 'विलक्षण' ने भी छायावाद के विरोध में ही अपनी विलक्षणता का परिचय दिया। पद्मसिंह शर्मा का भी काम निरतर व्यंग्य-विरोध से छायावाद का उपहास करना था। 'सुधा', 'माधुरी' और 'अभ्युदय' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं को अस्त्र बनाया गया और छायावाद का डटकर विरोध किया गया। उस समय का साहित्यिक फैशन ही छायावाद को खिल्ली उड़ाना था। इतना ही नही, छायावाद के विरोध मे काशी से "छायावाद" पत्रिका भी निकाली गई जिसके पृष्ठ छायावादी कवि व कविताओं के प्रति व्यंग्य-विनोद और कार्टूनों से भरे रहते थे। 'चाँद' और 'विशाल भारत' ने भी छायावाद का निरंतर विरोध किया। इस प्रकार ऐसा लगता है कि यह समय ही छायावाद की किस्मत में अच्छा नही बदा था। विद्वान् आलोचक श्री रामचंद्र शुक्ल भी छायावाद का निष्पक्ष विश्लेषण एवं मूल्यांकन नही कर सके और छायावाद-विषयक उसकी आलोचनाओं ने अन्य अनेक भ्रांतियाँ ही उत्पन्न कीं।[1] "हिंदी साहित्य का इतिहास" नामक उनके ग्रंथ के कतिपय पृष्ठ, इस दृष्टि से पठनीय हैं।

छायावाद के इतने विरोध होने पर भी उसके कवि मैदान छोड़कर भागने वाले नहीं थे। उन्होंने विरोधों से डटकर मोर्चा लिया और स्वय अपनी व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं।

---

१. विस्तार-पूर्वक विवेचन के लिए पढ़िए "हिंदी काव्य में छायावाद" पृ० ६६—७८

प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी ने खुद लेखनी उठाई और छायावाद को समझाने का प्रयास किया। इस प्रसंग में प्रसाद जी का "काव्य, कला व अन्य निबंध" तथा 'इन्दु' पत्रिका मे प्रकाशित उनके लेख दृष्टव्य है। पंत के 'पल्लव' एवं महादेवी को 'यामा' की भूमिकाएँ भी विशेष ध्यातव्य हैं। किंतु विरोधियों पर वज्र प्रहार किया निराला ने, हिंदी कविता के इतिहास मे जिसकी कोई अन्य मिसाल नही है। 'मतवाला' में निराला ने छायावाद के विरोधियों को मुँह तोड़ उत्तर दिया। छायावादी कवियों के इस प्रकार समझाने व अपने विरोधियों को दो-टूक उत्तर देने को वजह से कुछ लोग अब इनकी ओर आकृष्ट होने लग गए थे। नई पीढ़ी के साहित्यकारों और विद्वान आलोचकों ने छायावाद का अध्ययन आरंभ किया और तब वे एक दूसरे ही निष्कर्ष पर पहुँचे। उन्हें छायावाद-काव्य की विशेषता और महत्ता का ज्ञान हुआ और अपने विचार उन्होंने खुलकर अभिव्यक्त किये। ऐसे लोगों मे प्रमुख थे—श्री शिवाधार पाण्डेय, श्री रामनाथ सुमन, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पं० नन्ददुलारे वाजपेयी इत्यादि। पं० कृष्णविहारी मिश्र, श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" और पं० मातादीन शुक्ल ने भी छायावाद का पक्ष लिया। इस परिवर्तित द्वितीय-युग को छायावाद का पोषण-काल कहना चाहिये। श्री शिवाधार पाण्डेय, श्री रामनाथ सुमन, पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' पं० कृष्णविहारी मिश्र आदि आलोचकों ने छायावाद का पक्ष लेकर उसके आरिम्भक विकास मे पर्याप्त सहायता की।

छायावाद-विषयक आलोचना-साहित्य के आरंभिक इतिहास में पं० नन्ददुलारे वाजपेयी की आलोचनाएँ विशेष महत्त्व की अधिकारिणी हैं, इसमें सन्देह नही। 'आधुनिक साहित्य,' और "हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी" शोर्षक उनके पुस्तकाकार ग्रंथों में छायावाद-विषयक सामग्री, इस दृष्टि से, विशेष उल्लेखनीय है। छायावाद क्या है, उसकी मुख्य विशेषताएँ और उपलब्धियाँ कौन-सी है, उसका अभिव्यंजना-सौन्दर्य और प्रधान जीवन-दर्शन के आकर्षण क्या हैं, इन सभी तथ्यों का मार्मिक उद्‌घाटन पहले-पहल पं० नन्ददुलारे वाजपेयी की समीक्षाओं द्वारा ही संभव हुआ। किंतु इतना सब होते हुए भी वाजपेयी जी की आलोचना में कहीं भी सस्ती भावुकता और झूठी प्रशंसा के आलोचनोचित दोष नही हैं, यह एक श्रेय की बात है।

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की छायावाद-विषयक आलोचनाएँ उसके "कवि और काव्य" तथा 'संचारिणी' आदि पुस्तकों में देखो जा सकती हैं। छायावाद विषयक उनकी आलोचनाएँ प्रशंसाभिभूत गद्‌गद कंठ के उद्‌गार है; युक्तिसंगत व्याख्या एवं तटस्थ विश्लेषण का अभाव जिसकी सहज विशेषता है। फिर भी, उनकी समीक्षा का ऐतिहासिक महत्त्व है, यह तो कहा ही जा सकता है और इसलिए उसे हम छायावाद के प्रेमी पाठकों से पढ़ने का अनुरोध कर सकते हैं। इसके उपरांत छायावाद के आलोचकों में प्रमुख हैं—डॉ० नगेन्द्र, डॉ० सुधीन्द्र, डॉ० केसरीनारायण शुक्ल, श्री शंभूनाथ सिंह, श्री नामवर सिंह, प्रो० क्षेम, श्री विश्वंभर 'मानव', डॉ० इन्द्रनाथ मदान, पं० गंगाप्रसाद पाण्डेय, श्रीमती शचीरानी गुर्टू

और डॉ० प्रेमशंकर तथा श्री नलिन विलोचन शर्मा। इन विद्वानों की पुस्तकें और प्रबंध छायावाद के प्रेमियों व पाठकों के लिए विशेष उपयोगी हैं। डॉ० नगेन्द्र की पुस्तक है—'आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ।" १२४ पृष्ठों की यह समीक्षा-पुस्तक गौतम बुक डिपो, दिल्ली से सन् १९५५ में प्रकाशित हुई। प्रारंभ में, इसमें, दस पृष्ठों का छायावाद के आरंभ की पृष्ठभूमि, उसकी विशेषताएँ, मूलदर्शन, व तत्सम्बन्धी भ्रांतियों का निराकरण करते हुए विद्वान् आलोचक का निष्कर्ष है कि 'छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव-पद्धति है : जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।"[१] विवेचन गंभीर व स्पष्ट है।

डॉ० सुधीन्द्र ने भी "हिंदी कविता में युगांतर" शीर्षक ५२२ पृष्ठों की अपनी विशाल पुस्तक में छायावाद पर विचार किया है और बताया है कि आत्मानुभूति, अंतर्वेदना, लाक्षणिक भंगिमा और चित्रभाषा व चित्रराग छायावाद, की प्रधान विशेषताएँ थीं।[२] रहस्यवाद और छायावाद, प्रेम और वासना, सर्व चेतनवाद या प्रकृति-दर्शन पर भी विवेचन किया गया है और सामग्री अत्यंत उपयोगी है। विचार स्पष्ट और बोधगम्य है तथा विवेचन में गंभीरता की झांकी मिलती है।

"आधुनिक काव्यधारा" और "आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत" शीर्षक डॉ० केसरीनारायण शुक्ल की दो पुस्तकें भी छायावाद-विषयक आलोचना-साहित्य के अध्ययन-आकलन के प्रसंग में विशेष उल्लेख्य है। उनमें छायावाद का उद्भव व विकास, प्रमुख प्रवृत्तियाँ और रहस्यवाद से उसके अंतर आदि पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

श्री शंभूनाथ सिंह की पुस्तक "छायावाद-युग" अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। लेखक का विचार है कि "छायावाद-युग के पीछे छूट जाने का अर्थ यह है कि हिन्दी कविता आगे बढ़ी है, एक ही जगह खड़ी होकर लेफ्ट राइट (मार्क टाइम) नहीं कर रही है। इस प्रगति को छायावाद का पतन नहीं कहा जा सकता।...यह भी नहीं कह सकते कि छायावाद मर गया क्योंकि वह जी रहा है और रूप बदल कर जी रहा है, जैसे पाँच वर्ष का बच्चा पचीस वर्ष की उम्र में भी वही रहता है यद्यपि उसके रूप और ज्ञान कोश में आकाश पाताल का अंतर हो गया रहता है; बच्चा मर कर नहीं, जी कर जवान होता है। उसी तरह आज का स्वच्छंदतावादी यथार्थवाद हो या प्रगतिवाद, प्रतीकवाद (प्रयोगवाद) हो या नूतन रहस्यवाद, ये सभी छायावाद के ही विकसित रूप है।"[३] सन् १९५२ में प्रकाशित ३९२ पृष्ठों की इस पुस्तक में इतिहास के आलोक में छायावाद का अध्ययन व विवेचन प्रस्तुत हुआ है। पुस्तक के प्रथम खंड में ८८ पृष्ठ हैं जिनमें औद्योगिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक परिस्थितियों की पीठिका में छायावाद की विकसित काव्यधारा का सविस्तर आकलन किया गया है। छायावाद-युग की प्रधान प्रवृत्तियों, प्रेम-भावना, सौंदर्य-भावना, प्रकृति, शैली या अभिव्यंजना-प्रणाली आदि पर विस्तार से विचार

१. आ० हिं० क० की मुख्य प्रवृत्तियाँ—डॉ० नगेन्द्र (पृ० १९)
२. हिंदी कविता में युगांतर—डॉ० सुधीन्द्र (पृ० ३७०)
३. छायावाद-युग, पृष्ठ २

प्रकट किये गये है। मेरी समझ मे, छायावाद पर यह एक अच्छी पुस्तक कही जा सकती है। विवेचन स्पष्ट तथा गंभीर है और स्थापनाएँ तर्कसंगत। किन्तु छायावाद-काव्य के कुछ अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष छूट अवश्य गए हैं; और जैसा कि भूमिका मे स्वयं लेखक ने स्वीकार ही किया है, उनकी यह पुस्तक छायावाद-विषयक आलोचना की कमी को बिल्कुल पूरा करती है, ऐसा तो दावा नहीं किया जा सकता। फिर भी, छायावाद के विद्यार्थियों और अनुसंधानकर्त्ताओं के लिए सबसे पहले यही पुस्तक उपयोगी है, यह मेरी निजी मान्यता है।

श्री नामवर सिंह लिखित "छायावाद" नामक ग्रंथ भी अच्छा बन पड़ा है। लेकिन, सबसे पहले मैं यह निवेदन कर दूँ आलोचनात्मक निबंधों के छायावाद शीर्षक देने की वजह से पुस्तक के विवेचन मे आरंभतः अस्पष्टता आ गई है। आलोचना की पुस्तक में 'केवल मैं, केवल मैं', 'एक कर दे पृथ्वी आकाश', 'पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश'; 'देवि, माँ, सहचरि, प्राण'; जैसे शीर्षक, मेरी समझ में, भ्रामक व अनुपयुक्त हैं। सरस्वती प्रेस, बनारस से प्रकाशित १४६ पृष्ठों की इस पुस्तक में कुल मिला कर १२ निबन्ध संगृहीत है। पहले लेख मे छायावाद के नामकरण का इतिहास व रहस्यवाद और स्वच्छन्दतावाद से छायावाद का अंतर समझाया गया है। ७ वें-८ वें अध्याय में छायावाद की शैली पर प्रकाश डाला गया है तथा ६ वें मे शैली पर बंगला तथा अँग्रेजी के प्रभाव का विवेचन है। दसवाँ अध्याय छंद पर विचार करता है। ग्यारहवें अध्याय में छायावाद के क्रमिक विकास की चर्चा करते हुए उसके दृष्टिकोण मे व्यापकता आई, यह कहा गया है। "इस तरह, जिस काव्यधारा का आरंभ व्यक्तित्व के विकास की आकांक्षा से हुआ था, उसका पर्यवसान समाज-निरपेक्ष वैयक्तिकता में हुआ।"[१] अंतिम अध्याय छायावाद के महत्त्व का मूल्यांकन करता है। लेखक की कुछ पंक्तियाँ विशेष ध्यातव्य हैं—"छायावाद हमारी विशेष सामाजिक और साहित्यिक आवश्यकता से पैदा हुआ और उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसने ऐतिहासिक कार्य किया। समाज और साहित्य को उसने जिस तरह पुरानी रूढ़ियों से मुक्त किया, उसी तरह आधुनिक राष्ट्रीय और मानवतावादी भावनाओं की ओर भी प्रेरित किया। व्यक्तित्व की स्वाधीनता, विराट कल्पना, प्रकृति-साहचर्य, मानव-प्रेम, वैयक्तिक प्रणय, उच्च नैतिक आदर्श, देशभक्ति, राष्ट्रीय स्वाधीनता आदि के प्रसार-द्वारा छायावाद ने हिन्दी जाति के जीवन में ऐतिहासिक कार्य किया। कविता के रूप-विन्यास को पुरानी संकीर्ण रूढ़ियों से मुक्त करके उसने नवीन अभिव्यंजना-प्रणाली के लिए द्वार खोल दिया।"[२]

छायावाद के संबंध में प्रो० क्षेम की दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—"छायावाद की काव्य-साधना" और "छायावाद के गौरव चिह्न।" "छायावाद की काव्य साधना" एक अच्छी पुस्तक है और छायावाद के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालती है, हालांकि विश्लेषण

१. छायावाद—श्री नामवर सिंह, पृष्ठ १३८
२. उपरिवत्—पृष्ट १४२

सूत्र सुलझे हुए नहीं हैं, यह कहा जा सकता है। "छायावाद के गौरव चिह्न" ३७० पृष्ठों की मोटी पुस्तक है जिसका सबसे पहला लेख है—"छायावादी काव्य की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि।" इसमें बताया गया है कि छायावाद न तो 'विदेशी कलम' है और न बंगला का प्रभाव—यह काव्य जीवन की परिवर्तित परिस्थितियों और समस्याओं का साहित्यिक स्वरूप है। छायावाद पर पलायनवाद के आक्षेप का भी अच्छा उत्तर दिया गया है।[1] इसके बाद "छायावादी काव्यधारा के सांस्कृतिक तत्त्व" शीर्षक लेख में यह प्रतिपादित किया गया है कि छायावाद में परम्परागत व नवागत दोनों संस्कृतियों का विराट संतुलन है। "पूर्व के अंधमोह और पश्चिम के अंधानुगमन के बीच, यह एक स्वस्थ, जीवन-पोषी एवं सत्य-स्वीकारी पुन: सघटन का शुभ अनुष्ठान है।"[2] विद्वान् आलोचक ने छायावादी काव्यधारा पर पड़े औपनिषदिक विचारधारा, शांकर अद्वैतवाद, अरविंद-दर्शन, भौतिकवाद व मार्क्सवाद, बौद्ध-दर्शन और करुणा की भावना आदि के प्रभावों की भी चर्चा की है और अपने महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष दिये हैं। पुस्तक के अन्य उपयोगी निबन्ध ये हैं—"छायायुगीन काव्य में प्रकृति", "छायायुगीन यथार्थ और आदर्श", "छायावादी काव्य में सादृश्य-योजना", "छायायुगीन प्रतीक", "छायावादी काव्य में कथा-रूप", "छायावादी काव्य के लोक-स्पर्श" और 'छायावाद और स्वच्छन्दतावाद।' "बृहत्तर छायावाद" शीर्षक लेख में अपेक्षाकृत अल्पख्यात व नवीन छायावादी कवियों की चर्चा की गई है। प्रो० क्षेम के विचार बड़े सुलझे हैं, किन्तु अभिव्यक्ति उतनी स्पष्ट नहीं; और अलग-अलग उपशीर्षकों के अभाव में पुस्तक की उपयोगी सामग्री छात्रों की समझ में सहज आ ही नहीं सकती—यद्यपि सत्य यही है कि अनुसंधानकर्त्ताओं या विशेषज्ञों की अपेक्षा, पुस्तक की उपयोगिता तो छात्रों के लिए ही अधिक मान्य हो सकती है।

पं० गंगाप्रसाद पाण्डेय की "छायावाद और रहस्यवाद" पुस्तक भी यहाँ उल्लेख्य है : इसलिए नहीं कि अच्छी पुस्तक है, बल्कि इसलिए कि उसका ऐतिहासिक मूल्य है। छायावाद को समझने-समझाने का सद् प्रयत्न इस पुस्तक में किया गया है; यह बात दूसरी है कि लेखक को उसमें सफलता मिल नहीं सकी है।

सन् १९५१ में गंगा-ग्रंथागार, लखनऊ से प्रकाशित श्री प्रताप साहित्यालंकार की पुस्तक "छायावाद" में मौलिकता का प्रायः अभाव है भाषा प्रवाहपूर्ण है और विवेचन लेक्चरबाजी बनकर रह गया है। ग्रंथ के मुख्य निबंध हैं—छायावाद का उद्‌भाव, छायावाद और उसकी रहस्यात्मकता, छायावाद का अंतर्विश्लेषण, छायावाद का कला-पक्ष। परिशिष्ट रूप में दो निबंध और जोड़ दिये गये हैं—"छायावादी कवि—एक संकेत" और 'छायावाद शृंगारिकता,"। लेखक का निष्कर्ष है कि "छायावाद में रहस्यात्मकता सन्निविष्ट है, किंतु वह रहस्यवाद नहीं है।"[3] छायावाद की सौंदर्य-भावना के विषय में लेखक के विचार महत्त्वपूर्ण हैं और इस दृष्टि से पृ० ३६ से ४३ पठनीय हैं अंत विश्लेषणवाला निबंध भी अच्छा

१. छायावाद के गौरव-चिह्न—प्रो० क्षेम; पृ० २२-२४

२. उपरिवत्—पृ० ३५

३. छायावाद—प्रताप साहित्यालंकार; पृ० ३६

है। छायावाद की शृंगारिकता के संबंध मे लेखक का मत है कि "छायावाद मे वासना ने पार्थिवता-संयुक्त विकराल रूप नही धारण किया है। प्रेम के पुजारी होने के कारण छायावादी कवियों में वासना की मूर्तिमत्ता प्रकट होती है, लेकिन उसमें रीतिकालीन वासना के उग्रतम घोष का सर्वथा अभाव है। जो रीतिकालीन वासना का आरंभ-स्थल है, वह छायावाद की समाप्ति है। "(पृष्ठ १८९) विवेचन सर्वत्र सु-स्पष्ट है। लेखक ने बड़े जोरदार शब्दों में अपनी मान्यता प्रकट की है कि "हिंदी काव्य जगत को जितना गौरव छायावाद ने प्रदान किया है, उतना अब तक किसी अन्य धारा ने नही।"

प्रो० देवेंद्रनाथ शर्मा-द्वारा संपादित "छायावाद और प्रगतिवाद" शीर्षक पुस्तक में कुल निबंध १५ हैं जिनमें ६ का सीधा संबंध छायावाद से है। लेख विभिन्न लेखकों के लिखे हुए हैं। "छायावाद और रहस्यवाद" (श्री विश्वनाथ सिंह), "छायावाद मे नारी का छाया-चित्र" (सुश्री शंकुतला सिंह) और "छायावाद जिन्दा है" (श्री कामेश्वर शर्मा) अच्छे लेख हैं। "छायावाद जिन्दा है तो क्यों? छायावाद जिन्दा है तो कैसे? और छायावाद जिन्दा है तो कहाँ?"—इन प्रश्नों पर श्री कामेश्वर शर्मा के सुलझे विचार अवश्य पठनीय है। अनेक उदाहरणो व उद्धरणों से प्रमाणित लेखक का विचार, वास्तव में, उपयुक्त व तर्कसंगत है कि "छायावाद के बहुत-से तत्त्व प्रगतिवाद में में काम कर रहे हैं।" (पृ० १९५) "छायावन की रास" के लेखक केसरीकुमार के विचार बड़े हास्यास्पद एवं भ्रमात्मक है। वैसे, कुछ उदाहरण पर्याप्त हैं—"छायावादी कवि न तो आत्मविभोर प्रकृति का निरीक्षण कर सके और न आत्मसमर्पण द्वारा संकेत-ग्रहण ही।" (पृ० २४) "महादेवी मे कबीर और मीरा की वह वेदना नहीं है जो हृदय की शिराओं को कँपा देती है। मीरा की वेदना जीवन-प्रसूत है, महादेवी की कल्पना-प्रसूत।" (पृ० २५) 'छायावाद की नारी भी सीमा की रानी है....वह पूर्ण नहीं, अर्द्धनारी है—किशोर और यौवन की।" (पृ० २७) इस प्रकार, केसरीकुमार ने छायावाद के विषय में भ्रांतियाँ फैलाने की कोशिश की है। प्रोफेसर (अब डॉक्टर कहना चाहिए!) शिवनंदन प्रसाद ने भी "छायावाद और उसकी प्रतिक्रिया-प्रगतिवाद" शीर्षक अपने लेख में बड़े ही अधकचरे, छिछले और भ्रामक विचार प्रकट किये हैं विद्वान् (?) लेखक का मत हास्यास्पद और सर्वथा असगत है कि "विषय की दृष्टि से छायावाद के अंतर्गत केवल वैयक्तिक जीवन के करुण-मधुर पक्ष को ही स्थान मिला; समाज और उसकी अगणित समस्याएँ, मानव-मन की, अनंत भावनाएँ (जो पारिवारिक या सामाजिक जीवन के घात-प्रतिघातों-द्वारा उद्भूत होती हैं) तथा राष्ट्रीय एवं जातीय आशा-आकांक्षाएँ—सभी उपेक्षित रहीं।" (पृ० १३२) छायावाद और प्रगतिवाद के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से इस पुस्तक के दो निबंध विशेष उल्लेख्य हैं—सुप्रसिद्ध समालोचक प्रो० नलिन विलोचन शर्मा—लिखित—"प्रगतिवाद की मान्यताएँ" और प्रो० वेणीमाधव मिश्र-रचित—"प्रगतिवाद की प्रवृत्तियाँ"। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा के निबंध मे विश्लेषण की सूक्ष्मता और विवेचन की गंभीरता के दर्शन होते हैं जो एक प्रथम श्रेणी के साहित्य-समालोचक की सहज विशेषता मानी जा सकती है। इसके अलावा उनकी एक और उल्लेखनीय विशेषता, जिसकी झाँकी सर्वत्र मिलती है,

वह है उनकी विनोदात्मकता और दो-टूक व्यंग्य; जैसे—"नयी दुनिया का नया आदमी मूर्ति-पूजक नहीं रह गया है। वह गुरु की पूजा नहीं करता। इस पर आँसू बहाना बेकार है।" (पृ० १५२)

यहाँ दो भ्रामक पुस्तकों की चर्चा कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ। यद्यपि उन पुस्तकों के नाम में 'छायावाद' शब्द जुड़ा हुआ अवश्य है; किंतु विश्वास करें, हिंदी की छायावादी काव्यधारा पर उनमें विवेचन कुछ भी किया नहीं गया। गंगाधर मिश्र की 'भारतीय काव्य में छायावाद" एक ऐसी ही पुस्तक है। "छाया" का इस पुस्तक में व्यापक अर्थ ग्रहण किया गया है और बताया गया है कि वैदिक युग में भी यह शब्द प्रचलित था। उन दिनों "दिव्य शक्ति" के अर्थ में "छाया" का प्रयोग किया जाता था। इसी प्रकार, लेखक ने "छाया" के कई अर्थ लिये हैं और कालिदास, तुलसीदास से लेकर बिहारीलाल आदि-आदि अनेक कवियों की कविताओं में उसने छायावाद की झाँकी पाई है। किंतु "प्रसाद" के साथ प्रवहमान हिंदी कविता को एक विशिष्ट धारा के रूप में जिसे "छायावाद" जानते हैं, उसके अध्ययन में पुस्तक कतई उपयोगी नहीं है।

केदारनाथ सिंह की "कल्पना और छायावाद" भी एक ऐसी बेकार पुस्तक है। १२७ पृष्ठों के इस ग्रंथ में ११ निबंध संगृहीत हैं, जिनके शीर्षक हैं—कल्पना का महत्त्व; कल्पना का स्वरूप; कल्पना के अर्थ; कल्पना और परिवेश; स्वच्छंद कल्पना; मध्ययुगीन कल्पना और आधुनिक कल्पना; कल्पना, अंतर्दृष्टि और प्रतिभज्ञान; सम्मूर्तन विधान; प्रतीक-योजना; मिथ और कल्पना; तथा कल्पना और ललित कला। पुस्तक छायावाद पर आलोचना नहीं है। कल्पना और उसका विवेचन ही लेखक का उद्देश्य रहा है। हाँ, किसी बात को स्पष्ट करने के लिए छायावादी कविताओं के उद्धरण दिये गये हैं, यह बात दूसरी है। किन्तु, जैसा कि मैंने बताया, छायावादी कविता के अध्ययन-आकलन की दृष्टि से, पुस्तक बिल्कुल अनुपयोगी है, इसमें सन्देह नहीं।

छायावाद के विषय में कुछ छिटपुट सामग्री मिलती है डॉ० भोलानाथ—कृत "हिंदी साहित्य", डॉ० हरदेव बाहरी-लिखित ,'हिंदी काव्य-शैलियों का विकास", डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल-रचित "हिंदी साहित्य में विविध वाद", श्री (अब डॉक्टर कहना चाहिए!) शिवनंदनप्रसाद-कृत "कवि सुमित्रानंदन पंत और उनका प्रतिनिधि काव्य" तथा डॉ० रामकुमार वर्मा-लिखित "विचार-दर्शन" शीर्षक पुस्तकों में।

छायावाद के संबंध में डॉ० भोलानाथ के विचार उनकी पुस्तक "हिंदी साहित्य" में देखे जा सकते हैं। छायावाद, छायावाद व रहस्यवाद, आध्यात्मिकता आदि पर लेखक ने विचार किया है और छायावाद के कलापक्ष पर भी प्रकाश डाला है। छायावाद लोकप्रिय क्यों नहीं हुआ—इसका कारण लेखक ने बताया है और छायावाद की कमजोरियों पर अलग से विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। पुस्तक के पृष्ठ ३१८ से ३६४ तक पठनीय हैं।

डॉ० हरदेव बिहारी की पुस्तक 'हिंदी काव्य शैलियों का विकास" में लगभग २६ पृष्ठों में छायावाद पर सामग्री है। आरंभ में, छायावाद के नामकरण व उसकी प्रवृत्तियों आदि पर विचार किया गया है, किन्तु मौलिक विवेचन का सर्वथा अभाव है। डॉ० बिहारी

के ये विचार बिल्कुल सही है कि छायावाद और रहस्यवाद भिन्न हैं[1] तथा छायावादी कविता समाज से दूर नहीं है।[2] छायावाद की अभिव्यंजना-प्रणाली या कला-पक्ष तथा छायावाद की प्रमुख रचनाओं का भी विवेचन किया गया है। २४४ पृष्ठों की यह पुस्तक भारती प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित है।

"हिंदी साहित्य में विविधवाद" के लेखक डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल ने छायावाद को स्व-पर-भिन्न-स्वात्व (अध्यात्म) से प्रभावित वादों की श्रेणी में रखा है। पृष्ठ ४५६ से ४६७ के लगभग दस पृष्ठों में छायावाद पर उसने विचार किया है किंतु पिटी-पिटाई बातें दुहराई गई हैं। सामग्री उपयोगी और पठनीय नही है। कई स्थल पर तो लेखक के विचार अत्यंत हास्यास्पद और भ्रामक है। वह लिखता है कि "हमारा विश्वास है, छायावादी कवियों ने किसी नवीन छंद का अनुसंधान नहीं किया।"[3]

राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित "हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियां" शीर्षक पुस्तिका छायावाद के पाठकों के लिए कुछ उपयोगी कही जा सकती है। डॉ० रघुवंश की भूमिका विशेष ध्यातव्य है। छायावाद और रोमांटिक पुनर्जागरण पर विचार किया गया और पृ० १० के प्रथम अनुच्छेद तक की सामग्री पठनीय है। श्री जगदीश गुप्त के "छाया-वाद" शीर्षक निबंध में कोई नई सामग्री नहीं है।

सन् १६४६ मे प्रदीप प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित भाई शिवदान सिंह चौहान के "प्रगतिवाद" शीर्षक ग्रंथ में एक लेख छायावाद के पाठकों से पढ़ने का मैं अनुरोध करूँगा—शीर्षक है—"छायावादी कविता में असंतोष की भावना"।

"विचार-दर्शन" नामक अपने ग्रथ में डॉ० रामकुमार वर्मा ने छायावाद पर भी कुछ सामग्री दी है। छिटपुट उनके विचार जानने के लिए पृष्ठ ७२ से ७६ तथा १०१ से २०८ विशेष द्रष्टव्य है।

प्रोफेसर (अब डॉक्टर !) शिवनंदन प्रसाद की पुस्तक "कवि सुमित्रानंदन पंत और उनका प्रतिनिधि काव्य" मे तथ्य कम है, व्यर्थ अधिक। छायावाद के संबंध में शिवनंदन जी के अत्यधिक निष्कर्ष अत्यंत भ्रामक और असंगत है। उनकी आलोचना छिछली और भद्दी है। पुस्तक में सर्वत्र आलोचक (?) की अपरिपक्वता (immaturity) और लेक्चरबाजी-वृद्धि की झाँकी मिलती है। "हिंदी साहित्य : उसका उद्भव और विकास" "शीर्षक पुस्तक में अभिव्यक्त डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के छायावाद-विषयक विचारों के संबंध में भी उपर्युक्त बातें ही कही जा सकतीं हैं।

डॉ० देवराज-लिखित "छायावाद का पतन" एक गंदी पुस्तक है जिममें छायावाद के विरुद्ध, कुत्सित विचार प्रकट किये गये हैं। लेखक के प्राय: सभी विचार भ्रामक और

---

१. हिंदी की काव्य शैलियों का विकास—डॉ० हरदेव बाहरी, पृष्ठ २०४
२. उपरिवत्—पृष्ठ २०२
३. हिंदी साहित्य में विविध वाद—डॉ प्रेमनारायण 'शुक्ल' पृ० ४६६

गलत हैं, ऐसा कहने में मुझे किसी प्रकार का संकोच नहीं है। देवराज की असंगत-गलत धारणाएँ, शायद, अज्ञतावश हैं, ऐसा कहा जा सकता है : क्योंकि उसके ही शब्दों में उसने "कभी कालेज में हिंदी पढ़ी नही ।"[1]

इस प्रकार, ऊपर के समग्र विवेचन से यह स्पष्ट है कि छायावाद पर, यों पुस्तकें लिखीं तो कुछ अवश्य गई हैं, किंतु वे न तो संख्या में पर्याप्त हैं और न वैशिष्ट्य में। छायावाद-संबंधी आलोचना-साहित्य यों भी बहुत कम है और उसमें भी तटस्थ व सम्यक् समालोचना और भी अत्यल्प। इस प्रकार, छायावाद पर अच्छी-वैज्ञानिक समीक्षा की, आज भी, अपेक्षा है; और छायावाद-काव्य का अध्ययन व आकलन होना ही चाहिए। प्रस्तुत लेखक की पहली[2] व इस पुस्तक का, इस क्षेत्र मे, क्या महत्त्व होगा, वह नहीं कह सकता, किंतु उसने छायावाद का वर्षों अध्ययन कर उसकी व्यापकता को उपस्थित करने का प्रयास अवश्य किया है। छायावाद हिंदी कविता की चरम उपलब्धि है और मेरी पुस्तकें उसके गंभीर आकलन एवं मूल्यांकन में कुछ भी सहायता कर सकीं तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूंगा।

---

१. द्रष्टव्य "छायावाद का पतन" ("निवेदन" पढ़िए)
२. हिंदी काव्य में छायावाद (गयाप्रसाद एंड संस, आगरा)

उपयोगी पाठ्य-सामग्री

[छायावाद के विशेष अध्ययन के हेतु इच्छुक पाठक निम्लिखित पुस्तकों के पृष्ठ चाहें तो उलट सकते हैं। मेरा विश्वास है, इन पुस्तकों से छायावाद को समझने-परखने में उन्हें सहायता मिलेगी।]

१. छायावाद—श्री नामवर सिंह, २. छायावाद-युग—श्री शम्भूनाथ सिंह, ३. छायावाद का पतन – डॉ० देवराज, ४. हिन्दी कविता में युगान्तर – डॉ० सुधीन्द्र ५. छायावाद और रहस्यवाद – श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ६. छायावाद और रहस्यवाद का रहस्य—श्री धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, ७. छायावाद और प्रगतिवाद—श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा ८. छायावाद की काव्य-साधना—प्रो० क्षेम, ६. संचारिणी—श्री शांतिप्रिय द्विवेदी १०. कवि और काव्य—श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, ११. आधुनिक-काव्यधारा—डॉ० केसरीनारायण शुक्ल, १२. आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत—डॉ० केसरीनारायण १३. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ—डॉ० नगेन्द्र १४. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—नन्ददुलारे वाजपेयी १५. हिन्दी साहित्य का इतिहास—श्री रामचन्द्र शुक्ल, १६. हिन्दी साहित्य का इतिहास—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, १७. हिन्दी साहित्य—श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी,

सहायक-पुस्तकें

श्री जयशङ्कर 'प्रसाद'

१. कवि 'प्रसाद' की काव्य-साधना—श्री रामनाथ सुमन, २. जयशङ्कर 'प्रसाद' —श्री नन्द दुलारे वाजपेयी, ३. 'प्रसाद' की कला – श्री गुलाबराय, ४. 'कामायनी'-दर्शन—श्री कन्हैयालाल सहल ५. 'आँसू' और अन्य कृतियाँ—प्रो० विनयमोहन शर्मा, ६. 'प्रसाद' और उनका साहित्य—श्री विनोदशंकर व्यास, ७. 'प्रसाद' का काव्य—डॉ० प्रेमशंकर, ८. विचार और अनुभूति—डॉ० नगेन्द्र, ९. हिन्दी साहित्य : बीसवी शताब्दी—श्री नन्द दुलारे वाजपेयी १०. साहित्य : प्रेरणायें और प्रवृत्तियाँ–श्री शिवनंदन प्रसाद ११. हिन्दी कलाकार—श्री इन्द्रनाथ मदान

श्री सुमित्रानन्दन 'पन्त'

१. हिन्दी कलाकार—श्री इन्द्रनाथ मदान, २. कवि सुमित्रानन्दन 'पन्त' और उनका प्रतिनिधि काव्य—श्री शिवनन्दन प्रसाद, ३. 'पन्त' काव्य कला और जीवन-दर्शन—सुश्री शचीरानी गुर्टू, ४. आधुनिक कवि 'पन्त'—श्री तारकनाथ बाली, ५. श्री सुमित्रानन्दन 'पन्त'–श्री विश्वम्भर 'मानव', ६. सुमित्रानन्दन 'पन्त'—डॉ० नगेन्द्र, ७. 'पन्त' जी का 'गुंजन'–श्री शिवनन्दन प्रसाद, ८. हिन्दी साहित्य : बीसवी शताब्दी—श्री नन्द दुलारे वाजपेयी,

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

१. साहित्य दर्शन—सुश्री शचीरानी गुर्टू, २. 'निराला'—डॉ० रामविलास शर्मा, ३. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—श्री नन्द दुलारे वाजपेयी, ४. महाप्राण 'निराला'—गंगाप्रसाद पाण्डेय, ५. क्रांतिकारी 'निराला'—बच्चन सिंह, ६. 'निराला'—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, ७. हिन्दी कलाकार—श्री इन्द्रनाथ मदान

श्रीमती महादेवी वर्मा

१. महादेवी वर्मा—सुश्री शचीरानी गुर्टू, २. हिन्दी साहित्य : प्रेरणायें और प्रवृत्तियाँ—श्री शिवनन्दन प्रसाद, ३. महादेवी की रहस्य-साधना—श्री विश्वम्भर 'मानव' ४. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, ५. आधुनिक साहित्य—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, ६. हिन्दी कलाकार—श्री इन्द्रनाथ मदान

[इसके अतिरिक्त, छायावाद और छायावादी कवियों के अध्ययन, विश्लेषण और मूल्यांकन में छायावादी-काव्य-पुस्तकों की भूमिकाओं का भी महत्त्व है। इस दृष्टि से प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी द्वारा स्वयं लिखी गई भूमिका-रूप में आलोचनाएँ भी पठनीय हैं।]

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

१. साहित्य दर्शन—सुश्री शचीरानी गुर्टू, २. 'निराला'—डॉ० रामविलास शर्मा, ३. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—श्री नन्द दुलारे वाजपेयी, ४. महाप्राण 'निराला'—गंगाप्रसाद पाण्डेय, ५. क्रांतिकारी 'निराला'—बच्चन सिंह, ६. 'निराला'—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, ७. हिन्दी कलाकार—श्री इन्द्रनाथ मदान

श्रीमती महादेवी वर्मा

१. महादेवी वर्मा—सुश्री शचीरानी गुर्टू, २. हिन्दी साहित्य : प्रेरणायें और प्रवृत्तियाँ—श्री शिवनन्दन प्रसाद, ३. महादेवी की रहस्य-साधना—श्री विश्वम्भर 'मानव' ४. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, ५. आधुनिक साहित्य—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, ६. हिन्दी कलाकार—श्री इन्द्रनाथ मदान

[इसके अतिरिक्त, छायावाद और छायावादी कवियों के अध्ययन, विश्लेषण और मूल्यांकन में छायावादी-काव्य-पुस्तकों की भूमिकाओं का भी महत्त्व है। इस दृष्टि से प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी द्वारा स्वयं लिखी गई भूमिका-रूप में आलोचनाएँ भी पठनीय हैं।]